आईएसओ 9001:2008 प्रमाणित संस्थान

अंक
14वां

मरु बागवानी राजभाषा पत्रिका | 2019–20

मरु बागवानी

राजभाषा पत्रिका

2019–20

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)

CENTRAL INSTITUTE FOR ARID HORTICULTURE
के शु बा सं

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

शुष्क क्षेत्र बागवानी को समर्पित संस्थान

मुख्य ध्येय

1 भाुश्क एवं अर्ध ाुश्क बागवानी फसलों में टिकाऊ उत्पादकता और गुणवत्ता व उपयोग बढ़ाने के लिए आधारभूत, नीतिगत और व्यावहारिक अनुसंधान करना।

2 भाुश्क एवं अर्ध ाुश्क क्षेत्र की बागवानी फसलों का 'आनुवं ाक संसाधन एवं वैज्ञानिक जानकारी' का भण्डार।

3 प्रौद्योगिकियों के प्रभावों का आकलन, तकनीकी हस्तांतरण और क्षमता संधारण।

4 ाुश्क एवं अर्ध ाुश्क क्षेत्र की फल फसलों से संबंधित प्रौद्योगिकियों की पुश्टि और समन्वित अनुसंधान।

संस्थान द्वारा शुष्क क्षेत्रीय फल व सब्जियों की विकसित उन्नत किस्में

फल	
बेर	थार सेविका, थार भुभराज, गोमा कीर्ति, थार मालती
आंवला	गोमा ऐ वर्या
बेल	गोमा य ी, थार दिव्या, थार नीलकंठ
अनार	गोमा खट्टा (अनारदाना)
जामुन	गोमा प्रियंका, थार क्रांति
इमली	गोमा प्रतीक
लसोड़ा	थार बोल्ड
चिरोंजी	थार प्रिया
खिरनी	थार रितुराज
करोंदा	थार कमल
शहतूत	थार लोहित, थार हरित
महुवा	थार मधु
फालसा	थार प्रगति
कैथ (वुड एपल)	थार गौरव
सब्जियां	
मतीरा	एएचडब्लू–19, एएचडब्लू–65, थार माणक
लौकी	थार समृद्धि
काचरी	एएचके–119, एएचके–200
फूटककड़ी (स्नेपमेलोन)	एएचएस–10, एएचएस–82
ककड़ी	एएचसी–2, एएचसी–13
खेजड़ी	थार शोभा
ग्वारफली	गोमा मंजरी, थार भादवी (एएचजी–13)
स्वार्डबीन	थार माही
सेम फली	थार कार्तिकी, थार माघी
तोरई	थार करणी
बैंगन	थार रचित
तर ककड़ी	थार शीतल
सहजन	थार हर्षा
कद्दू	थार कवि
चिकनी तोरई	थार तपिश
कुंदरू	थार सुंदरी
पालक	थार हरिपर्णा

उन्नत प्रजातियों के बीज व पौधों हेतु सम्पर्क करें–

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीछवाल, बीकानेर–334006

दूरभाश– 0151–2250960 फेक्स– 0151–2250145 ई–मेल ciah@nic.in, वेब ciah.ernet.in

14वां अंक

आईएसओ 9001:2008 प्रमाणित संस्थान

मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका

(2019–20)

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)

चतुर्दशम् अंक

वर्ष 2019–20

प्रकाशक

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीकानेर–334006 (राज.)

दूरभाष: 0151–2250147, 2250960 फैक्स: 0151–2250145

ई–मेल: ciah@nic.in

वेबसाईट: www.ciah.icar.gov.in

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज

कार्यकारी सम्पादक

प्रेम प्रकाश पारीक

सह–सम्पादक

श्री रूप चंद बलाई

डॉ. अनिता मीणा

डॉ. अजय कुमार वर्मा

शब्द संधारण/परिकल्पना और छायांकन

श्री महावीर कुमार जैन

श्री संजय पाटिल

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।

मुद्रण: मै. रॉयल ऑफसेट प्रिन्टर्स, ए–89/1, नारायणा औद्योगिक क्षेत्र, फेस–1, नई दिल्ली–110028

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं.
1	संस्थान की प्रमुख राजभा ा गतिविधियां	प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज एवं श्री पी. पी. पारीक	3
2	भारतीय परम्पराओं, मान्यताओं एवं रीति–रिवाजों का वैज्ञानिक दृ टकोण	डॉ. कमलेश कुमार	9
3	कोविड–19 से बचाव के लिए स्वास्थ्यवर्धक आहार	सुश्री श्रद्धा सरोज	12
4	मेरा किचन गार्डन–एक अनुभव	श्रीमती नीलम सरोज	16
5	गर्वित किसान–कविता	डॉ. कनकलता	22
6	एक दिन प्रलय आयेगी –कविता	डॉ. सरिता चौहान	22
7	ु क बागवानी में जल संरक्षण : समय की मांग	प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज एवं डॉ. अनिता मीणा	23
8	अनार के कार्यिकी विकार एवं उनका प्रबंधन	श्री रमेश कुमार, श्री जगन सिंह गोरा, डॉ. विजय राकेश रेड्डी एवं डॉ. चेतराम	32
9	फालसा–एक बहुउद्देशीय फल	डॉ. कमलेश कुमार, डॉ. एस. एम. हलधर एवं डॉ. पी. एल. सरोज	37
10	बहुउपयोगी करौंन्दा की उन्नत बागवानी	डॉ. पी. आर. मेघवाल, डॉ. अकथ सिंह एवं डॉ. दलपत सिंह	39
11	कंटीले करौंदे की मिठास –किसानों की आस	डॉ. कनक लता, डॉ. राज कुमार, डॉ. बलबीर सिंह खददा, डॉ. ए.के. राय, डॉ. ाक्ति खजुरिया	43
12	सीताफल की वैज्ञानिक खेती	डॉ. जितेन्द्र सिंह, डॉ. प्रेरक भटनागर, श्री योगेन्द्र सिंह, और श्री नरेन्द्र कुमार वर्मा	46
13	कटहल की उन्नत खेती	श्री विकास मण्डलोई, डॉ. पी.के.एस. गुर्जर, श्री गौरी ांकर पटेल एवं श्री अभि ोक यादव	49
14	ु क एवं अर्ध–शु क क्षेत्रों में आलू की वैज्ञानिक खेती	श्री रूप चंद बलाई, डॉ. मुकेश कुमार जाटव एवं डॉ. एस आर मीना	54
15	खेजड़ी तथा अन्य बागवानी फसलों का उत्पादन	डॉ. दिलीप कुमार समादिया एवं डॉ. अजय कुमार वर्मा	59
16	ु क क्षेत्र में चिकनी तोरई की फसल उत्पादन तकनीक	डॉ. अजय कुमार वर्मा एवं डॉ. डी. के. समादिया	64
17	बागवानी फसलों के लिए केंचुआ खाद का उपयोगः सतत विकास के लिए एक दृ टकोण	श्री राहुल कुमार, आर. के. गुप्ता, सोनिया सिंह, एकता एवं पूजा	67
18	ु क क्षेत्रों में पौध प्रवर्धन तकनीक	डॉ. दीपक कुमार सरोलिया, डॉ. विजय राकेश रेड्डी एवं डॉ. रामकेश मीणा	71

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं.
19	ु क व अर्ध ु क क्षेत्र में स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू) से बेर का प्रवर्धन – एक उपयुक्त तकनीक	डॉ. राज कुमार, डॉ. कनक लता, डॉ. ए. के. राय एवं डॉ. एस. खजुरिया	74
20	बुंदेलखण्ड क्षेत्र में बेर वृक्षों का कलिकायन द्वारा पुनरोद्धार–किसानों की सतत आय का एक साधन	डॉ. जगदीश पाटीदार, डॉ. लाल चन्द, श्री आनन्द कुमार एवं डॉ. आशाराम	78
21	शु क बागवानी फसलों में प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन का महत्व	डॉ. रामकेश मीना, डॉ. विजय राकेश रेड्डी, डॉ. दीपक कुमार सरोलिया एव डॉ. आर एस सिंह	81
22	फलों की तुड़ाई उपरान्त निस्तारण	डॉ. विजय राकेश रेड्डी, डॉ. रामकेश मीना डॉ. दीपक कुमार सरोलिया एवं डॉ. आर. एस सिंह	85
23	कमरख प्रसंस्करण और मूल्यसंवर्धन	डॉ. कमला महाजनी, डॉ. सुमित्रा मीणा एवं डॉ. नीतू मीणा	90
24	बीजोपचार से उत्पादन एवं आय में वृद्धि	डॉ. अनिता मीणा, डॉ. नीतू मीणा, डॉ. कमला महाजनी	92
25	ड्रिप सिचांई संयन्त्र की उचित देखभाल व रखरखाव	श्री सी. एल. मीना, डॉ. आर. सी. साँवल, डॉ. दयानन्द, एवं कु.रेखा रैगर	94
26	ु क एवं अर्द्धशु क क्षेत्रों में राई–सरसों की खेती का महत्व	डॉ. मोहन लाल दौतानियाँ एवं डॉ. पी. के राय	99
27	कृ ा वानिकीः हरे चारे का सशक्त विकल्प	डॉ. बलबीर सिंह खद्दा, डॉ. कनक लता, डॉ. राज कुमार, डॉ. एस. खजुरिया एवं डॉ. ए. के. राय	102
28	ु क एवं मैदानी क्षेत्रों में आलू में कवक से होने वाली प्रमुख बीमारियाँ एवं उनका समेकित बीमारी प्रबंधन	डॉ. एस.के. माहेश्वरी, सुश्री राम्या श्री देवी, डॉ. एम. के. जाटव एवं डॉ. पी. एल. सरोज	105
29	वर्तमान कृ ा परिवेश में जैव कीटनाशकों (बायोपेस्टीसाईड) की आवश्यकता	डॉ. प्रज्ञा सिंह, ओमपाल सिंह एवं वेंकटेश्वर जल्लारफ	108
30	ीतलहर एवं पाले से फलवृक्षों तथा सब्जियों को बचायें	डॉ. आर. सी. साँवल, डॉ. दयानन्द, रुपचन्द बलाई और श्री सी. एल. मीना	111
31	मरुस्थलीय जीवन में मतीरा का सामाजिक–आर्थिक महत्व	डॉ. एस. आर. मीना, डॉ. एम. के. जाटव और श्री आर. सी. बलाई	113
32	कृ ा विज्ञान में केरियर के अवसर	श्री प्रेम प्रकाश पारीक	116

नरेन्द्र सिंह तोमर
Narendra Singh Tomar

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण,
ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली–110 001
Minister of Agriculture & Farmers Welfare,
Rural development and Panchyat Raj,
Government of India
Krishi Bhawan, New Delhi-110 001

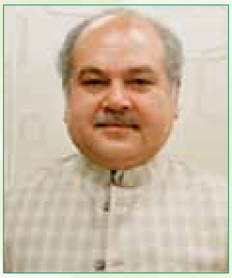

संदेश

भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, देश में कृषि अनुसंधान और शिक्षा के विकास से जुड़ी एक महत्वपूर्ण संस्था है। किसानों की कल्याण योजनाओं को सम्पूर्ण भारत में प्रसारित करवाने में परिषद् की अहम भूमिका है। परिषद् के वैज्ञानिक कृषि से संबंधित विभिन्न विषयों पर नित नए अनुसंधान कर उन्हें किसानों तक पंहुचाते हैं और किसान वैज्ञानिकों की तकनीकी अनुशंसाओं के अनुसार कार्य करते हुए, आशानुरुप लाभ अर्जित करने में समर्थ होते हैं। अनुसंधान की उन्नत प्रौद्योगिकी और तकनीकी जानकारियों को किसानों तक उनकी भाषा में विस्तारित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण कार्य है, जितना कि अनुसंधान। किसानों का एक बड़ा वर्ग राजभाषा हिंदी को जानता और समझता है। अतः उनको उन्नत तकनीक और प्रौद्योगिकी संबधी जानकारी हिन्दी में उपलब्ध करवाने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान बहुत परिश्रम के साथ सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

मुझे यह जानकर हर्ष है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर भी अपनी तकनीकी उपलब्धियों को किसानों तक पंहुचाने में विभिन्न प्रकाशनों का मुद्रण करवा रहा है इनमें राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' एक सशक्त माध्यम के रुप में उभरी है। पिछले कुछ वर्षों से संस्थान की यह पत्रिका किसानों को बागवानी–अनुसंधानों की उपयोगी और लाभप्रद जानकारी सरल और सुरुचिपूर्ण भाषा में उपलब्ध करा रही है, जो वस्तुतः प्रशंसनीय है।

पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन के लिए मैं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर को बधाई देता हूँ और नए अंक की उत्कृष्ट सफलता एवं लोकप्रियता हेतु शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ।

(नरेन्द्र सिंह तोमर)

कैलाश चौधरी
Kailash Choudhary

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण राज्य मंत्री
भारत सरकार

Minister of State For Agricultur
Farmers welfare
Government of India

संदेश

तकनीकी ज्ञान के विस्तार के इस युग में भाषा एवं संस्कृति को सहज कर रखना एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया है। वर्तमान समय में सूचना, आवागमन, संचार एवं प्रौद्योगिकी का परस्पर आदान–प्रदान द्रुत गति से हो रहा है। शोध के परिणामों को अपनी भाषा में बताने के लिए हिंदी एवं अन्य भाषाओं का महत्व दिनों दिन बढ़ रहा है। किसान अथवा जन–साधारण अन्य भाषा की अपेक्षा मातृभाषा अथवा हिंदी में उन्नत तकनीकियों को सरलता से समझकर उन्हें अपना सकता है। राजस्थान के बीकानेर में स्थित भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान शुष्क बागवानी के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य कर रहा है और अनुसंधान परिणामों को किसानों तक लाने के लिए राजभाषा पत्रिका '''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन भी कर रहा है जो बड़ा हर्ष का विषय है।

मैं, पत्रिका के इस नवीन अंक की सफलता की कामना के साथ इसकी निरंतरता बनी रहे ऐसी आशा करता हूँ।

(कैलाश चौधरी)

सत्यमेव जयते

त्रिलोचन महापात्र, पीएच.डी.
सचिव एवं महानिदेशक

TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel.: 23382629; 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

संदेश

भाषा किसी भी देश अथवा प्रांत की उन्नति का अमोघ शस्त्र है। स्व–भाषा के बिना अधुरापन होता है जिसे केवल स्व–भाषा को अपनाकर एवं उसे पोषित करके ही दूर किया जा सकता है।

हम सब अपने दैनिक कामकाज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए कृतसंकल्पित हैं। वर्तमान परिपेक्ष्य में राजभाषा हिंदी का प्रयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2020 तक किसानों की आय को दो गुणा करने के संकल्प को साकार करने में हिन्दी भाषा की भी उल्लेखनीय भूमिका है। अनुसंधान संस्थानों में शोध कार्यों के परिणामों और उन्नत तकनीकों से जुड़ी जानकारी को किसानों तक उनकी ही स्वभाषा में पंहुचाकर कृषि की प्रगति को कहीं अधिक तेजी से आगे बढ़ाया जा सकता है।

यह खुशी का विषय है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर राजभाषा हिंदी के प्रगामि प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में वार्षिक राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का निरंतर प्रकाशन कर रहा है। अनुसंधान से संबंधित ज्ञानवर्धक जानकारी हिंदी भाषा में सुलभ होने से यह पत्रिका किसानों एवं अन्य हितधारकों के लिए भी उपयोग सिद्ध होगी।

मैं, राजभाषा पत्रिका के इस नए अंक के लिए संस्थान को बधाई देता हूँ।

त्रि. महापात्र

दिनांक : 17 अगस्त, 2020

(टी. महापात्र)

डॉ. आनन्द कुमार सिंह
उप महानिदेशक (बागवानी विज्ञान)
बागवानी विज्ञान संभाग

Dr. Anand Kumar Singh
Deputy Director General (Hort. Sci.)
Horticultural Science Division

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन–II
पूसा, नई दिल्ली –110 012

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAWAN-II
PUSA, NEW DELHI-110 012
दूरभाष सं.: 91-11-25841976, फैक्स न.: 91-11-25841976
Ph.: 91-11-25842068(O), Fax: 91-11-25841976
E-mail: ddghort@gmail.com; aksingh36@yahoo.com

संदेश

भाकृअनुप–केशुबासं द्वारा प्रकाशित की जा रही राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' हिंदी को बढ़ावा देने में प्रमुख पत्रिका के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर रही है। हिंदी में कार्यालयीन कार्य करना हमारा संवैधानिक दायित्व है और उसका पालन हमारा नैतिक कर्तव्य बनता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के संस्थान अपने इस संवैधानिक कर्म का पालन निष्ठा से करते आ रहे हैं। इसी क्रम में हिंदी को बढ़ावा देने में राजभाषा पत्रिकाओं का भी अपना महत्व होता है। संवाद की वही भाषा सशक्त एवं प्रभावी होती है जो शब्दों के अर्थ एवं भावों को सटीक रूप में लोगों को समक्ष प्रस्तुत करने में सफल होती है। भारतीय भाषाओं के मध्य राजभाषा हिंदी एक कड़ी के रूप में स्थापित है जो एक दूसरी भाषा के प्रवाह के मध्य सेतु का कार्य करती है। केशुबासं के द्वारा राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' का प्रकाशन निरंतर किया जा रहा है जो प्रसन्नता का विषय है। इसके इस अंक में लेखों की विविधता अधिक है जो इसके लोकप्रिय होने को प्रस्तुत करती है। जल बचत तकनीक पर आधारित लेख वर्तमान समय में प्रासंगिक हैं।

मरु बागवाणी पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन हेतु मैं हृदय से बधाई देता हूँ।

अगस्त, 2020

(आनन्द कुमार सिंह)

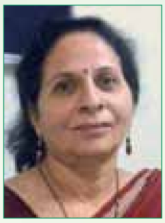

सीमा चोपड़ा
Seema Chopra

निदेशक (राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि भवन, नई दिल्ली–110011

DIRECTOR (Official Language)
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, NEW DELHI-110 011

संदेश

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। अभिव्यक्ति स्वस्फुटित और मातृभाषा में सहज हो सकती है। हिन्दी भारत देश के अधिकतर भागों में बोली अथवा समझी जाने वाली भाषा है और इसीलिए इसे राजभाषा का स्थान दिया गया है। वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों की अभिव्यक्ति यदि हिन्दी में की जाए तो उसका लाभ किसानों के साथ ही साथ सभी हितधारकों को प्राप्त हो सकता है। इसे ही सुनिश्चित करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के सभी संस्थान विभिन्न प्रकार के प्रकाशन प्रकाशित कर रहे हैं।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा प्रकाशित की जा रही वार्षिक राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' इसी कड़ी का एक भाग है। पत्रिका का कलेवर और समाहित लेखों की भाषा की गुणवत्ता उत्तम और सरल है। इसमें बागवानी के विभिन्न विषयों के रोचक और सारगर्भित लेख सभी के लिए उपयोगी होते हैं। मैं, पत्रिका के इस नवीन अंक के लिए संपादक मण्डल को हृदय से शुभकामनाएं और बधाई देती हूँ।

सीमा चोपड़ा

दिनांक : 11 अगस्त 2020

(सीमा चोपड़ा)

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)
ई मेलः ciah@nic.in
दूरभाषः 0151 2250147 फैक्सः 0151–2250145

प्राक्कथन

संविधान प्रदत्त नियमों और अधिनियमों के अंतर्गत हिन्दी भाषा को राजभाषा का स्थान दिया गया है। यद्धपि हिंदी किसी राज्य की मातृभाषा न होकर यह वृहद् रूप में पूरे देश की सबसे अधिक बोले और समझे जाने वाली भाषा है। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने इसका महत्व और उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए इसे पूरे देश की राजभाषा बनाया। सरकारी क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नियमों और अधिनियमों के उपधानों के आधार कार्य किया जाता है। हिन्दी में साहित्य प्रकाशन का कार्य भी इसकी प्रगति का सूचक होता है। इसी कड़ी में इस संस्थान के द्वारा वैज्ञानिक उपलब्धियों को सबके लिए और विशेषकर किसानों के लिए सुलभ करने हेतु सरल व सहज हिन्दी भाषा में लेख लिखे जाकर उन्हें 'मरु बागवाणी' नाम से प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित किया जाता है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि संस्थान की राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित लेखों का स्तर दिनों–दिन अधिक रूचिकर और ज्ञानवर्धक होता जा रहा है। हिन्दी् भाषा में पूर्ण वैज्ञानिक व सुदृढ़ शब्द भण्डार होने से इसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन सरलता से किया जाने लगा है।

संस्थान में राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन पिछले एक दशक से भी अधिक समय से निरंतर किया जा रहा है। पत्रिका का चौहदवां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में पिछले अंकों के अनुभवों और पाठकों के समालोचनात्मक सुझावों को समाहित किया गया है ताकि लेखों की गुणवत्ता को उत्कृष्टता के शिखर की ओर ले जाया जा सके।

किसान भाईयों और प्रबुद्ध नागरिकों को प्रस्तुत इस अंक में एक ओर जहां शुष्क बागवानी के विकास के विविध आयामों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तो, दूसरी ओर साहित्यक रचनाएं संकलित की गयी हैं। जल का वैज्ञानिक ढंग से उपयोग और सिंचाई में उसका मितव्ययी प्रयोग इस अंक की प्राथमिकताओं में रखा गया है। फसलों में मूल्यसंवर्धन से उनके उपयोग को बढ़ाने की बात की गयी है। शुष्क बागवानी की नव तकनीकियां और अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फलों को भी इस अंक में दिया जा रहा है। कृषि क्षेत्र में प्रगति के साथ–साथ कृषि विषय को शिक्षा का माध्यम बनाकर केरियर बनाने के अवसरों के साथ किचन गार्डन के रूप में अर्जित अनुभवों को भी इस अंक में स्थान दिया गया है।

समग्ररूप में यह अंक वृहद् भावों को समेटे हुए हमारे दिन–प्रति दिन के सभी कलेवरों को एक साथ प्रस्तुत करने एक प्रयास मात्र है। आशा है कि इसके पूर्ववर्ती अंकों की भांति ही रूचिकर लगेगा। इस अंक को यह स्वरूप प्रदान करने में लगे सभी कार्मिकों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करते हुए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

दिनांक : 11 अगस्त 2020

(पी. एल. सरोज)

राजभाषा खण्ड

संस्थान की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज एवं प्रेम प्रकाश पारीक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

राजभाषा अधिकारियों के लिए दो दिवसीय हिन्दी कार्यशाला

बीकानेर स्थित केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थाान में दिनांक 30 और 31 अगस्त, 2019 को उत्तरी क्षेत्र में स्थित परिषद के संस्थानों में कार्यरत राजभाषा अधिकारियों के लिए दो दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया

प्रो. (डॉ.) पी.एल. सरोज द्वारा स्वागत संबोधन

गया। इस कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य परिषद के संस्थानों में कार्यरत उप निदेशक (राजभाषा)/सहायक निदेशक (राजभाषा)/मुख्य तकनीकी अधिकारी/सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी/वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी तथा हिन्दी का कार्य देख रहे अन्य अधिकारियों को राजभाषा कार्यान्वयन को कारगर ढ़ंग से लागू करने में जागरूक तथा सक्षम बनाना था। कार्यशाला का उद्‌घाटन माननीय श्री अर्जुन राम मेघवाल, केन्द्रीय संसदीय कार्य एवं भारी उद्योग राज्य मंत्री तथा माननीय श्री कैलाश चौधरी, केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण राज्य मंत्री ने किया। इस अवसर पर प्रो. आर. पी. सिंह, माननीय कुलपति, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, डॉ. टी. जानकीराम, सहायक महानिदेशक (बागवानी विज्ञान), भाकृअनुप, नई दिल्ली सम्माननीय अतिथि थे। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज के अलावा मुख्य वक्ता के रूप में श्री मधु आचार्य 'आशावादी', वरिष्ठ साहित्यकार एवं कार्यकारी सम्पादक, दैनिक भास्कर, बीकानेर और निदेशक (राजभाषा) भाकृअनुप, नई दिल्ली श्रीमती सीमा चोपड़ा भी मंचासीन थे। इनके अतिरिक्त इस कार्यशाला में भाकृअनुप के राजस्थान स्थित अनुसंधान संस्थानों/केन्द्रों के निदेशक के रूप में डॉ. ओ. पी. यादव, निदेशक, काजरी, जोधपुर, डॉ. गोपाल लाल, निदेशक, राष्ट्रीय बीजीय मसाला केन्द्र, तबीजी, अजमेर, डॉ. ए. साहू, निदेशक, केन्द्रीय भेड़ व ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, डॉ. आर. के. सावल, निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान संस्थान, बीकानेर और डॉ. बी. एन. त्रिपाठी, निदेशक, राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान संस्थान, हिसार उपस्थित थे। अन्य गणमान्य अतिथियों में डॉ. विश्वनाथ मेघवाल, पूर्व विधायक, खाजूवाला सहित बीकानेर के प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं नागरिकगण उपस्थित थे।

संस्थान के निदेशक प्रोफेसर (डॉ.) पी.एल. सरोज ने अपने स्वागत उद्‌बोधन में अतिथियों का स्वागत करते हुए इस दो दिवसीय हिन्दी कार्यशाला की रूप रेखा के बारे में बताया एवं कहा कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए। निदेशक (राजभाषा) श्रीमती सीमा चोपड़ा ने क क्षेत्र के सभी संस्थानों से पधारे अतिथितियों का आभार व्यक्त किया। इस अवसर पर मंचासीन अतिथियों ने केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिन्दी गृह पत्रिका 'मरु बागवाणी' का भी विमोचन किया। कार्यशाला में परिषद के उत्तर भारत के 'क' क्षेत्र में स्थित

मंचासीन सम्माननीय अतिथिगण

कार्यशाला को संबोधित करते हुए माननीय मंत्रीगण

कुल 45 संस्थानों के लगभग 48 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस कार्यशाला का संचालन राजभाषा अधिकारी श्री प्रेम प्रकाश पारीक ने किया।

संस्थान की राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का विमोचन करते हुए अतिथिगण

हिन्दी कार्यशाला का समापन समारोह

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की बैठक एवं त्रैमासिक हिन्दी कार्यशाला

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 16 मार्च. 2019, 28 जून, 2019, 06 सितम्बर, 2019 एवं 24 दिसम्बर, 2019 को किया गया था। इन सभी बैठकों में संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की समीक्षा की गयी एवं हिन्दी की प्रगति को संस्थान के दैनिक कार्यों में सुनिश्चित किया गया। इन बैठकों का कार्यवृत्त तैयार कर उसी अनुसार कार्रवाई की गयी।

संस्थान में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार चार त्रैमासिक कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। वर्ष 2019 की पहली कार्यशाला का आयोजन दिनांक 25 मार्च, 2019 को किया गया जिसमें 'जैविक खेती और उसकी उपयोगिता' विषय पर किया गया। इसमें राजकीय बालिका महाविद्यालय, गुरुग्राम (हरियाणा) की व्याख्याता विस्तार शिक्षा डॉ. सोनाली सक्सेना ने व्याख्यान दिया। वर्ष की दूसरी कार्यशाला दिनांक 21 जून, 2019 को आयोजित की गयी जिसमें 'योग एवं स्वास्थ्य' विषय पर योग शिक्षक श्री विनोद जोशी ने व्याख्यान दिया। इसी क्रम में तीसरी कार्यशाला का आयोजन 26 सितम्बर, 2019 को किया गया जिसमें 'स्वच्छता मिशन' पर संस्थान के प्रशासनिक अधिकारी श्री रामदीन ने अपना व्याख्यान दिया। वर्ष 2019 की अंतिम कार्यशाला का आयोजन दिनांक 30 दिसम्बर, 2019 को किया गया जिसमें 'राजभाषा नीति और उसका अनुप्रयोग' विषय पर श्री प्रदीप कुमार, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा), भारतीय स्टेट बैंक, बीकानेर ने अपना व्याख्यान दिया।

हिंदी कार्यशाला के दौरान व्याख्यान देते अतिथि

हिंदी पखवाड़ा का आयोजन

संस्थान में दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2019 के दौरान ''हिंदी पखवाड़ा'' मनाया गया। इस दौरान जान–माने वरिष्ठ साहित्यकार गृह मंत्रालय की हिंदी समिति के पूर्व सदस्य, रेलवे बोर्ड के हिंदी सलाहकार सदस्य, लेखक और चिंतक डॉ. नंद किशोर आचार्य मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किये गये। उन्होंने कहा कि हिंदी कार्यक्रम

की हिंदी भाषी राज्यों में कोई विशेष सार्थकता नहीं है। हिंदी का कई स्थानों पर विरोध होता आया है। परन्तु हिंदी भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं से वैमनस्य नहीं है। यह अन्य सभी भाषाओं को साथ लेकर चलने वाली भाषा है। अपनी भाषा से प्रेम करने की सीख देते हुए आचार्य ने कहा कि भाषा वही आगे बढ़ती है जिसे उसके बोलने वाले अपने माता–पिता की तरह से सम्मान देते हैं। अन्यथा एक शोध के अनुसार वर्ष 1950 से लेकर 2010 तक भारत की 220 बोलियां लुप्त हो गयी वैसे ही एक न एक दिन यह भाषा भी लुप्त हो जाएगी। अंग्रेजी शिक्षा के फैलते जाल के प्रति चिंता जताते हुए उन्होंने कहा कि यह इस देश की संस्कृति और भाषा के लिए मीठा जहर है।

संस्थान के निदेशक प्रो. (डॉ) पी. एल. सरोज ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि हिंदी को बढ़ाने में समाचार पत्रों की विशेष भूमिका रही है। हिंदी सिनेमा की चर्चा करते हुए कहा कि महाराष्ट्र में मराठी भाषा के मध्य, अधिकतर उर्दु भाषा वालों ने हिंदी को आगे बढ़ाया है। हिंदी को व्यापारियों ने भी संपक्र भाषा के रूप में विकसित किया है। कृषि अनुसंधान को हिंदी के द्वारा व्यापक बनाने पर बल देते हुए प्रो. सरोज ने कहा कि इस संस्थान ने हिंदी भाषा में प्रकाशित विभिन्न पुस्तिकाओं, पत्रकों, आदि के माध्यम से अनुसंधान कार्य को किसानों तक पंहुचाया है।

हिंदी पखवाड़ा उद्घाटन कार्यक्रम में बोलते हुए डॉ. नंदकिशोर आचार्य और मंचासीन संस्थान के निदेशक प्रो. (डॉ.) पी.एल. सरोज एवं पखवाड़ा कार्यक्रम के संयोजक डॉ धुरेन्द्र सिंह

पखवाड़े का समारोह पूर्वक समापन किया गया। इस दौरान मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए बीकानेर के जाने–माने वरिष्ठ साहित्यकार और राजस्थानी भाषाविद् श्री राजेन्द्र जोशी ने कहा कि भाषाएं कभी मरती नहीं है। भाषा संस्कृति का भाग होती हैं और भाषा से जुड़ाव होता है। मनुष्य का ज्ञान एक भाषा से कभी भी बढ़ नहीं सकता है। एक से अधिक भाषा का ज्ञान हमें विवेकशील बनाता है। भाषाओं के पीछे राजनीति की बात करते हुए उन्होंने कहा कि देश में साक्षरता दर का प्रतिशत बढ़ने के साथ ही राजनीति से प्रेरित आंदोलनों में कमी आयी है। इस अवसर पर कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक प्रो. (डॉ) पी. एल. सरोज ने कहा कि हिंदी भाषा के कार्यक्रमों को उत्सव के रूप में मनाना चाहिए। कार्यक्रम में सम्मानीय अतिथि के रूप में राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र के निदेशक डॉ. आर. के. सावल केन्द्रीय भेड़ व ऊन अनुसंधान संस्थान, मरु क्षेत्रीय परिसर, बीकानेर के अध्यक्ष डॉ. एच. के. नरूला, और राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, अश्व उत्पादन परिसर, बीकानेर के अध्यक्ष डॉ. एस. सी. मेहता, उपस्थित थे।

पखवाड़े के दौरान हिंदी सामान्यन ज्ञान, यूनिकोड हिंदी टंकण, सम सामयिक विषयक हिंदी लेख, हिंदी कविता, हिंदी शब्द लेखन और बच्चों की स्वंच्छल भारत पर पोस्टिर प्रतियोगिता सहित वर्ष भर हिंदी में सर्वाधिक कार्य करने वाले कार्मिकों को भी पुरस्कृत किया गया। सात प्रकार की प्रतियोगिताएं की गई जिनमें संस्थान के कार्मिकों के अलावा उनके परिवार जन व बच्चों ने भी भाग लिया।

हिंदी पखवाड़ा समापन कार्यक्रम में मंचासीन अतिथि और पारितोषिक ग्रहण करते हुए स्टाफ के बच्चे

हिंदी पखवाड़ा कार्यक्रम में स्वच्छता मिशन पर चित्रकारी करते हुए स्टाफ के बच्चे

संस्थान द्वारा प्रकाशित हिंदी के प्रकाशन

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर ने इस वर्ष के दौरान विभिन्न फल–सब्जी फसलों के 17 पत्रकों (फोल्डर) का प्रकाशन हिंदी में किया है। इन पत्रकों को किसान मेलों/किसान प्रशिक्षणों के दौरान किसानों को दिया जाता है। इनके अतिरिक्त संस्थान ने अपने वार्षिक प्रतिवेदन को पूर्ण रूप से द्विभाषी प्रकाशित किया है। संस्थान का छःमाही समाचार पत्र द्विभाषी प्रकाशित किया जाता है।

संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रकों का विवरण इस प्रकार है:–

1. संस्थान एक परिचय 2. शुष्क क्षेत्र में बेर उत्पादन प्रौद्योगिकी 3. ग्वारपाठा उत्पादन की उन्नत तकनीक एवं उपयोग 4. शुष्क क्षेत्र में अनार उत्पादन प्रौद्योगिकी 5. आंवला उत्पादन की उन्नत तकनीक 6. बेलपत्र की उन्नत खेती 7. शुष्क क्षेत्र में फालसा की खेती 8. फूटककड़ी (काकड़िया) उत्पादन की उन्नत तकनीक 9. सब्जी हेतु ग्वारफली उत्पादन प्रौद्योगिकी 10. काचरी उत्पादन की उन्नत तकनीक 11. खेजड़ी की उन्नत बागवानी 12. लौकी उत्पादन की उन्नत तकनीक 13. मतीरा उत्पादन की उन्नत तकनीक 14. शुष्क क्षेत्रों में टिण्डा उत्पादन प्रौद्योगिकी 15. धारीधार तोरई की वैज्ञानिक खेती 16. खेती के लिए मृदा परीक्षण 17. तर–ककड़ी उत्पादन की तकनीक

वर्ष 2019 के दौरान संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रक (फोल्डर)

राजभाषा पुरस्कार

संस्थान को वर्ष 2019 के दौरान नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर ने हिंदी में वर्ष 2018–19 के दौरान किए

गये सर्वक्षेष्ठ कार्य के लिए प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक के दौरान मण्डल रेल प्रबन्धक, बीकानेर श्री संजय कुमार श्रीवास्तव से संस्थान के निदेशक प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज ने राजभाषा अधिकारी श्री प्रेम प्रकाश पारीक के साथ यह प्रशस्ति पत्र प्राप्त किया।

भारत सरकार

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर

प्रशस्ति-पत्र

वर्ष 2018-19 के दौरान नगर में राजभाषा के उत्कृष्ट प्रयोग के लिए केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर को प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया जाता है।

संजय
(संजय कुमार श्रीवास्तव)
अध्यक्ष, नराकास एवं
मंडल रेल प्रबंधक

दिनांक –29-07-2019

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक के दौरान मण्डल रेल प्रबन्धन, बीकानेर से प्राप्त प्रशस्ति पत्र

हिंदी पखवाड़ा के दौरान आयोजित प्रतियोगिताएं एवं उनमें पुरस्कृत प्रतिभागी

सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता

	वैज्ञानिक समूह	तकनीकी समूह	प्रशासनिक समूह	एसएसएस एवं वाईपी समूह
प्रथम	डॉ. कमलेश कुमार	श्री संजय पाटिल	श्री रावत सिंह	श्रीमती किरण कुमारी
द्वितीय	डॉ. विजय राकेश रेड्डी	––	श्री राकेश कुमार स्वामी	श्री राधेश्याम
तृतीय	डॉ. चेतराम	––	––	श्री मुकेश कुमार

हिंदी शब्द लेखन प्रतियोगिता

	वैज्ञानिक समूह	तकनीकी समूह	प्रशासनिक समूह	एसएसएस एवं वाईपी समूह
प्रथम	डॉ. अजय कुमार वर्मा	श्री छुट्टन लाल मीणा	श्री कुलदीप पान्डे	सुश्री कल्याणी खत्री
द्वितीय	डॉ. सुशील कुमार महेश्वरी	––	श्री राजेश दैया	श्री लोकेश कुमार
तृतीय	––	––	श्रीमती पूजा जोशी	श्री मामराज पचार

यूनिकोड हिन्दी टंकण प्रतियोगिता

वैज्ञानिक समूह	
प्रथम	श्री रूप चंद बलाई
द्वितीय	डॉ. मुकेश कुमार बेरवाल
तृतीय	डॉ. अजय कुमार वर्मा

सम सामयिक विषय पर लेख प्रतियोगिता

वैज्ञानिक समूह	
प्रथम	डॉ. दीपक कुमार सुरोलिया
द्वितीय	डॉ. पी. पी. सिंह

हिंदी में कविता लेखन प्रतियोगिता

वैज्ञानिक समूह	
प्रथम	डॉ. कमलेश कुमार
द्वितीय	डॉ. दीपक कुमार सुरोलिया
तृतीय	डॉ. रामकेश मीना

बच्चों की चित्रकला पोस्टर प्रतियोगिता

एलकेजी से पांचवी तक		कक्षा पांच एवं आगे के बच्चे	सांत्वना पुरस्कार
प्रथम	कु. भाविका पुत्री डॉ. चेतराम	कु. मोनिका	1 कु. निहारिका 2 कु. मायरा 3 चिं. यशवर्धन 4 चिं. विवान
द्वितीय	कु. भाविका पुत्री डॉ. रमेश कुमार	चिं. अंशुमान	
तृतीय	कु. द्वियांशी अलोर	कु. अवन्तिका	

क्षेत्रीय केन्द्र, वेजलपुर, गुजरात में इस अवधि के दौरान आयोजित किये गये प्रमुख कार्यक्रम

राजभाषा कार्यन्वयन समिति

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 24.06.2019, 23.09.2019 और 28.12.2019 को किया गया। जिसमें केन्द्र की राजभाषा की प्रगति की समीक्षा की गई एवं कार्यान्वयन में आ रही कठिनाईयों को दूर करने के लिए विचार विमर्श करके हिन्दी की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाये गये।

हिन्दी कार्यशाला

केन्द्र में कार्यरत अधिकारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार दिनांक 25.09.2019 को राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में नियम अधिनियम की भूमिका कार्यक्रम की शुरूआत में श्री मकवाणा ने बताया की हिंदी के प्रचार, प्रसार में नियम अधिनियम का अत्यंत महत्व है। देश की एकता और अखंडता में राजभाषा हिन्दी का योगदान विषय पर आयोजित इस कार्यशाला में कार्यक्रम की शुरूआत में श्री मकवाणा ने बताया की देश की एकता के लिए अंतर की एकता परमावश्यक है और वह राजनीति से नही, भारत की रत्नगर्भा भाषाओं के उपयोग द्वारा स्थापित हो सकती है। प्रधान महोदय ने संतोष व्यक्त करते हुए बताया कि आज की कार्यशाला में हिन्दी के विकास एवं प्रचार हेतु किये गये प्रयास को देखकर मुझे बहुत हर्ष होता है, तथा ऐसे प्रयास जारी रहने चाहिये।

हिन्दी सप्ताह का आयोजन

केन्द्र में दिनांक 16.09.2019 से 21.09.2019 तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया था। हिन्दी सप्ताह दौरान यह निर्णय लिया गया कि सभी कर्मचारी एवं अधिकारी अपना महत्वपूर्ण कार्य हिंदी में ही करने का प्रयास करेंगे।

हिन्दी दिवस

दिनांक 14.09.2019 को हिन्दी दिवस में वक्ता अथवा व्याख्याता की प्रभावी भूमिका के गुर विषय पर आयोजित हिन्दी दिवस पर कार्यक्रम की शुरूआत में श्री मकवाणा ने बताया कि निम्न लिखित बिंदु पर ज्यादा ध्यान देना अति आवश्यक है (1) व्याख्यान देने की शैली, (2) विषय वस्तु का समुचित ज्ञान, (3) स्पष्ट्ता, (4) अंतिम पडाव, (5) समय सीमा का ध्यान, (6) आंगिक अभिव्यक्ति, (7) व्याख्यान का प्रारंभ, मध्य और चरम। डॉ. ए. के. सिंह, वैज्ञानिक ने बताया कि प्रस्तुतिकरण सिर्फ मौखिक अभिव्यक्ति से नहीं करना वरन आंगिक अभिनय करके अपनी प्रस्तुति को और अधिक प्रभावी बना सकता है।

किसान प्रशिक्षण

केन्द्र द्वारा समय–समय पर किसान प्रशिक्षण आयोजित किए जाते है। इन किसान प्रशिक्षणों में केवल हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र वेजलपुर पर आत्मा के सहयोग से दाहोद जिले, गुजरात के पीपलोद और वन्दार गांव से पुरूष और महिला किसानों को ग्रामीण विकास के लिए अर्ध–शुष्क बागवानी प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

भारतीय परम्पराओं, मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कमलेश कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

भारत विविधताओं का देश है, यहाँ पर जितने गांव, शहर, जिले, राज्य हैं उतनी ही मान्यताएँ, परंपराएँ तथा रीति–रिवाज प्रचलित हैं। भारतीय संस्कृति में रीति–रिवाज और परम्पराओं का वैज्ञानिक महत्व एवं आधार के साथ फायदे भी हैं। इन्ही परम्पराओं, रीति रिवाजों की वजह से दुनियां में भारत का एक अलग आकर्षण है। ये परम्परायें बहुत पुराने समय से चली आ रही हैं। इन परम्पराओं को गहराई से और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो पायेंगे कि हमारे ऋषि मुनियों और पूर्वजों ने गहन अध्ययन करके मनुष्य के लाभ के लिए इनको शुरू किया था। ये हमें स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत सी बीमारियों और समस्याओं से बचाती हैं। और इसे वैज्ञानिक भी प्रमाणित कर चुके हैं। ये हमें स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत सी बीमारियों और समस्याओं से बचाती हैं। ऐसी मान्यताओं एवं रीति– रिवाजों को देखकर अधिकतर लोग अंध–विश्वास मानकर उपहास करते हैं तो वहीं कुछ चमत्कार जानकार तवज्जो देते हैं। यही रीति– रिवाज किसी न किसी धर्म की पहचान होते हैं जिन्हें धर्म–गुरुओं, महात्माओं एवं ऋषि–मुनियों ने किसी ठोस सबूत के तहत निर्धारित किया था क्योंकि वे लोग आत्मज्ञानी, विज्ञानी होते थे और आमजन का भला कल्याण करने एवं दुःख दर्द मिटाने हेतु अपने ज्ञान को किसी न किसी बहाने से धर्म एवं मान्यता से जोड़ देते थे। अतः लोग रोजमर्रा के जीवन में उनका पालन करते रहते थे। इनसे हम सभी जुड़े हैं, तथा हमारे वही ज्ञान–विज्ञान, रीति– रिवाज के रूप में हमारी आस्था बनकर जुड़े हुए हैं। विदेशी लोग भारत आकर यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, रीति–रिवाजों और परम्पराओं को देख कर अपना रहे हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर विदेशी पर्यटक मन की शांति के लिए भारत आते हैं, उन्हें यहाँ पर एक अजीब सी शांति–सुकून का आभास होता है। परन्तु हम भारतीय, आज के आधुनिक युग की चकाचौंध एवं पश्चिमी प्रभाव वश अपनी मूल संस्कृति से सिर फेरते जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख उन्हीं परंपराओं के वैज्ञानिक महत्व पर प्रकाश डालने का एक साधारण प्रयास है।

हमारे देश में लोग सुबह उठकर सबसे पहले अपने दोनों हाथों को देखते थे और उसमें ईश्वर का दर्शन करते थे। दिन का शुभारंभ शुभ चीजों को देखने से होता है। इसके लिए भारतीय ऋषि–मुनियों ने हमें करदर्शनम यानी हाथों के दर्शन का संस्कार दिया है। **कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती। करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम ।।** अर्थात हाथ के अग्रभाग में लक्ष्मी, मध्य भाग में सरस्वती और मूल भाग में भगवान विष्णु का निवास है। अतः मैं प्रभातकाल में इनका दर्शन करता हूं। इस श्लोक में धन की देवी लक्ष्मी, विद्या की देवी सरस्वती और अपार शक्ति के दाता, सृष्टि के पालनहार भगवान विष्णु की स्तुति की गई है, ताकि जीवन में धन, विद्या और भगवान की कृपा प्राप्त हो सके। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में ऐसा वर्णित है कि लोग धरती पर पैर रखने से पहले धरती माँ को प्रणाम करते थे क्योंकि जो धरती माँ धन–धान्य से परिपूर्ण करती है, पालन–पोषण करती है, उसी पर पैर रखते हैं। इसीलिए धरती पर पैर रखने से पहले उसे प्रणाम कर उससे माफी मांगते थे। ऐसे कोमल मन तथा सुहृदय वाले हमारे पूर्वज होते थे। कहा जाता है कि हमें सूर्योदय से पहले उठना चाहिए क्योंकि सुबह के समय सूरज की किरणों में भरपूर विटामिन डी होता है और ब्रह्म मुहूर्त में उठने से हम दिनभर तरोताजा महशूस करते हैं और आलस हमारे पास नहीं भटकता है। भारतीय संस्कृति में माता–पिता और गुरुजनों के पैर छूने की परंपरा है। आमतौर पर जिस व्यक्ति के पैर आप छू रहे हैं, वह बूढ़ा

या पवित्र होता है। जब वे आपके सम्मान को स्वीकार करते हैं, उनके दिल सकारात्मक विचारों और ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं जो आपके हाथों और पैर की उंगलियों के माध्यम से आप तक पहुंचता है। संक्षेप में, पूरा सक्रिट ऊर्जा के प्रवाह को सक्षम करता है और कॉस्मिक ऊर्जा को बढ़ाता है। कहा गया है माता–पिता और बड़ों को अभिवादन करने से मनुष्य की चार चीजे बढती हैं– आयु, विद्या, यश और बल। **अभिवादन शीलस्य नित्यं बृद्ध–उपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलं ।।** प्रत्येक मनुष्य में मस्तिष्क से लेकर पैरों तक लगातार ऊर्जा का संचार होता है। जिसें कॉस्मिक ऊर्जा कहते हैं। जब हम किसी के पैर छूते हैं तब उस व्यक्ति के पैरों से होती हुई ऊर्जा हमारे शरीर में तथा हमारे हाथों से होते हुए उसके शरीर में पहुंचती है। और जब वह व्यक्ति आशीर्वाद देते समय हमारे सिर पर हाथ रखता है तब वह ऊर्जा दोबारा उसके हाथों से होती हुई हमारे शरीर में आती है। इस तरह पैर छूने से हमें दूसरे व्यक्ति की ऊर्जा मिलती है। जिससे नकारात्मक ऊर्जा नष्ट होती है और हमारे अंदर सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। हिन्दू धर्म की प्राचीन परंपरा और सभ्यता है कि ईश नमन, किसी से मिलने या अभिवादन करते समय हाथ जोड़कर प्रणाम किया जाता है। दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार करने से आप सामने वाले को सम्मान भी देते हैं साथ ही इस क्रिया के वैज्ञानिक महत्व के कारण आपको लाभ भी मिलता है। हाथ जोड़ने हमारी हथेलियों और उंगलियों के उन बिंदुओं पर दबाव पड़ता है जो आंख, नाक, कान, दिल आदि शरीर के अंगों से सीधा संबंध रखते हैं। यह दबाव एक्यूप्रेशर का काम करता है। एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार इसका सीधा असर हमारी आँखों, कानों तथा दिमाग पर पड़ता है। दूसरा तर्क यह भी है कि इस तरह नमस्कार करने से हम सामने वाले के स्पर्श में भी नहीं आते और सामने वाले के शरीर के कीटाणु, वायरस हम तक नही पहुंच पाते हैं। जिससे किसी प्रकार के संक्रमण का खतरा भी नहीं रहता है और हम बीमारियों से बचे रहते हैं।

धर्म शास्त्रों के अनुसार सूर्य को जल चढ़ाने की परम्परा बहुत पुराने समय से है। विज्ञान के अनुसार सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें ज्यादा तेज नहीं होती है जो शरीर के लिए एक औषधि का काम करती हैं। उगते सूर्य को जल चढ़ाते समय जल की धार में से सूर्य को देखने से हमारी आँखों ज्योति और शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सूर्य की किरणों से विटामिन–डी भी प्राप्त होता है। पूजा पाठ करते समय अगरबत्ती, धूप, ज्योति जलाते, शंख बजाते हैं। इन सबके पीछे वैज्ञानिक तथ्य छुपा हुआ है, ऐसा माना जाता है कि शंख बजाने से शंख–ध्वनि जहाँ तक जाती है वहां तक की वायु से सभी जीवाणु–कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति में चारों धाम घूमने की परंपरा है, इसके पालन करने से हमें देश के भूगोल का ज्ञान होता है, पर्यावरण के सौंदर्य का बोध होता है और साथ में ये यात्रायें हमारे स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी हैं।

हमारे सभी रीति–रिवाज, त्यौहार हमारे संबंधों को मजबूत करने का काम करते हैं। हिन्दू धर्म में व्रत रखने का बहुत महत्व है। खासतौर पर महिलाएं अपनी अपनी श्रद्वा और आस्था के अनुसार सप्ताह में एक दिन या खास अवसरों या त्योहारों पर व्रत रखती हैं। सप्ताह में एक दिन व्रत रखना वैज्ञानिक दृष्टि से भी लाभदायक है। आयुर्वेद के अनुसार व्रत रखने से और दिन भर में सिर्फ फल खाने से पाचन क्रिया को आराम मिलता है और हानिकारक तथा अवांछित तत्व शरीर से बाहर निकल जाते हैं। चिकित्सा शोध के अनुसार उपवास करने से कैंसर, मधुमेह तथा ह्दय सम्बन्धी बीमारियों का खतरा कम होता है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली कई बीमारियों का मूल कारण पाचन तंत्र में विषाक्त पदार्थों के संचय को मानती है। जिस प्रकार पृथ्वी के ज्यादातर हिस्से में पानी और कम हिस्से में ठोस जमीन है, उसी तरह मानव शरीर भी 80 प्रतिशत द्रव्य और 20 प्रतिशत ठोस पदार्थों से मिलकर बना है। इसीलिए चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल शरीर के द्रव्य पदार्थों को प्रभावित करता है।

हमारे वेद पुराणों में प्रकृति को माता और आकाश को पिता कहा गया है। प्रकृति के प्रत्येक रूप को देवी–देवताओं का रूप दिया गया है, पेड़– पौधे जैसे पीपल, बरगद को देवता और तुलसी, नदियों को देवी माना गया है। यह कोई अन्ध–विश्वास नहीं है बल्कि इसके पीछे बहुत बड़ा कारण छुपा है। हिन्दू धर्म के अनुसार तुलसी की पूजा करने से घर में सुख समृद्धि तथा खुशहाली आती है। वैज्ञानिक तर्क यह है कि संपूर्ण औषधीय गुणों से युक्त तुलसी पौधा वातावरण को शुद्ध करता है। यह शरीर के लिए एक अच्छा प्राकृतिक प्रतिजैविक है। इसकी पत्तियां खाने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

हिन्दू मान्यतानुसार माथे पर तिलक लगाना शुभ माना गया है। मानव शरीर में दोनों दोनों भौहों के बीच में एक बिंदू होता है। इस बिंदू पर एक नस होती है जो हमारे तंत्रिका तंत्र का सबसे खास हिस्सा माना जाता है। जब माथे पर तिलक लगाया जाता है तो उस बिंदू पर ऊँगली या अंगूठे से दबाव पड़ता है जिससे वह नस ज्यादा सक्रिय हो जाती है और पूरे चेहरे की माँस पेशियों

में बेहतर तरीके से रक्त संचार करती है। हिन्दू धर्म में शुभ अवसर, धार्मिक कार्य या पूजा पाठ होने पर दाहिने हाथ में कलावा/ मौली (रेशमी/सूती धागा) बाँधा जाता है। इसके पीछे का वैज्ञानिक तक्र यह है कि दाहिने हाथ की कलाई में ऐसी नसें होती हैं जो दिमाग तक जाती हैं। दाहिने हाथ में उस जगह मौली बाँधने से नसों पर दबाव पड़ता है जिससे दिमाग तक रक्त संचार सुचारू रूप से होता है। भारतीय संस्कृति में धरती पर बैठकर भोजन करने की परंपरा रही है। इसका वैज्ञानिक कारण है कि जब हम धरती पर दोनों पैर मोड़कर बैठते हैं तो इस अवस्था को सुखासन या अर्ध पदमासन कहते हैं। इस प्रकार बैठने से दिमाग की उन धमनियों को सकारात्मक संदेश पहुंचता है जो पाचन तंत्र से जुड़ी होती हैं। इस तरह बैठकर भोजन करने से पाचन क्रिया अच्छी रहती हैं और मोटापा, अपच, कब्ज, एसिडिटी आदि पेट की बीमारियाँ नहीं होती हैं।

भारतीय परंपरानुसार समान कुल या गौत्र में शादी करना वर्जित है। धार्मिक मान्यतानुसार एक ही गौत्र का होने के कारण स्त्री पुरुष भाई–बहन कहलाते हैं क्योंकि उनके पूर्वज एक ही हैं। अतः एक ही गौत्र में शादियाँ नहीं की जाती हैं। अलग अलग जगहों पर पले बढ़े, फिर वे भाई, बहन कैसे बन गये? लेकिन, इसका एक ठोस वैज्ञानिक तक्र है कि समान गौत्र का होने के कारण चाहे वे भाई बहन हों या ना हों लेकिन उनके गुणसूत्र, जींस समान होते हैं। इसलिए अगर एक गौत्र के स्त्री, पुरुषों की शादी होती है तो उनके बच्चे अनुवांशिक बीमारियों के साथ पैदा होते हैं। इसलिए अलग अलग गौत्र में शादी

करने से स्त्री पुरुष के गुणसूत्र, जींस आपस में नही मिल पाते हैं जिससे उनके बच्चों में अनुवांशिक बीमारियों का खतरा नही होता है।

भारतीय परम्परा में ऋषि–मुनि, राजा–महाराजा कानों में कुंडल पहनते थे। कानों के छेदन से कानों में किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती है साथ ही बौद्धिकता में वृद्धि होती है। लेकिन आज के परिवेश में बहुत से लोग सुंदर दिखने के लिए कान छेदन करवा लेते हैं ताकि सुंदर–सुंदर झुमके और अन्य आभूषण पहन सकें। कान छिदवाना एक फैशन बन गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कान छिदवाना स्त्री व पुरुष दोनों के लिए लाभदायक है। कान में एक नस होती है जिससे रक्त संचार नियंत्रित रहता है। पुरुषों के द्वारा कान छिदवाने से उनमे होने वाली हर्निया की बीमारी का खतरा कम हो जाता है। पैर की उंगली में बिछिया पहनना भारतीय संस्कृति का हिस्सा तो है ही, लेकिन इसके वैज्ञानिक फायदे भी है। बिछिया को पैर के अंगूठे के बगल वाली दूसरी उंगली में धारण किया जाता है। इस उंगली की नस महिलाओं के गर्भाशय और दिल से संबंध रखती हैं।

आर्युवेद में बताया जाता है कि सिर के जिस भाग में चोटी/ शिखा को धारण किया जाता है, वह भाग तंत्रिका तंत्र से सीधे संपक्र में होता है। चोटी इस तंत्र को सुरक्षा प्रदान करती है। इससे एकाग्रता में बढ़ोतरी होती है और शरीर को ऊर्जा मिलती है। आयुर्वेद के अग्रणी शल्य चिकित्सक ऋषि सुश्रुत ने सिर पर संवेदनशील स्थान को आदिपति मर्म कहा है। यहां सभी तंत्रिकाओं का एक घेरा होता है। चोटी इस स्थान की रक्षा करती है। मस्तिष्क में ब्रह्मरंध्र होता है, जहां शरीर के निचले हिस्से से सुषुम्ना नाड़ी (तंत्रिका) आकर मिलती है। आध्यात्मिक योग में, ब्रह्मरन्ध्र सर्वोच्च सातवाँ चक्र है, जिसमें हजार पंखुड़ियों वाला कमल है। यह ज्ञान का केंद्र है। शिखा इस केंद्र को बढ़ावा देने में मदद करता है, इसकी सूक्ष्म ऊर्जा को ओज के रूप में परिभाषित किया जाता है।

कोविड-19 से बचाव के लिए स्वास्थ्यवर्धक आहार

श्रद्धा सरोज, शोध छात्रा (खाद्य एवं पोषण), गृह विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

कोरोना (COVID 19) एक वि ाणु जनित वैश्विक महामारी है जिसकी चपेट में विश्व के अधिकांश देश हैं। अभी तक इस महामारी की रोकथाम के लिए कोई सटीक चिकित्सकीय उपाय उपलब्ध नहीं है। अतः बचाव के विभिन्न तरीके जैसे एक दूसरे से उचित दूरी बनाना, ारीर की साफ–सफाई रखना, मुँह को मास्क/ कपड़े से ढककर रखना, गर्म पानी का सेवन करना, उचित पो ाण आदि अपनाना ही इसकी रोकथाम का एक रास्ता है। इस महामारी से लड़ने के लिए सरकार द्वारा सख्त कदम उठाए जा रहे हैं। ऐसे में अपने घर पर रहकर हम इस संक्रामक बीमारी को फैलने से रोक सकते हैं। बाजार एवं व्यापार इस समय ठप पड़ा है जिसके कारण खाद्य संबंधित समस्याएं उत्पन्न हो रहीं हैं। कुछ देशों में तो भोजनालय भी बंद हो गए हैं और भोजन वितरण करने की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। साथ ही बाजार में ताजा फल एवं सब्जियों की कमी हो गई है। पौष्टिक आहार अच्छी सेहत बनाए रखने के लिए आवश्यक है, खास तौर पर तब जब हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता कि परीक्षा चल रही हो। ऐसे में ताजा फल एवं सब्जियों कि कमी और अपने घरों से ना निकल पाने के कारण लोग संसाधित खाद्य पदार्थो (प्रोसेस्ड फूड) का सेवन अत्यधिक मात्रा में कर रहें हैं। आम तौर पर तैयार खाद्य पदार्थो में चीनी, नमक एवं वसा कि मात्रा बहुत अधिक होती है जो कि हमारी सेहत के लिए अत्यंत हानिकारक है।

फिर भी वर्तमान परिस्थिति में,घबराने कि आवश्यकता नहीं है, उपलब्ध खाद्य सामग्री का प्रयोग करके भी हम पौष्टिक आहार का सेवन कर सकते हैं जो कि हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायक होगा। साथ ही हमें अच्छे आहार के साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हम शारीरिक रूप से सक्रिय रहें, इसके लिए घर पर ही योग, व्यायाम के साथ–साथ घरेलू कार्य स्वयं करें जिससे आपकी सेहत अच्छी होगी और अच्छी सेहत से बीमारियाँ अपने आप दूर रहेंगी।

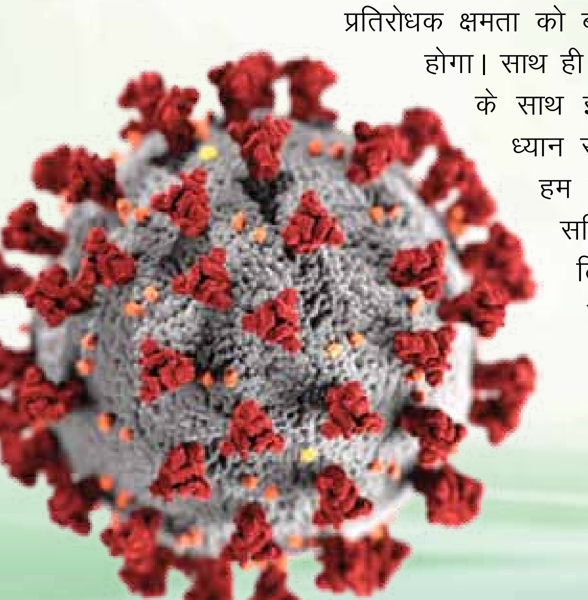

अब नजर डालते हैं उन सुझावों पर जो कोरोना से बचाव में सहायक होंगे :

1. **हमें योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना चाहिए** – वही चीजे खरीदे जिनकी आपको आवश्यकता है। ज्यादातर स्थानों पर देखा गया है कि लोग बहुत अधिक मात्रा में खाद्य सामग्री खरीद रहे है जिसके कारण सबके लिए किसी ना किसी सामान कि कमी होती जा रही है, फलस्वरूप सभी वस्तुओं के दामों में वृद्धि हो रही है। साथ ही जिसके पास ज्यादा सामान है वह अधिक मात्रा में इसका सेवन कर रहा है और जिसके पास कम सामान है उसे बहुत अधिक कठिनाई उठानी पड़ रही है। ऐसे में खाद्य सामग्री के वितरण में बहुत असमानता हो गई है। इन बिन्दुओं को मद्देनजर रखते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी जरूरत के हिसाब से ही सामान खरीदें और दूसरों की जरूरतों का भी ध्यान रखें।
2. **खाद्य सामग्री का उपयोग भी सोच समझकर करना चाहिए** – हमें हमेशा कोशिश करनी चाहिए कि ताजा सामग्रियों का ही उपयोग करें, जैसे जिन सामग्रियों का शेल्फ–जीवन काम है उनका प्रयोग पहले करना चाहिए। बची हुई सामग्रियों को फ्रीज कर देना चाहिए ताकि उनमें ताजगी बनी रहे और जरूरत के अनुसार ही इनका प्रयोग करना चाहिए।
3. **घर पर बने खाद्य पदार्थों के सेवन पर जोर देना चाहिए** – आम तौर पर समय के अभाव में हम स्वयं अपना भोजन बनाने में असमर्थ रहते हैं किंतु इसे समय का सदुपयोग करते हुए हमें स्वास्थ्यवर्धक भोजन का सेवन करना चाहिए।
4. **ऑनलाइन फूड डिलीवरी सर्विस का लाभ उठाना चाहिए** – यदि घर पर खाना बनाना संभव नहीं है तो ऐसे में फूड डिलीवरी सर्विस का लाभ उठाया जा सकता है इस बात का ध्यान रखते हुए कि इनमें 'कॉन्टैक्ट लेस' (बिना स्पर्श के) सुविधा उपलब्ध हो। खाद्य पदार्थो की डिलीवरी के दौरान तापमान 50 सें से कम या 600 सें से ज्यादा होना चाहिए।

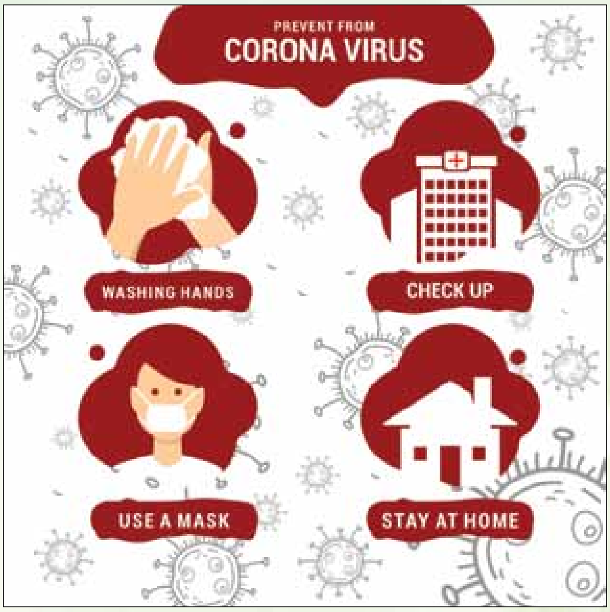

5. **सभी खाद्य सुरक्षा नियमों का पालन करना चाहिए**

- रसोई घर में सभी कार्यों को करने के लिए सदैव स्वच्छ जल का ही प्रयोग करें।
- बावर्ची को अपने हाथों और बर्तनों की सफाई पर ध्यान देना चाहिए। साथ ही पूरे रसोईघर की साफ–सफाई का भी ध्यान रखना चाहिए।
- ताजा फल एवं सब्जियों को घर लाते ही नमक के पानी से धोना चाहिए। मांसाहारी खाद्य पदार्थो की साफ–सफाई पर खास ध्यान देना चाहिए।
- कच्चे एवं पके हुए खाद्य पदार्थो को फ्रिज में अलग–अलग रखना चाहिए। खाद्य भंडार में भी चीजों को आवश्यकता के अनुसार ही संग्रहित करना चाहिए।
- इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि भोजन पूरी तरह तैयार (पक) हो जाए।
- फ्रिज में रखें पके हुए भोजन को 600 सें से ऊपर के तापमान पर गरम करने के बाद ही दुबारा उसका सेवन करना चाहिए।

इन नियमों का पालन करके हम रोगजनक जीवाणु, विषाणु तथा परजीवियों से दूर रहकर कई खाद्य जनित रोगों से बच सकते हैं।

6. **नमक का प्रयोग संतुलित मात्रा में करना चाहिए**– ऐसे समय में ज्यादातर लोग तैयार खाद्य पदार्थों का प्रयोग करते हैं जिनमें पहले से ही काफी मात्रा में नमक रहता है। विश्व स्वास्थ संगठन (WHO) के अनुसार एक दिन में केवल 5 ग्राम नमक का ही सेवन करना चाहिए। इसलिए कोशिश करें कि कैंड खाद्य सामग्री (canned foods) को साफ पानी से धोने के बाद ही इस्तेमाल करें। साथ ही आचार का कम से कम सेवन करें। स्वाद बढ़ाने के लिए ताजा जड़ी–बूटी (herbs) एवं मसालों का प्रयोग करें।

7. **चीनी का प्रयोग भी संतुलित मात्रा में करें** – यदि मीठा खाने का बहुत शौक है तो ऐसे में ताजा फल खाएं, जूस का सेवन बहुत कम मात्रा में करें तथा चशनी एवं शर्बत के सेवन से बचें। संतुलित मात्रा में मेवे (dry fruits) का सेवन भी लाभकारी सिद्ध होगा। यदि संभव हो तो चीनी का प्रयोग चाय, कॉफी एवं दूध में ना करें।

8. **वसा का संतुलित मात्रा में प्रयोग करें** – विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वसा से हमें 30 प्रतिशत से कम ऊर्जा मिलनी चाहिए, जिसमें 10 प्रतिशत संतृप्त वसा से और 20 प्रतिशत (औसत) असंतृप्त वसा से मिलनी चाहिए। इसलिए हमें कोशिश करनी चाहिए कि अत्यधिक तली (deep fried) हुई चीजों का प्रयोग करने से बचें, साथ ही लाल मांस का सेवन बहुत ही कम कर दें। मछली में अच्छी मात्रा में संतृप्त एवं असंतृप्त वसा पाया जाता है जो सेहत के लिए अत्यंत लाभदायक है। साथ ही जैतून, सूरज मुखी और सरसों के तेल का प्रयोग संतुलित मात्रा में स्वस्थ के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगा। तैयार खाद्य पदार्थ जैसे बिस्कुट, केक, पेस्ट्री, पिज्ज़ा इत्यादि के सेवन से बचना चाहिए।

9. **भोजन में फाइबर का पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है**– यदि अच्छी मात्रा में फाइबर का सेवन किया जाए तो पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है। कब्ज जैसी समस्याओं से बचा जा सकता है साथ ही शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा भी संतुलित बनी रहती है। फाइबर का सेवन करने से भोजन भी संतुलित मात्रा में ग्रहण किया जाता है जिससे धीरे – धीरे मोटापे कि समस्या भी सुलझाई जा सकती है। भोजन में फाइबर की मात्रा में वृद्धि करने हेतु ताजा फल एवं सब्जियों के साथ साबुत अनाज जैसे जई, रागी, ज्वार, बाजरा इत्यादि का सेवन करना चाहिए।

10. **जल का भरपूर मात्रा में सेवन करें**– अच्छी मात्रा में पानी का सेवन हमें कई बीमारियों से दूर रखता है। पानी की सहायता से मुंह एवं गले में मौजूद हानिकारक सूक्ष्मजीवाणु हमारे पाचन तंत्र में पहुंच कर न ट हो जाते हैं। अच्छी मात्रा में पानी पीने से एसिडिटी कि समस्या से भी बचा जा सकता है, साथ

ही हमारा पाचन तंत्र एवं गुर्दे भी स्वस्थ रहते हैं।

एक दिन में पुरुषों को कम से कम 3.7 लीटर और महिलाओं को 2.7 लीटर जल का सेवन करना चाहिए। शरीर में पानी कि कमी को दूर करने के लिए सदा पानी, नींबू पानी, मठठा, जलजीरा, आम पन्ना, दाल का पानी, सूप, खीरा, तरबूज आदि के सेवन से पूरा किया जा सकता है। कड़क चाय एवं कॉफी के प्रयोग से बचना चाहिए। साथ ही कार्बोनेटेड एवं कैफिनैटेड पेय का सेवन स्वास्थय के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है क्योंकि यह डाईयूरेटिक्स कि तरह काम करते हैं जिससे शरीर में पानी की कमी ही सकती है।

11. **अल्कोहल का सेवन नहीं करें**– अल्कोहल का सेवन करने से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। साथ ही यह मनुष्य के निर्णय लेने की क्षमता को बहुत बुरी तरह प्रभावित करता है। ऐसे में घरों पर होने वाली दुर्घटनाएं बड़ी तेजी से बढ़ रहीं हैं। घरेलू हिंसा से जुड़ी कई खबरें सामने आ रही हैं। साथ ही मानसिक तनाव, डर, चिंता, उत्कंठा, डिप्रेशन जैसी समस्याएं भी तेजी से बढ़ रहीं हैं। अल्कोहल का सेवन करने से हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है, साथ ही लीवर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, यहां तक कि लीवर हमेशा के लिए काम करना बंद भी कर सकता है। इन बातों को मद्देनजर रखते हुए COVID 19 से बचने के लिए हमें अल्कोहल का सेवन तुरंत बंद कर देना चाहिए।

12. **परिवार के साथ समय बिताने का मौका**– COVID 19 के कारण सबको घर पर ही रहना पड़ रहा है। ऐसे में सबके पास अपने परिवार के सदस्यों के साथ समय बिताने का अच्छा मौका है। इस समय का सदुपयोग करते हुए घर के बड़ों को बच्चों का मार्गदर्शन करना चाहिए। बच्चों को स्वादिष्ट एवं पौष्टिक खाना बनाना सिखाएं, जिससे बच्चों को कुछ नया सीखने को मिलेगा और पारिवारिक संबंधों में घनिष्ठता बढ़ेगी। इस दौरान खाद्य सुरक्षा नियमों को और अच्छी तरह सीखा जा सकता है। जैसे खाने से पहले एवं बाद में 20 सेकेंड तक हाथ धोएं, बर्तनों की सफाई एवं भोजन स्थल कि साफ सफाई सुनिश्चित करनी चाहिए। इस तरह बड़े और बच्चे सभी जिम्मेदार बनेंगे।

अंत में नजर डाल लेते हैं कुछ खाद्य सामग्रियों पर जिनका सेवन ऐसे समय में अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगा–

- ताजा फल एवं सब्जियों का सबसे अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए। मौसम के अनुसार मिलने वाले फल जैसे गर्मियों में सेब, केला, संतरे, अंगूर, पपीता आदि को खाना चाहिए। फल विटामिन्स एवम् खनिज का अच्छा स्रोत हैं और हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। साथ ही लौकी, तोरी, खीरा, बीन्स जैसी सब्जियों का भरपूर मात्रा में सेवन करें क्योंकि इनमें भी विटामिन्स कि भरपूर मात्रा पाई जाती है, यह पानी की कमी भी दूर करते हैं तथा इनमें फाइबर की भी अच्छी मात्रा होती है।
- अदरक एवं लहसुन का प्रयोग खांसी, जुखाम, गले की खराश में अत्यंत लाभदायक है। लहसुन में पाया जाने वाला एल्लीसिन (allicin) कोलेस्टेरॉल कि मात्रा पर नियंत्रण रखते हुए अनेक प्रकार के हृदय रोगों से छुटकारा दिलाता है।
- सलाद में प्याज, मूली, खीरा और टमाटर का प्रयोग बहुत फायदेमंद है। इनका दही के साथ रायता बनाकर भी आनंद उठाया जा सकता है।
- मूंग, अरहर/तुअर, चना, उड़द इत्यादि दालों का प्रयोग छिलके के साथ ही किया जाए तो ज्यादा फायदेमंद होता है। इसके अलावा राजमा, लोबिया

भी प्रोटीन और फाइबर के अच्छे स्रोत हैं। सोयाबीन को भी एक अच्छा प्रोटीन का स्त्रोत माना जाता है। साबुत अनाज का ही प्रयोग करें। यदि संभव हो तो टोंड दूध प्रयोग में लाए, फुल क्रीम दूध के सेवन से बचें। घी, मक्खन एवं दूध से बनी मिठाइयों का सेवन बहुत कम मात्रा में करें। आलू, शकरकंद, कसावा को कार्बोहाड्रेट की पूर्ति के लिए भोजन में शामिल किया जा सकता है। अंडे एवं मछली का सेवन करना चाहिए।

- खाना पकाने के तरीकों में बदलाव अति–आवश्यक है, जैसे तलना छोड़कर भोजन को भूनकर, उबालकर या भाप का प्रयोग करके पकाएं। भोजन में जितना हो सके वसा की मात्रा कम करें। खाना गरम– गरम परोसें और साथ बैठकर स्वादिष्ट भोजन का आनंद उठाएं।

ारीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए संतुलित पो ाण तो आवश्यक है ही, साथ ही सरकार द्वारा समय–समय पर दिये गये सुझाव का भी पालन करना हम सभी का कर्तव्य है तभी इस महामारी से छुटकारा मिल सकता है। इसके अतिरिक्त हम सभी को इस बात की भी चिन्ता करनी चाहिए कि लॉकडाउन के समय में देश का कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे।

पोषण की टोकरी

मेरा किचन गार्डनः एक अनुभव

श्रीमती नीलम सरोज, एम.ए. (समाज शास्त्र)

भारत में कृि ा का इतिहास मानव सभ्यता से जुड़ा है। ऐसा माना जाता है कि जब मनु य जाति दूर–दराज जंगलों में रहती थी तब खाने के लिए जंगल में प्राकृतिक रूप से उगे फल, फूल, कन्द रूपी वनस्पतियों का प्रयोग करते थे, इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि मानव जाति जहां पर खाने योग्य वनस्पतियों बहुतायत में पायी जाती थी, वहीं पर ज्यादा विचरण करते थे। कालान्तर में मानव जाति का धनत्व जंगलों में नदियों के किनारे बढ़ता गया और सिन्धु घाटी की सभ्यता इसका पुख्ता प्रमाण है। इसके बाद खाने योग्य वनस्पतियों का चयन, स्वतः उगे उपयोगी पौधों का संरक्षण एवं उनकी कास्त के बारे में विचार आया होगा। यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रारम्भ में खेती का कार्य जहां वे रह रहे होंगे उसके आस पास के सीमित क्षेत्र में हुआ होगा, जिसे आगे चलकर किचन गार्डेन का रूप दिया गया। आज किचन गार्डेन बागवानी की एक प्रमुख विधा के रूप में प्रचलित हो गया है।

प्रारम्भ में किचन गार्डेनिंग को ौकिया तौर पर ुरू किया गया और यह उन लोगों तक सीमित था जिनके बड़े बंगले हरों में या कस्बों में होते थे। इन बड़े घरों में आगे पीछे या बगल में काफी खुला स्थान रहता है, वहाँ पर ही कुछ पु प, गमले, ाकीय पौधे, लतायें आदि उगाये जाते रहे। धीरे धीरे हरी घास लगाने का भी प्रचलन बढ़ा, क्षेत्रफल के आधार पर फलदार पौधे जैसे नींबू, पपीता, अमरूद, केला, ऑवला, अनार, रीफा, चीकू, फालसा, आम आदि के साथ–साथ कुछ मौसमी सब्जियां जैसे–मिर्च, टमाटर, बैंगन, पालक, धनियां, मैथी, मूली, गाजर, लहसुन, प्याज, भिण्डी, तोरी, गोभी आदि उगाई जाने लगी।

फिर बढ़ती आबादी से लोग फ्लेट में रहने लगे और बालकनी में कुछ फूल और पत्तीदार पौधे गमलों में लगाकर ही खुश रहने की कोशिश करने लगे। आज स्थिति यह हो गई है कि लोग बालकनी के अतिरिक्त छतों पर भी गार्डेनिंग करने लगे हैं। घर की छत को डैम्प प्रूफ/लीकेज प्रूफ करके सीमेन्टेड क्यारियां बनाकर रूफ गार्डेनिंग करने लगे हैं। आज बीज एवं पौधों की बहुतायत में नर्सरी खुल गई हैं। पौधों में डालने के लिए खाद/वर्मीकम्पोस्ट के पैकेट मिल रहे हैं। गार्डेनिंग के लिए पौधे, औजार जैसे खुर्पी, चाकू, कैंची, सिकेटियर, आरी आदि किसी भी नर्सरी से खरीद सकते हैं। विभिन्न कीड़े, बीमारियों की रोकथाम के लिए दवायें, छोटे स्प्रेयर भी दुकानों पर उपलब्ध है। मौसमी फूलों तथा सब्जी के बीज एवं पौध आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। जहां पहले कुछ माली ही इस कार्य में पारंगत होते थे, आजकल गार्डेनिंग का कार्य हर कोई आसानी से कर लेता है। आज भी बड़े अधिकारियों के बंगले या धनाढ़य लोगों के यहां किचन गार्डेनिंग का कार्य कुशल माली द्वारा किया जाता है। आजकल गमले बनाने का कार्य, पौध बनाने का कार्य, ठेलों पर अलंकृत पौधें बेचने का कार्य, वर्मीकम्पोस्ट बनाने का कार्य, विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक की ट्रे, रूट ट्रेनर, पौध हेतु पालीबैग आदि एक व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आया है। वर्तमान में किचन गार्डेन के अनेक रूप जैसे रूफ गार्डेन, वर्टिकल गार्डेन, हाइड्रोपोनिक, होम गार्डेन, फ्लोटिंग गार्डेन आदि विद्यमान है। विभिन्न प्रकार की संरचनायें जैसे ग्लास हाउस, ग्रीन हाउस, पाली हाउस, लेथ हाउस, इन्सेक्ट प्रूफ नेट हाउस आदि किचेन गार्डेनिंग में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। सिंचाई की

नवीन पद्धतियों जैसे ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिस्टम किचेन गार्डेनिंग में चार चॉद लगा देते हैं।

आधुनिक किचन गार्डेनिंग के अतिरिक्त इस विधा का विकास ाायद आवश्यकता की पूर्ति के हेतु हुआ होगा। उत्तर भारत के ग्रामीण आंचल में घरों के पास महिलायें एवं घर के बुजुर्ग कुछ सब्जियां व ाा ऋतु में बो दिया करते थे जैसे कद्दू, लौंकी, तोरी, सेम, खीरा, करेला, चिचिण्डा आदि और उनसे व ाा ऋतु समाप्त होते–होते फसल ाुरू हो जाती थी जो जाड़े के मौसम तक चलती रहती थी। उसके बाद जाड़े में मिर्च, टमाटर, बैंगन, भिण डी तथा पत्तीदार सब्जियां बोकर घर की आवश्यकता के लिए सब्जी उगाते थे। धीरे–धीरे लोगों में कुछ फलदार वृक्ष जो छोटे आकार के होते थे उनका भी प्रचलन बढ़ा। इन फलदार पौधों में नींबू, सन्तरा, अमरूद, केला, पपीता, सीताफल, आड़ू, नासपाती, आदि प्रमुख हैं। किचेन गार्डेनिंग की यह विधा जहां व ाा प्रचुर मात्रा में थी वहां पर ज्यादा प्रचलित हुई। यही कारण है कि केरला का होम गार्डेन आजीविका संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण एवं जैवविविधता संरक्षण का पर्याय बन चुका है, जहां घर के आस पास नारियल, सुपारी, केला, काली मिर्च, इलायची, लोंग, जायफल, अनन्नास, हल्दी, अरबी, टैपिओका आदि एक साथ उगाया जाता है। आज समुद्रतटीय क्षेत्रों में बहुमंजिला खेती एक व्यवसायिक रूप में प्रचलित हुई है जिसमें न केवल विभिन्न उत्पाद, अधिक आमदनी अपितु जोखिम उठाने की क्षमता भी हैं। उत्तर भारत के गांवों में आज भी व ाा ऋतु में छप्पर के उपर लौकी, कद्दू की बेल को उगते हुए देखा जा सकता है। इसी प्रकार के पहाड़ी क्षेत्रों में घर के आस–पास अदरक, अरबी, पत्तीदार सब्जियां जैसे चौलाई, पालक, सरसों, धनियां के अतिरिक्त टमाटर, बैंगन, मिर्च आदि उगते देखा जा सकता है।

अब मैं वास्तविक मुद्दे पर आती हूॅं। यूं तो मेरा मायका उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून में है, लेकिन घर म्यूनिसिपल बाउण्ड्री पर होने के कारण ाहर एवं देहात दोनों का अनुभव है। अच्छी व ाा होने के कारण फसल उत्पादन भी अच्छा होता है। घर पर किचेन गार्डेन भी है जहां पर नींबू, आम, आड़ू, अमरूद के फलदार वृक्ष तथा सामयिक सब्जियों जैसे तोरी, लौकी, कद्दू, पालक, बैंगन, सरसों, अदरक आदि बोया जाता है। हमेशा तुलसी एवं घृतकुमारी का पौधा भी विद्यमान रहता है। मेरे माता–पिता, बड़े भाई–भाभी की विशे ा रूचि सब्जियों को उगाने में रहती है। किचेन गार्डेनिंग के कार्य में मेरी छोटी बहन भी खूब रूचि रखती थी, विशे ाकर फूलों के गमलों की देखभाल करना। आज भी वो अपने फ्लैट

की बालकनी में फूलों के गमले सजाकर रखती हैं। मुझे सब्जियां एवं फल तोड़ना बहुत अच्छा लगता है किन्तु मै कृि ा एवं किचन गार्डेन से कोई ज्यादा लगाव नहीं रखती थी। संयोग से मेरी ाादी कृि ा वैज्ञानिक से हो गई वो भी बागवानी वि ाय वाले से। अब तो जब भी सुनों खेती किसानी की ही बात होती रहती थी। मिलने–जुलने वाले भी ऑफिस के लोग वही बात करते थे। रोज सुबह से ााम तक पेड़–पौधों एवं किसानों की समस्याओं की ही चर्चा होती रहती थी। बात कहीं से भी ाुरू हो लेकिन अन्ततः खेती बागवानी के बिना चर्चा समाप्त नहीं होती थी। मेरी ससुराल में भी खेती आजीविका का एक प्रमुख साधन है अतः जब भी हम दोनों गॉव जाते थे वहां भी खेती किसानी से जुड़ी बातें ही हुआ करती थी। धीरे धीरे, रोज सुनते–सुनते मुझे भी बहुत सी बातों का ज्ञान होता गया। ाादी के बाद हम दोनों देहरादून में ही संस्थान की कॉलानी में रहते थे, किन्तु कालोनी के फ्लेट में रहने के कारण किचन गार्डेनिंग सम्भव नहीं थी। जो लोग नीचे की मंजिल पर रहते थे या जिनके पास विला थे, वे अवश्य ही किचन गार्डेनिंग किया करते थे। हम लोग भी इस बात की चर्चा अपनी बालकनी में बैठकर किया करते थे कि कभी हम लोग भी एक प्लाट खरीदेंगे, जिसमें अपना किचन गार्डेन बनायेंगे। वो समय भी आया और हमने एक प्लाट खरीदा, किन्तु प्लाट खरीदने के बाद ही मेरे पति का चयन वरि ठ वैज्ञानिक के पद पर बीकानेर में हो गया और मेरा किचन गार्डेन का सपना पूरा नहीं हुआ।

अब हम लोग बीकानेर में आ गये। गर्मी का मौसम, तेज धूप, गर्म हवाओं ने मुझे बेचैन कर दिया। कहां देहरा दून का मौसम और कहां रेगिस्तान की तपती धूप।

संस्थान भी नया विकसित हो रहा था, वहॉ भी सुविधाओं का अभाव। हम लोग पवनपुरी में एक किराये का मकान लेकर रहने लगे। मकान नया, साफ सुथरा किन्तु छोटा था अतः किचन गार्डेनिंग की कोई सम्भावना नहीं थी। ऊपर से पानी की किल्लत रहती थी। कुछ व ा बीतने के बाद हम लोगों ने एक कार खरीदी किन्तु उस मकान में कार रखने की जगह नहीं थी, अतः हम लोग गांधी नगर जो कि वेटरिनरी विश्वविद्यालय के सामने है वहॉ पर दूसरे किराये के मकान में शिफ्ट हो गये। यह मकान बड़ा था और सामने की तरफ थोड़ी जमीन (12x6 फिट) खाली थी। इस छोटी सी जमीन में हम लोग कुछ बोना ुरू कर दिये। आमतौर पर वि ाम जलवायु एवं बलुई मिट्टी तथा पानी का अभाव होने के कारण बीकानेर में किचन गार्डेनिंग नहीं होती थी। आजकल तो बहुत सारी नर्सरी खुल गई हैं। लोग फूलों के गमले घरों के आगे रखने लग गये है। पौधा रोपड़ भी काफी बढ़ गया है। लगभग बीस व ा पहले किचन गार्डेनिंग का बीकानेर में नितान्त अभाव था। जैसा मैंने बताया कि थोड़ी जमीन में हमने पालक, मूली, धनियां, ग्वार फली एवं तोरी की बेल को लगा दिया। इस किचन गार्डेन से जितना मिलता नहीं था उससे ज्यादा हम मेहनत करते थे। किन्तु एक भी मूली या अन्य कोई सब्जी मिल जाती थी तो बहुत ही सुखद अनुभव होता था। मन में सन्तो ा का भाव रहता था कि यह पूर्ण ुद्धता के साथ उगाई गई एवं रसायन मुक्त उत्पाद है। घर पर जो लोग मिलने जुलने आते थे वे भी देखकर खुशी जाहिर करते थे, पड़ोसियों एवं लोगों की बातों को सुनकर ऐसा लगता था कि हम लोग मानों खेती के प्रकाण्ड विद्वान हो गये हैं। किन्तु यहां भी हम लोग ज्यादा समय टिक नहीं पाये क्योंकि इनका चयन बागवानी के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष के पद पर सरदार वल्लभ भाई पटेल कृ ा एवं प्रौद्योगिक, मेरठ में हो गया और हम लोग गांधीनगर को छोड़कर व ा 2005 में मेरठ चले गये।

मेरठ के मोदीपुरम में पल्लवपुरम फेज–II, जो कि मेरठ विकास प्राधिकरण की कालोनी थी वहां पर फिर एक किराये का मकान लिया। मकान मालिक ने मकान के बाहर कालोनी की सड़क के थोडे भाग को कब्जा कर रखा था जिसे हम लोग किचन गार्डेन के लिए प्रयोग करने लगे। मेरठ की मिट्टी एवं पानी खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त है। वैसे प्राकृतिक व ार्ा औसत ही रहती है। वहां पर पहले से लगे प्राधिकरण के छायादार वृक्षों के नीचे की टहनियों को थोड़ा कांट छांट कर, फिर कंटीले तार लगाकर आवास के आस–पास आवारा फिरने वाले पशुओं से उसे सुरक्षित किया। फिर छोटी छोटी क्यारियॉ बनाकर उसमें धनियां, पालक, बैंगन एवं घृतकुमारी के पौधे लगाये। मुख्य सडक की तरफ जहां कंटीले तार लगाये थे इसके साथ साथ हेज भी लगाया। किचेन गार्डेन आकार में छोटा था लेकिन हम लोग कुछ न कुछ उगाकर रखते थे, क्यारियों में पानी देने का कार्य मेरे ही जिम्मे रहता था, वैसे मेरठ क्षेत्र में सब्जियों का उत्पादन काफी अच्छा होता है और सस्ते दर पर ही कालोनी में सब्जी मिल जाती थी, फिर भी अपने हाथ से उगाई गई सब्जियों का स्वाद अलग ही होता है। एक व ा तो हमने तोरी की बेल को घर के छत पर चढ़ा दिया और उससे इतनी ज्यादा तोरी फली की आस पास के सभी लोगों को दिया। एक बार व ार्ा ऋतु में लगाई गई तोरी पूरे जाड़े भर फल देती रही। यहीं से मुझे विश्वास हुआ कि कोशिश की जाए तो सफलता अवश्य मिलती है। अब मेरा भी मन किचेन गार्डेनिंग में लगने लगा था। वैसे भी मेरे पति अक्सर घर पर देर से आया करते थे क्योंकि विश्वविद्यालय में अधि ठाता छात्र कल्याण का कार्य देख रहे थे। बच्चों को स्कूल भेजने के बाद मैं स्वयं क्यारियों में पानी देना ओर उसकी सार–संभाल करने लगती थी। अब मैं स्वयं इनको बोलने लगी थी कि आफिस से आते समय टमाटर, बैंगन की पौध लाना या अब पालक, धनियां बोने का समय आ गया है। फिर क्या था कि एक दिन इन्होंने ाम को आकर बोला कि अब मैं पुनः परि ाद् की सर्विस में वापस जाना चाहता हूँ क्योंकि पेंशन संबंधी कुछ समस्या है। मैं बिना कोई उत्तर दिये चुप रही, क्योंकि मुझे लगता था कि यह जगह बीकानेर से अच्छी है, सर्विस में भी अच्छा मान सम्मान है और यहां से अपनी ससुराल एवं मायका दोनों ही नजदीक हैं। आखिर इन्होंने अपना तबादला परि ाद मुख्यालय, दिल्ली करा लिया और हम दोनों दिल्ली शिफ्ट हो गये। बच्चों को भी पहले देहरादून फिर दिल्ली शिफ्ट करना पड़ा, जिसमें काफी परेशानियां रही।

दिल्ली में कृ ा अनुसंधान भवन जो पूसा गेट पर है वहीं पर इनका आफिस था और उसी के सामने पटेल नगर में हमने किराये का एक फ्लैट लिया। संयोग से बच्चों को भी राजेन्द्रनगर में ही सलवान पब्लिक स्कूल में दाखिला हो गया और हम लोग फिर से आराम से रहने लगे। फ्लैट प्रथम मंजिल पर था और दोनों तरफ दो छोटी–छोटी बालकनी थी। आगे की तरफ बालकनी में मैंने तुलसी का एक पौधा गमले में लगाया फिर एक प्लास्टिक का बड़ा गमला खरीदा उसमें दूसरा तुलसी का पौधा लगाया। दोनों पौधे काफी अच्छे उगे इसके बाद मनी प्लांट तथा अन्य अलंकृत पौधे भी गमलों में ही लगाये। चूँकि बालकनी का आकार काफी छोटा था। अतः सब्जी या अन्य पौधे लगाना सम्भव नहीं था। वैसे भी पहले हम लोग बड़े मकानों में रहे थे अतः फ्लैट में दिल कम ही

लगता था ऊपर से दिल्ली की आपाधापी, भागम भाग की जिन्दगी। कुल मिलाकर दिल्ली की दुनिया ही अलग थी। फिर हम लोगों ने सोचा कि क्यों न सरकारी मकान के लिए कोशिश की जाय। फिर इन्होंने केन्द्र सरकार के दिल्ली स्थित जनरल पूल में आवेदन किया और थोड़ी दौड़ भाग के बाद मोतीनगर में एक टाइप VI फ्लैट प्रथम मंजिल पर मिल गया। फ्लैट काफी स्पेस वाला था जिसमें छः कमरे एवं अटैच सर्वेन्ट क्वार्टर भी था। चूंकि यह फ्लैट केवल दो मंजिल का था अतः नीचे का आधा क्षेत्रफल नीचे रहने वाले के लिए एवं पीछे का क्षेत्रफल उपर रहने वाले के लिए था। जब इन्होंने मुझे यह सरकारी फ्लैट दिखाया तो मैं भी बहुत खुश हुई। फिर इन्होंने सरकारी स्तर पर फ्लैट की अच्छी तरह से मरम्मत कराके पेंटिग करवाई। इसी बीच हम लोग बच्चों को स्कूल आने–जाने के लिए ऑटो, वेन, डी टी सी की बस की तलाश करने लगे। चूँकि मोतीबाग, राजेन्द्रनगर से दूर था अतः ऑटो एवं वैन वाले तैयार नहीं हुए और न तो स्कूल बस की कोई सुविधा वहां से सीधे राजेन्द्र नगर की थी न ही डी टी सी बस की। अतः हम लोगों ने तैयार किये फ्लैट में न जाने का निर्णय लिया।

इसी बीच मेरे पति सहायक महानिदेशक का कार्यभार संभाला और इन्हें नास्क काम्प्लेक्स में फ्लैट मिल गया। चूंकि यह फ्लैट पूसा में ही था अतः वहां से बच्चों के स्कूल से आने जाने में कोई परेशानी भी नहीं थी और हम लोग पूसा के नास्क काम्प्लेक्स में शिफ्ट हो गये। इस फ्लैट की लोकेशन बहुत ही आलीशान थी, दो बड़ी बालकनी भी थी। इसलिए पुनः इस बालकनी में हम लोग तुलसी की पौध एवं फूलों के गमले लगाने ुरू कर दिये। चूँकि यह विभागीय फ्लैट था अतः यहां पर फूलों की पौध एवं खाद यहीं से मिल जाया करते थे। वैसे तो यहां पूसा संस्थान होने के कारण सब्जियों की कोई कमी नहीं थी बाजार भी पास ही थी फिर भी हम लोग गमले में टमाटर एवं मिर्च लगा दिया करते थे। जो भी दो–चार मिर्च टमाटर मिलते थे उसमें ही बडा आनन्द आता था। कभी कभी पड़ोसी या मित्र आकर उसी पर चर्चा ुरू कर देते थे वहीं पर चाय पानी भी चलता रहता था और कब घण्टों बीत गये इसका पता ही नहीं चलता था।

दिन चर्या काफी अच्छी चल रही थी। बच्चे भी अच्छे स्कूल में सुकून से पढ़ रहे थे तभी इनका चयन काजू अनुसंधान संस्थान निदेशालय, पुत्तुर के निदेशक के लिए हो गया। इन्हें बीच में ही पुत्तुर (कर्नाटक) जाना पड़ा और मैं बच्चों का सेशन पूरा होने के बाद कर्नाटक गई। यह ऐसा समय था कि जब हमें भी दिल्ली अच्छी लगने लगी थी। कर्नाटक में कन्नड़ भा ा होने के कारण बच्चों को कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा।

व र्ा 2012 में हम लोग काजू अनुसंधान निदेशालय, पुत्तुर (कर्नाटक) के निदेशक आवास में रहने लगे। यह आवास दो मंजिला एवं आगे पीछे काफी जगह थी। पूर्व निदेशक लगभग एक व र्ा पहले सेवा निवृत हो चुके थे जो इस आवास में रहते थे अतः काफी दिन से खाली पड़े रहने के कारण बड़ी बड़ी घास एवं झाड़ियां उगी हुई थी। यहां पर एक आम का पौधा था, जो फलता भी था किन्तु उसे कोई खाता नहीं था और उस पेड़ के आम को कीड़े वाला आम कहते थे। बंगले के पीछे वाले भाग में केला लगा हुआ था किन्तु उसमें भी केले नहीं लगते थे। हम लोगों ने पूरे किचन गार्डेन क्षेत्र की सफाई करवाई। चारों तरफ कंटीले तार लगवाये। आगे की तरफ हेज लगवायी। इसके बाद किचन गार्डेनिंग का कार्य ुरू किया। सबसे पहले रंग बिरंगे क्रोटन के पौधे लगाये। गेंदा एवं गाम्फीना के फूल लगाये। याम तुलसी के कई पौधे लगाये। तुलसी तो बहुत ही ज्यादा हुई। फिर क्यारियां बनाकर उसमें

हरे फल वाले बैंगन, लौकी, मिर्च, लहसुन, लोबिया की बेल लगायी। लोबिया की फलत भी खूब हुई। कुछ देशी गुलाब एवं मेंहदी के भी पौधे लगाये। पुत्तुर समुद्र तट के नजदीक का क्षेत्र है अतः व ाा बहुत ज्यादा होती है और इसी कारण से यहां कीड़ों का प्रकोप भी ज्यादा रहता है। यहां के निवासी ज्यादातर किचन गार्डेन में नारियल का पौधा, केला, अनानास, जिमीकन्द, लोबिया, चौलाई एवं पोई की बेल लगाना पसंद करते हैं। मकान के पीछे वाले भाग में केला जो पहले से लगा था अब इसमें कई पोधे बन गये थे जिसमें केले लगने लगे थे। यह छोटी घार वाला कदली केला था जो खाने में काफी स्वादि ट था। अनानास में भी फल लगने लगे। तात्पर्य यह है कि व्यवस्था करने से किचन गार्डेन काफी अच्छा लगने लगा। कालोनी के लोग आकर देखने लगे। बंगले के प्रवेश द्वार के पास ही एक पपीते का पेड़ लगाया गया जो बहुत ज्यादा फल देता था एवं खाने में काफी स्वादि ट था। अब बात उस आम की करती हूँ जिसे कीड़े वाला आम के नाम से लोग जानते थे एवं इसके फल को खाते नहीं थे। वास्तविकता यह थी कि यह आम बहुत ही स्वादि ट एवं मिठास से भरपूर था। जब आम डाल पर ही पक कर गिरता था, तो उसमें कीड़े पड़ जाते थे, किन्तु यदि पूर्ण विकसित फल को तोड़कर घर में पकाया जाय तो कीड़े बिल्कुल नहीं पड़ते थे और स्वाद भी बना रहता था। अर्थात् वहां के लोगों को यह नहीं पता था कि किस अवस्था में इस आम की तुड़ाई की जानी चाहिए। अब यही आम कालोनी में मशहूर हो गया और सभी स्टाफ इसे चाव से खाने लगे। एक पौधे से करीब दो कुन्तल आम मिल जाता था, जिसे कालोनी के सभी घरों में बांट दिया करती थी। इसके अतिरिक्त घर के पीछे वाले हिस्से में एक क्यारी घृतकुमारी की भी लगाई गई थी जिसे हम लोग बीकानेर से ही लेकर गये थे। मैं जहां भी रही बीकानेर की घृतकुमारी (ग्वारपाठा) उगाती रही एवं बीकानेर की सांगरी डाक से मंगाकर खाती रही। इस तरह एक सुन्दर किचन गार्डेन पुत्तुर में तैयार किया। बंगले के सामने ही एक पाक्र बनवाया जिसमें कालोनी के सभी लोग बैठते एवं घूमते थे तथा वहीं से हमारे किचन गार्डेन को भी निहारते थे।

अब तक चार साल से ज्यादा का समय व्यतीत हो चुका था। भा ााई अवरोध के कारण बंगले एवं कालोनी तक ही ज्यादा समय बीत रहा था। वैसे लोग हिन्दी जानते थे किन्तु हिन्दी में बोलचाल कम ही पसंद करते थे। कभी कभी मुझे यह भी सुनाई पड़ता था कि आज निदेशालय में राजभा ाा हिन्दी पर बैठक हो रही है जिसमें नगर के अन्य संस्थाओं के अधिकारी भी भाग ले रहे हैं क्योंकि नगर राजभा ाा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष मेरे पति ही थे। इसी बीच इनका चयन केन्द्रीय ु क बागवानी संस्थान, बीकानेर के निदेशक हेतु हो गया। फिर वही समस्या की बच्चों को शिक्षा सत्र पूरा नहीं हुआ था। बेटी एम.एस.सी. कर रही थी एवं बेटा इंटरमिडियट में था। कुछ दिन सोच विचार के बाद हम लोग बीकानेर आ गये और बच्चों ने अपनी पढ़ाई कर्नाटक में जारी रखी। इस बार बीकानेर में इन्होंने संस्थान परिसर में रहने का निर्णय लिया। संस्थान में जो निदेशक आवास था वह खाली पड़ा था। आवास की चारदिवारी के अन्दर घास उगी पड़ी थी। प्रवेश द्वार के बगल में खाली स्थान पर कंकड़–पत्थर पड़े थे जो कभी मरम्मत करने वाले ठेकेदार छोड़ गये थे। उपर छत पर टूटी टंकी थी जिससे जो पानी सप्लाई होने पर बाहर गिरने लगता था। इसी मकान को साफ सुथरा किया गया। रंगाई पुताई की गई और 2016 में जाड़े के मौसम में हम लोग यहां रहने लगे। अब जो पौधे सूख गये थे उन्हें निकाल दिया गया किन्तु जो जीवित थे उन्हें कांट–छांट कर ठीक किया गया एवं लगातार पानी खाद देने से वो भी हरे हो गये। कुछ कनेर की झाड़ियां थी जो लगता था सूख गई हैं किन्तु उनकी जड़े जिन्दा थी पानी देने पर वे भी हरी हो गई। अब रोज सुबह लगभग एक से डेढ घण्टा एवं ााम को दो घण्टा हम दोनों किचन गार्डेन की साफ सफाई एवं पानी खाद देने में लगे रहते थे। इस बीच परिसर में रहने वाले लोग थोड़ा मजाकिया लहजे में छेड़ते भी थे ''क्या साहब किचन गार्डेनिंग कर रहे हैं'' क्योंकि उनका मानना था कि यहां कुछ होता नहीं है बेकार की मेहनत कर रहे है। कुछ लोग चुपके–चुपके बोलते थे कैसा निदेशक है नौकरों की जगह स्वंय काम करता है। ये इन बातों को अनसुना कर देते थे और कार्यालय समय के बाद अपने किचन गार्डेन मे जुट जाते थे।

इसके बाद हमने अरेलिया की हेज लगाई। अरेलिया के दो–चार पौधे स्वयं उगे थे उन्हें एक रूप दिया। क्यारी के पास पीले डयुरेन्ता की हेज लगाई। सदाबहार की एक पंक्ति लगाई जिसमें व ा भर फूल लगते रहते है। कनेर के पांच छः पौधे इस समय लहलहा रहे हैं उन्हें देखकर लगता ही नहीं कि ये वही पौधे हैं जो कभी सूखी डंडी की तरह खड़े थे। मुख्य गेट से घुसते ही चांदनी का एक ठूँठ खड़ा था आज वो हरा भरा लग रहा है जिसमें हमेशा फूल आते रहते हैं। अन्दर की तरफ जो फल वृक्ष हैं उनमें आम, जामुन, अनार, अंजीर, आंवला, करौंदा, ाहतूत, मौसमी, बेल के एक एक पौधे तथा किन्नों के दो पौधे हैं। एक छोटा पौधा किन्नों का, एक चकोतरा तथा एक पौधा परिजात का भी लगाया गया। एक खिर्नी का

देशी पौधा, दो अमरूद के एवं खिर्नी का एक कलमी छोटा पौधा भी लगा है। इनकी उचित देखभाल की गई और आज खिर्नी एवं अमरूद को छोड़कर सभी फल दे रहे हैं। ायद अमरूद एवं खिर्नी के लिए जलवायु अनुकुल नहीं है। े ा सभी पौधे फल दे रहे हैं। हम लोगों के आने से पूर्व इनमें से कोई पौधा फल नहीं देता था। आज आंवला के पौधे से लगभग एक कुन्तल, किन्नों के दो पौधे से एक कुन्तल, मौसमी से 40–50 किलो, आम से 20 किलो तक फल मिल जाते हैं। शहतूत एवं अंजीर भी खूब फलते हैं। करौंदा भी 2–3 किलो फल दे देता है। नींबू से व र् भर फल मिलता रहता है। नया रोपित बेल भी इस व र् दो फल दिया है। आंवला, किन्नों, मौसमी से तो अपने उपयोग के अतिरिक्त परिसर के अन्य स्टाफ तथा इ ट मित्रों को भी यथोचित दिया जाता है। मेरे किचन गार्डेन में आमतौर पर सभी फल समय से पूर्व आते हैं एवं अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। हतूत बहुत ज्यादा फल देती है। फलों में अनार, जामुन एवं अंजीर को गिलहरी व चिड़ियां इतने चाव से खाती हैं कि उनसे एक भी फल नहीं मिलता है किन्तु फिर भी हम इन फलों की देखरेख अच्छी तरह से करते हैं जिससे मेरे किचन गार्डेन में चिड़िया हमेशा चहकती रहती हैं। चिड़ियों का आलम तो ऐसा है कि सुबह जब मैं उठती हूँ चिडियां चहचहाने लगती है और तब तक बोलती रहती हैं जब तक उन्हें खाने को कुछ नहीं दे देती हूँ। इन चिड़ियों को अन्न, रोटी के अलावा भुजिया खाना भी बहुत पसंद हैं।

जहां तक मौसमी सब्जियों का प्रश्न है जाड़े के मौसम में पालक, मेंथी, लहसुन, प्याज, धनियां, मूली, गोभी, मिर्च, टमाटर एवं बैंगन प्रमुखता से उगा रही हूँ। व ार् ऋतु में ग्वारफली, चौलाई, तोरी, लोबिया, भिण्डी आदि बोई जाती है। लोबिया को भी गिलहरी बड़े चाव से खाती है और एक भी फली नहीं मिलती है। मौसमी सब्जियां इन छोटी–छोटी क्यारियों में इतनी हो जाती है कि अपने उपयोग के अतिरिक्त पास–पड़ोस एवं आफिस के अन्य स्टाफ को भी देती रहती हूँ। अब तो साग के लिए सरसों भी बोती हूँ। इसके अतिरिक्त सोया एवं बथुआ अपने आप उग जाता है। बंगले के पीछे की तरफ कुंदरू की भी बेल लगायी है उससे भी गर्मी एवं व ार् ऋतु में थोड़े फल मिल जाते हैं। रोज सुबह उठकर पहले गार्डन में जाना उसके बाद ही दिन चर्या ुरू होती है। सुबह–सुबह जब ताजी सब्जियां अपने हाथों से तोड़ती हूँ तो उसका आनन्द ही अलग है। इस व र् तो प्याज की फसल भी अच्छी हुई है। सेम की भी दो–चार बेल लगा दी है उससे भी अच्छी फलद मिली है। औ ाधीय एवं सुगंधित पौधों में तुलसी, गिलोय, लेमन घास, करीपत्ता एवं सहजन का एक पौधा भी लगाई हूँ जिसका उपयोग भी आवश्यकतानुसार करते रहते हैं। बंगले की चारदिवारी के बाहर नीम, लसोडा, खेजड़ी एवं बोगेनवेलिया के पौधे लगे हैं जो बंगले की सुन्दरता को ही नहीं अपितु पर्यावरण को भी ुद्ध एवं आक िक बनाये रखने में मददगार है। अभी अप्रैल का महिना चल रहा है किन्तु मेरे किचन गार्डेन में इस समय प्याज एवं टमाटर की फसल लहलहा रही है। एक क्यारी में आलू बोया है वह भी तैयार है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में आलू की पैदावार भी अच्छी होती है। क्यारियों के किनारे गेंदा का फूल लगाये गये है जो इस समय खूब खिले हुए हैं। गेंदा के इन फूलों को गिलहरी बड़े चाव से काट काट कर खाती रहती है। लगभग एक किलो फूल रोज बिखेर देती है। ोभाकारी समसामयिक फूलों को भी लगाते रहते हैं। गेंदा के पीले नारंगी फूल इस समय वासंती छटा बिखेर रहे हैं। लगभग चार व ों से यह कार्य निरंतर चल रहा है।

इस प्रकार किचेन गार्डेनिंग से परिवार के लिए साग–सब्जियां, फल, फूल मिलने के साथ पर्यावरण संरक्षण, पारिवारिक सदस्यों की सहभागिता, बच्चों की ट्रेनिंग एवं स्वयं का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। इसके अतिरिक्त बाजार में उपलब्ध गन्दे पानी से उगाई गई सब्जियां एवं अत्यधिक रासायनिक दवाओं के प्रयोग से उगाई गई सब्जियों के उपयोग से भी छुटकारा मिल जाता है। किचेन गार्डेनिंग करके आप स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों सिद्ध कर सकते हैं। इसलिए जमीन एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार आप किचेन गार्डेनिंग अवश्य करें, ऐसा मेरा आग्रह है। किचेन गार्डेनिंग के लिए ज्यादा पढ़ा लिखा होना आवश्यक नहीं है। आप आवश्यक कौशल विकास हेतु नजदीकी कृि ा विज्ञान केन्द्र, कृि ा विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान, कृि ा एवं उद्यान विभाग से सम्पक्र करके कार्य करें तो ज्यादा सफलता मिलेगी क्योंकि आपको उन्नत तकनीक के साथ उन्नत पौध एवं बीज भी वहां से मिलते हैं।

कविताएं

गर्वित किसान

आओ सुनाऊँ गीत गर्वित किसान के,
श्रम के सरोवर और धैर्यपूर्ण प्राण के।
अब न ये पिछड़े हैं, आश्रित न दान के,
क्योंकि ये बन गए हैं, साथी विज्ञान के।
धूप, शीत, मेघ, ताप सहते हैं मान के,
क्यारी में फूल खिले इनके अरमान के।
खेतों में फसलें झूमें गेहूँ जौ धान के,
बागों में गीत गाए पंछी विहान के।
अन्न के अंबार भरे खेत खलिहान में
अबंर में गूँज उठे मीठे सुर गान के।
भरे भंडार चिन्ह हैं, प्रगति और शान के,
हीरे से चमक उठे 'स्वेद बिन्दु' किसान के।

डॉ. कनक लता
कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल

'एक दिन प्रलय आएगी'

बचपन से सुनती आयी थी, एक दिन प्रलय आएगी।
एक अदना सी शक्ति 'कोरोना', विश्व पर विजय पाएगी।।
प्रकृति के नाजुक हाथों से, जो छीना छपटी की मानव ने,
तोड़ा उसके नियमों को, अपनी सत्ता जमाने में।।
जो सीमाओं के बंधनों में, तुमने इसको नोचा हैं।
ये प्रलयशक्ति अब बिफर पड़ेगी, क्या परिणाम भी,सोचा हैं ?।।
आज कहां हैं? वो महा शक्तियां, जो अदम्य, अहंकारी दहाड़ भरती थी।

अपनी ताना शाही से, विश्व विजय का हुंकार भरती थी।।
अरे! अभी भी देर नहीं, किंचित तो अब भी संभलो तुम।
अपने स्वार्थों की आहुति में, ना इसको यूं कुचलो तुम।।
अब भी ना ये चिर निद्रा टूटी तेरी, तो प्रलय तो ये फिर आनी है।

संभल जाओ अब एक–एक प्राणी, कीमत सबको चुकानी हैं!!
प्रकृति की मार से, इस बार कोई ना बच पाएगा
निर्दोषों का गर खून बहा, फिर कोई और कोरोना आ जाएगा।
तिनका तिनका फिर बिखरेगा, कोई ना समक्ष टिक पाएगा। वो
सर्वेसर्वा जब तांडव मे, अपना सुदर्शन चलाएगा तो हे मानव!
ना कर आह्वान विनाश का, ना अपनी सीमा को लांघ कभी।
ना प्रलय को तू कर उजागर, ना निर्बल निर्दोषों को मार यूहीं।।
तब जाकर शांत होगी प्रलय, संसार रह पाएगा तभी सुखी।।
इतिशुभम् !

डॉ. सरिता चौहान
ई–198, नारायण सदन, यूरो किड्स स्कूल के पास
अग्रसेन नगर, चूरू (राजस्थान)

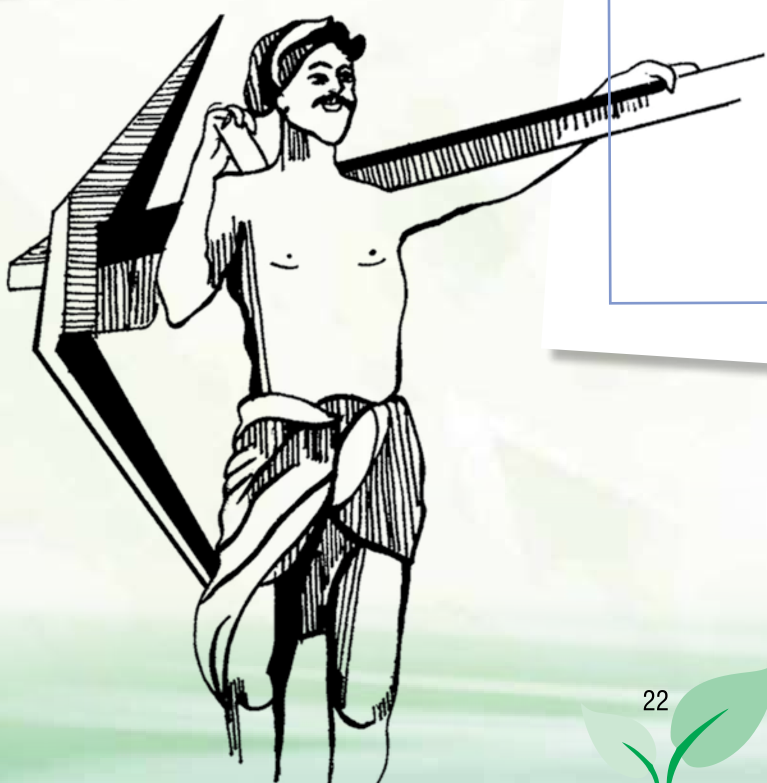

शुष्क बागवानी में जल सरंक्षण : समय की मांग

पी.एल. सरोज एवं अनीता मीणा

जल ही जीवन है व जीवन के लिए अति आवश्यक है। विश्व में जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि में किया जाता है। वर्तमान में अनुमानतः कुल जल का 59 प्रतिशत कृषि में, 23 प्रतिशत उद्योगों में और शेष 8 प्रतिशत का उपयोग घरेलू दैनिक कार्यों हेतु किया जाता है। कृषि कार्यों हेतु विश्व स्तर पर लगभग 1–5 हेक्टेयर क्षेत्रफल में 2000 से 2555 घन किलोमीटर जल का उपयोग प्रति वर्ष किया जाता है। ऐसा मानना है कि वर्ष 2030 तक 71 प्रतिशत वैश्विक जल का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाएगा। अपने देश में भी जल का मुख्य उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए होता है। इसी वजह से देश की पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के विकास को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है और बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाँ, जैसे – भाखड़ा नांगल, हीराकुंड, दामोदर घाटी, नागार्जुन सागर, इंदिरा गंधी नहर, परियोजना आदि शुरु की गई हैं। भारत में आज भी जल की मांग, सिंचाई की आवयकताओं के लिए अधिक है। धरातलीय जल और भूजल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में ही होता है। इसमें धरातलीय जल का 89 प्रतिशत और भूजल का 92 प्रतिशत तक उपयोग किया जाता है। जबकि औद्योगिक क्षेत्र में, सतह जल का केवल 2 प्रतिशत और भूजल का 5 प्रतिशत भाग ही उपयोग में लाया जाता है। घरेलू कार्यों में धरातलीय जल का उपयोग भूजल की तुलना में अधिक है। कुल जल प्रयोग में कृषि सेक्टरों का हिस्सा दूसरे क्षेत्रों से अधिक है। भविष्य में इसका उपयोग और अधिक बढ़ने की संभावना है।

अब दुनिया में पानी की कमी एक विकट समस्या का रुप ले चुकी है। और हर देश इस से प्रभावित है। अमेरिका से लेकर–मध्यपूर्व और भारत से लेकर अफ्रीका के देशों में पानी की समस्या लगतार विकराल होती जा रही है। दरअसल शहरों का फैलाव होता जा रहा है और नई–नई जगहों पर नए–नए शहरों को बसाया जा रहा है जिसके परिणामस्वरुप जलस्तर लगतार नीचे जा रहा है। विश्व की लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या भारत में है जबकि उपलब्ध जल की मात्रा 4 प्रतिशत ही है। भारत ने पहली राष्ट्रीय जलनीति वर्ष 1987 में स्वीकृत की थी, जिसका उद्देश्य–जल स्त्रोतों का संरक्षण, बाढ़ प्रबंधन व नियंत्रण व जल के उचित दोहन को सुनिश्चित करके कृषि विकास को सुनिश्चित करना है।

जल के महत्व को देखते हुए वर्ष 2007 को 'जल वर्ष' घोषित करते हुए भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र में जल की समय पर, सही मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई परियोजनाओं को समय पर पूरा करके तथा क्षतिग्रस्त सिंचाई परियोजनाओं की मरम्मत व सुधार को प्राथमिकता प्रदान की है। कुछ फसलों के लिए वर्षा जल की कमी सिंचाई को और भी आवश्यक बनाती है। सिंचाई की समुचित व्यवस्था ने ही बहुफसलीकरण प्रक्रिया को संभव बनाया है। ऐसा भी पाया गया है कि सिंचित भूमि में कृषि की उत्पादकता असिंचित भूमि की अपेक्षा ज्यादा होती है क्योंकि अधिक उपज देने वाली फसलों के लिए भी नियमित न्यूनतम नमी आवश्यक है जो केवल सिंचाई से ही संभव है।

कृषि के बढ़ते उत्पादन हेतु अधिक जल की आवश्यकता का अनुमान है। समन्वित जल संसाधन विकास में राष्ट्रीय आयोग के मुताबिक देश में सतही जल की सिंचाई कुशलता सिर्फ 35 से 40 प्रतिशत है जबकि भूजल की सिंचाई कुशलता सिर्फ 65 प्रतिश्त के लगभग है। अपनी बढ़ती जनसंख्या हेतु खाद्यान्नों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए खेती में जल की मांग निरंतर बढ़ रही है।

समन्वित जल संसाधन विकास के राष्ट्रीय आयोग ने अनुमान प्रस्तुत किया है कि सिंचाई हेतु जल की मांग 541 बिलियन क्यूबिक मीटर से बढ़कर वर्ष 2050 तक लगभग दुगुनी 1072 बिलियन क्यूबिक मीटर हो जाएगी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष 2025 में सिंचाई हेतु जल की उपलब्धता वर्तमान की 83 प्रतिशत से घटकर 73 प्रतिशत तक ही रह जाएगी। यह हकीकत है कि सिंचित कृषि क्षेत्र में विस्तार के कारण कृषि में जल की आवश्यकता तीव्र गति से बढ़ रही है। घटते हुए भूजल को रोकने के लिए पानी की अधिक आवश्यकता वाली फसलों की जगह कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों को उगाना और सिंचाई जल में बचत करने वाली विधियों को अपनाना लाभदायक व व्यावहारिक होगा।

भारतीय परिदृश्य में जल संरक्षण की आवश्यकता

जल संरक्षण से तात्पर्य है, वर्षा जल का संरक्षण अर्थात् वर्षा के मौसम में जो अत्यधिक पानी सतही जल के रूप में बह जाता है, उसे विभिन्न प्रकार की संरचनाओं जैसे कि गड्ढे, खाड़ी, डिग्गी, तालाब आदि बना कर संरक्षित करना। साथ ही भूमिगत जल स्तर को बढ़ाने हेतु कुओं व ट्यूबवेलों को अपवही जल के माध्यम से पुनर्भरण करना अर्थात् भूमिगत जल निकायों में जलस्तर को बढ़ाना। जल संरक्षण की आवश्यकता से हम सभी भली–भांति परिचित हैं। यह प्राचीन भारतीय सभ्यता का एक सिद्धांत है, ''जल ही जीवन है'' अर्थात् जल के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारे जीवन की सभी प्राथमिक गतिविधियों को जैसे दैनिक कार्य, कृषि, पशुपालन, औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियाँ आदि में जल का अत्यधिक महत्व है। जल संरक्षण की आवश्यकता के महत्त्व पर चर्चा करें, तो हम पायेगें की हाल ही में विश्व आर्थिक मंच की एक रिपोर्ट में बताया गया कि वर्तमान समय में ''जलसंकट'' सबसे बड़ा वैश्विक खतरा है।

भारत के संदर्भ में 2016 में जल संकट की स्थिति यह है की भारत के एक तिहाई जिले भीषण सूखे से प्रभावित थे। स्वतंत्रता के समय (1950 के दशक) जल की उपलब्धता प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति 5000 घन मीटर थी, जो कि सन् 2000 में 2000 घन मीटर हो गयी जो वर्ष 2025 में 1341 घन मीटर तथा वर्ष 2050 में 1140 घन मीटर रह जाएगी (भारत सरकार–2009)। भविष्य में यह स्थिति और भी भयावह होगी। भारतीय संदर्भ में बात करें, तो हम पायेगें कि यहां पर वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत कम है, तथा कुल वर्षा की मात्रा का अधिकतम हमें वर्ष के तीन महीनों (जुलाई से सितम्बर) में प्राप्त होता है। हमारे देश में कुल वर्षा जल का 50 प्रतिशत जल 15 दिनों में प्राप्त होता है तथा 90 प्रतिशत नदियाँ वर्ष के चार महीने बहती हैं। जिसकी अधिकतम, अपवाह जल के रूप में अनुपयोगी हो जाता है। जब कि जल की आवश्यकता कृषि व अन्य कार्यों हेतु वर्ष भर होती है। भारत के अधिकतर राज्य सूखाग्रस्त क्षेत्रों में सम्मलित हैं,जहाँ पर वर्षा की मात्रा भी निम्न है साथ ही भूमिगत जल का स्तर भी एक चिन्ता का विषय है। हमारे 70 प्रतिशत सतही तथा भूमिगत जल स्त्रोत प्रदूषित हो चुके हैं। क्योंकि भारत भूमिगत जल स्रोतों का सबसे अधिक उपयोग करने वाला देश है, इसलिए भूमिगत जल स्तर 10–50 सें.मी. प्रति वर्ष की दर से घट रहा है। मुख्य समस्या जल का अपव्यय है जल की कमी नहीं वर्तमान में जहां एक तरफ जल की उपलब्धता घटती जा रही है वहीं दूसरी ओर जल अपव्यय, अनुचित जल प्रबंधन व संरक्षण के अभाव ने एक विकराल समस्या का रूप धारण कर लिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या की जल पूर्ति व कृषि कार्यों हेतु जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिये तथा भविष्य सुरक्षित करने के लिये जल संरक्षण के प्रभावी उपाय अपनाने होगें।

राजस्थान परिदृश्य में जल संरक्षण की आवश्यकता

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग में स्थित राजस्थान एक सूखा प्रदेश है जहां साल में औसतन 400 से 500 मि.मी. वर्षा होती है। राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा प्रान्त है जिसका कुल क्षेत्रफल 342.52 लाख हेक्टेयर है। जिसमें से 257 लाख हेक्टेयर क्षेत्र कृषि योग्य भूमि है जो कि देश के कुल कृषि योग्य क्षेत्र का 11 प्रतिशत है। वर्षा की अपर्याप्तता व राज्य में जलवायु की विविधता के कारण राजस्थान देश का सर्वाधिक सूखा प्रदेश है। वर्तमान में राज्य में उपलब्ध सतही जल की मात्रा लगभग 158.60 लाख एकड़ फीट है जो कि देश के कुल उपलब्ध सतही जल संसाधनों का 1.16 प्रतिशत है। देश के कुल सिंचित क्षेत्र का मात्र 9.2 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है। इस प्रकार राजस्थान जल की कमी वाला राज्य है। राज्य का दो तिहाई भाग खेती के लिए वर्षा पर आश्रित है अतः राजस्थान में वर्षा जल को अधिक से अधिक मात्रा में संग्रहित करना अति आवश्यक है ताकि सतही जल की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ

भू–जल स्तर भी बढ़ सके। उपलब्ध जल एवं वर्षा जल के उपयोग हेतु योजना बनाकर पानी का संरक्षण करते हुए सिंचाई सुविधाओं में विस्तार करना राज्य के विकास के लिए अपरिहार्य है। भू–जल राजस्थान में जल का प्रमुख स्त्रोत है लेकिन भू–जल स्तर में तीव्र गति से आई गिरावट .राजस्थान राज्य के लिए गंभीर समस्या बन गई है। भू–जल ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई का सबसे बड़ा और लाभकारी स्त्रोत है। हर वर्ष राजस्थान की लगभग 51 प्रतिशत आबादी को उपलब्ध पेयजल के घटते स्तर की समस्या का सामना करना पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के कारण प्रदेश में वर्षा के वितरण की मात्रा, मानसून आगमन एवं वापसी के समय में परिवर्तन हो रहा है तथा भूमि में उपलब्ध जल की मात्रा भी प्रभावित हो रही है। प्रत्येक तीसरे–चौथे वर्ष में पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश क्षेत्रों में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। राज्य में सूखे की पुनरावृति से राज्य में गिरते भू–जल स्तर के कारण भूमिगत जल भण्डार में कमी के मुख्य कारण निम्नांकित है;

- भूमिगत जल का सिंचाई के लिए अत्यधिक दोहन किया जाना।
- भूमिगत जल भण्डारण हेतु प्राकृतिक पुनर्भरण क्रिया में अवरोध डालना जैसे– अनियंत्रित चराई,
- भूमि का सीमेन्टीकरण, जंगल नष्ट करना इत्यादि।
- कम वर्षा की स्थिति में भी अधिक सिंचाई चाहने वाली फसलें उगाना।
- खेत व नालों द्वारा वर्षा जल का व्यर्थ बह जाना।
- जल संचय के लिए बने तालाब, चेक डैम या अन्य संरचनाओं की मरम्मत, रख–रखाव एवं सुरक्षा
- पर ध्यान न देना।
- भूमि एवं नमी संरक्षण उपायों की किसानो द्वारा उपेक्षा एवं संरचनाओं के रख–रखाव के प्रति
- लापरवाही।
- उन्नत कृषि यंत्रों, उन्नत सिंचाई प्रणाली (फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई) एवं उन्नत सस्य तकनीक
- अपनाने में रूचि की कमी।
- प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर पानी एवं वन संसाधनों के प्रबन्ध में कुशलता का अभाव।
- कुआँ, तालाब एवं नाले की सफाई के प्रति उदासीनता।

पिछले कुछ दशकों से भू–जल का बड़े पैमाने पर दोहन हुआ है। दोहन के मुकाबले पुनर्भरण की दर बहुत कम होने के कारण भू–जल स्तर तेजी से गिर रहा है। जिन क्षेत्रों में भू–जल का स्तर एक निश्चित सीमा से नीचे चला गया है उन्हें “डाक्र जोन” कहते हैं। राजस्थान में कुल 239 में से 198 ब्लॉक ''डाक्र जोन'' घोषित हो चुके हैं। भू–जल के अत्यधिक दोहन से जल की गुणवत्ता भी खराब होती है। जिस पानी में फ्लोराइड,नाइट्रेट और टीडीएस जैसे रसायन की मात्रा ज्यादा होती है वह जल पीने योग्य नहीं होता है। भू–जल के कृत्रिम पुनर्भरण के लिए वर्षा जल का संग्रहण किया जा सकता है जिससे भू–जल का स्तर बढ़ सके तथा भविष्य में जल की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

जल संरक्षण तकनीक

भारत में विभिन्न प्रकार के भूभाग हैं जो जल संरक्षण की बात करते समय चुनौतीपूर्ण है। यहां दस पारंपरिक तरीके हैं जो अभी भी उपयोग किए जाते हैं। विविध भू–भाग होने से भारत में जल संरक्षण और जल के उपयोग की चुनौती है। एक विशेष समाधान इस प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में लागू नहीं है। इसके अलावा, जबकि प्रौद्योगिकी का उपयोग और विज्ञान की उन्नति तैयार समाधान प्रदान कर सकती है, कभी–कभी, पारंपरिक समय–परीक्षण तरीके लोगों की आवश्यकताओं को बहुत अधिक प्रभावी तरीके से पूरा करने में मदद कर सकते हैं। सामान्य रूप से निम्न प्रकार से जल संचयन कर सकते हैं:–

- जल संरक्षण की परम्परागत तकनीक
- जल संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीक
- जल संरक्षण की कृषि आधारित आधुनिक तकनीक
- जल संरक्षण की जैवप्रौद्योगिकी तकनीक

1. जल संरक्षण की परम्परागत तकनीक

राजस्थान के लोग पारंपरिक रूप से पूरे राज्य को दो क्षेत्रों में विभाजित करते हैं, जिनमें से एक में पालर का पानी और दूसरे में वकार का पानी होता है। पलार का पानी वर्षा का पानी है, जो प्राकृतिक पानी का सबसे शुद्ध रूप है, और इसे तीन से पांच साल तक टांका में रखा जा सकता है। वकार पानी भूमिगत पानी है जो पृथ्वी से बाहर निकल गया है, और इसलिए, इसमें खनिज घुल गए हैं। पलार (भूजल) का उपयोग करने वाले फसलें अलग–अलग बुवाई के समय और सिंचाई के तरीकों के साथ अलग–अलग होती हैं। राजस्थान के लोगों को भी भूमि के बारे में गहरी जानकारी है और वे मिट्टी के प्रकारों का सामना करते हैं। राज्य में कुछ ऐसे कुएँ हैं जिन्हें सागर–का–कुआ कहा जाता है, जिनमें भारी मात्रा में पानी है। ये कुएं लगभग 60 मीटर गहरे हैं और ये कभी

सूखे नहीं। उनका पानी शुद्ध होता है, उनमें कोई मैल जमा नहीं होता है और पानी बहता रहता है वे लगभग नगण्य पानी के वाष्पीकरण के कारण लंबे समय तक पानी रोक सकते हैं। उनके पास स्वयं का जलग्रहण क्षेत्र नहीं है और न ही वे किसी पानी के पाठ्यक्रम से जुड़े हैं। वे तालाब या आस–पास स्थित झील के पानी से पहुँचते हैं। अन्य जल निकायों की तुलना में बोरियों से बहुत कम पानी का वाष्पीकरण होता है। आधे बोरियों की स्थिति काफी अच्छी है जबकि शेष रखरखाव की आवश्यकता है। राजस्थान मई जल सरंक्षण की परम्परागत ततकनीक निम्न प्रकार हैं–

1.1 झालरा

मानव निर्मित टैंक हैं, जो अनिवार्य रूप से सामुदायिक स्नान और धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग किए जाते हैं। वे डिजाइन में गोलाकार या आयताकार होते हैं। वे एक तालाब या ऊपर की ओर स्थित एक झील के भूमिगत सीपेज से पानी इकट्ठा करते हैं। इनमें से कुछ झालरों का उपयोग अब सिंचाई के लिए किया जाता है। खनन और औद्योगिक गतिविधियों द्वारा कुछ झालरों को नष्ट किया जा रहा है। जलग्रहण क्षेत्रों में गतिविधियों को नियंत्रित करके उनकी रक्षा करने की तत्काल आवश्यकता है। इन झालरों को फिर से उगाने का एक प्रभावी तरीका री–फॉरेस्टेशन भी है। यदि इन झालरों को अपने मूल उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाना है।

1.2 नादि (नाड़ी)

बरसात के मौसम के दौरान प्राकृतिक जलग्रहण के लिए पानी का भंडारण करने के लिए उपयोग किए जाने वाले एक गाँव के तालाब को दिया जाने वाला स्थानीय नाम नाडी है। यह वर्षा जल के संग्रहण के लिए एक प्राचीन प्रणाली थी। अधिकांश गांवों की अपनी नाडी होती थी, और नाडी स्थल का चयन ग्रामीणों द्वारा उपलब्ध प्राकृतिक जलग्रहण और इसकी जल उपज क्षमता के आधार पर किया जाता था। एक नाडी से पानी की उपलब्धता बारिश के बाद दो महीने से लेकर एक वर्ष तक होगी। शुष्क व सुखे क्षेत्रों में नादियों की गहराई 1.5–4 मीटर होती है और भारी रिसाव नुकसान, छोटे कैचमेंट और कम अपवाह की विशेषता होती है। नाडी एक प्राकृतिक सतह अवसाद है जो एक या अधिक दिशाओं से वर्षा जल प्राप्त करता है। कुछ नाड़ियों की क्षमता और पानी के प्रतिधारण को बढ़ाने के लिए एक या दो तरफ पत्थर की दीवारें बनाते हैं। स्थानीय लोगों द्वारा समय–समय पर डी–सिल्टिंग और गहरीकरण किया जाता था। सामान्य वर्षा के वर्षों में, अधिकांश नाड़ियाँ लगभग चार से आठ महीनों तक पानी को बरकरार रख सकती हैं, जबकि कुछ पूरे वर्ष पानी को बनाए रखेंगे। इन नाड़ियों का पानी अभी भी पीने और अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है

1.3 तालाब

तालाब एक लोकप्रिय शब्द है जिसका उपयोग स्थानीय रूप से घाटियों और प्राकृतिक घाटियों में स्थित जलाशयों के लिए किया जाता है। पुराने तालाबों में, वर्षा जल को रखने के लिए मजबूत परात की दीवारों के साथ केवल ढलान पक्ष प्रदान किया जाता था। इनमें से अधिकांश तालाब चोंका–दैजार पठार पर अलग–अलग ऊँचाई और गहराई पर स्थित हैं। कुछ तालों में कुओं को

उनके बिस्तर में बारीश कहा जाता है। परंपरागत रूप से प्रत्येक तालब के कैचमेंट के रखरखाव के लिए विशेष देखभाल दी गई थी। मौजूदा तलाबों में से आधे में पानी की गुणवत्ता मानव उपभोग के लिए काफी अच्छी और फिट है। दूसरे आधे हिस्से में पानी प्रदूषित है। एक बार जब ये तालाब स्थानीय निवासियों के लिए पीने के पानी के मुख्य स्रोत के रूप में काम करते थे, लेकिन अब उनका उपयोग मवेशियों और सिंचाई के लिए किया जाता है। जब उनका पानी सूख जाता है, तो बेड का प्रयोग कृषि कार्य के लिए किया जाता है।

1.4 टैंक (टांका)

तलाबों के विपरीत, विशेष रूप से अधिक हालिया मूल के, टैंक का निर्माण बड़े पैमाने पर चिनाई वाली दीवारों के साथ किया गया था। वे या तो वर्गाकार या आयताकार हैं और उनमें जल–धारण क्षमता बहुत अधिक है। शहर के बाहरी इलाके में बारिश के पानी को लाने के लिए नहरों की एक कुशल प्रणाली के साथ टैंक उपलब्ध बनाये जाते थे। इस प्रकार प्रत्येक टैंक को एक विशेष जलग्रहण क्षेत्र और नहरों की एक प्रणाली द्वारा समर्थित किया गया था। लगभग सभी तालाबों और टैंकों में, स्थानीय सामग्री और कौशल का उपयोग निर्माण के लिए किया गया था। टंको मे बारिस का पानी पाइपों द्वारा एकत्रित किया जाता था और गर्मी में पानी की उपलब्धता नहीं होने पर यह पीने और घरेलू कम काज के लिए उपयोग किया जाता है।

1.5 झील

शुष्क क्षेत्रों में बड़े जलाशय के रूप मे प्राकृतिक झीले हैं। सबसे पुराना बालसमंद है, जिसका निर्माण 1126 ईस्वी में किया गया था, और बाद में इसकी जल धारण क्षमता को बढ़ाने के लिए समय–समय पर इसे बढ़ाया गया था। शेष चार अर्थात, लालसागर (1800), कायलाना

(1872), तखतसागर (1932) और उम्मेदसागर (1931), बालसमंद झील के आधार पर बनाये गए हैं। झीलों मे जल धारण समता अधिक होती है व ये झीलें एक निश्चित समय में लगभग 700 मिलियन क्यूबिक फीट पानी संचय कर् सकती हैं, जो आठ महीनों के लिए लगभग 0.8 मिलियन लोगों के पानी की मांग की पूर्ति कर सकती हैं।

1.6 बावड़ी

शुष्क क्षेत्रों बावड़ी तकनीक द्वारा जल सरंक्षण एक आम व खास बात है। इस तकनीक को अलग अलग जगह में अलग अलग नामो से जाना जाता है। पारंपरिक तौर पर बावड़ी को गुजरात में वाव या वावड़ी, या राजस्थान और उत्तरी भारत में बावली या बावड़ी कहा जाता है। स्टेपवेल स्थानों ने अक्सर सुझाव दिया कि किस तरह से उनका उपयोग किया जाएगा। जब एक गांव के भीतर या उसके किनारे पर एक स्टेपवेल स्थित था, तो इसका उपयोग मुख्य रूप से उपयोगितावादी उद्देश्यों के लिए और एक सामूहिक सभा के लिए एक शांत स्थान के रूप में किया जाता था। जब व्यापार मार्गों पर गांव के बाहर स्टेपवेल थे, तो उन्हें अक्सर आराम करने वाले स्थानों के रूप में देखा जाता था। सौराष्ट्र के समुद्री तट के उत्तर में पाटन से प्रमुख सैन्य और व्यापार मार्गों पर कई महत्वपूर्ण स्टेपवेल स्थित हैं। जब चरणबद्ध तरीके से सिंचाई के लिए विशेष रूप से उपयोग किया जाता था, तो रिम पर एक स्लुइस का निर्माण किया जाता था, जो पानी को

उठाकर एक कुंड या तालाब तक ले जाता था, जहां से यह एक जल निकासी प्रणाली के माध्यम से चलता था और खेतों में डाला जाता था।

1.7 कुंड

पश्चिमी राजस्थान में थार रेगिस्तान के रेतीले इलाकों में पाए जाने वाले वर्षा जल संचयन संरचनाएं हैं। वे इस क्षेत्र को डॉट करते हैं और पीने के पानी का मुख्य स्रोत हैं। कुंड एक गोलाकार भूमिगत कुआँ है। यह एक तश्तरी के आकार के जलग्रहण क्षेत्र की तरह दिखता है, जो धीरे–धीरे उस केंद्र की ओर ढलान लेता है जहाँ कुआँ (कुंड) स्थित है। कुंड की गहराई और व्यास पीने और घरेलू उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली पानी की आवश्यकता पर निर्भर करता है। अच्छी तरह से गड्ढे के किनारे चूने और राख के साथ कवर किए गए हैं। अधिकांश गड्ढों को पानी की रक्षा के लिए एक ढक्कन द्वारा कवर किया जाता है। कुंड अमीर व्यापारियों और भूमि स्वामी के स्वामित्व में हो सकता है। हालांकि, कुंड बहुत आवश्यक हैं कि कुंडों के महत्व के साथ जलभृत के पुनर्भरण के संबंध में राजस्थान के निचले इलाकों में मान्यता प्राप्त है। कभी–कभी सामुदायिक सहयोग द्वारा भी कुंड बनाये जाते हैं। मानसून की शुरुआत से पहले, कुंड के जलग्रहण क्षेत्र को नियमित रूप से साफ किया जाता है। विशेष रूप से थार रेगिस्तान में, ये कुंड दूर–दराज की बस्तियों की पेयजल आवश्यकताओं को प्रदान करने के महत्वपूर्ण उद्देश्य की सेवा करते हैं। कुंड 3 से 4.5 मीटर तक के व्यास के साथ आकार में बड़े और गोलाकार होते हैं। कुंडों के निर्माण में चूने के प्लास्टर या सीमेंट का उपयोग किया जाता है।

2 जल संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीक

वर्षा के असमान वितरण के कारण फसल अवधि के मध्य या अन्त में प्रायः सूखे की स्थिति आ जाती है अतः कृषि के लिए जल का विशेष महत्व है। यदि जल संरक्षण द्वारा फसलों को एक जीवन रक्षक सिंचाई उपलब्ध हो जाए तो कृषक अपनी फसल का अच्छा उत्पादन ले सकते हैं इसलिए इस बहुमूल्य संसाधन का सरंक्षण तथा कुशल उपयोग कर प्रति इकाई जल से अधिक लाभ प्राप्त करना नितान्त आवश्यक हो गया है। इस सीमित तथा बहुमूल्य संसाधन के संरक्षण एवं कुशल उपयोग हेतु नवीनतम कृषि तकनीकों को अपनाना अति आवश्यक है। निम्न कृषि तकनीके जल संरक्षण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

2.1 डिग्गी–फव्वारा द्वारा जल संरक्षण

जल के समुचित उपयोग एवं सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हेतु नहरी क्षेत्रों में डिग्गी–फब्बारा योजना राजस्थान सरकार द्वारा संचालित है। नहर चालू..होने के समय उपलब्ध अतिरिक्त पानी को डिग्गी में एकत्रित कर फब्बारा और ड्रिप/टपका सिंचाई पद्धति द्वारा सिंचाई हेतु काम में लिया जा सकता है। नहरी क्षेत्र में किसानों को डिग्गी निर्माण के साथ–साथ फब्बारा सेट/ड्रिप/माइक्रोस्प्रिंकलर लगाने पर सरकार द्वारा अनुदान भी उपलब्ध है।

डिग्गी निर्माण के लाभ

1. नहर के अतिरिक्त पानी को एकत्र किया जा सकता है।

2. जब भी जरूरत हो इस पानी का उपयोग सिंचाई हेतु किया जा सकता है।
3. पशुओं के लिए पानी हमेशा उपलब्ध रहेगा।
4. कम पानी से अधिक क्षेत्र में सिचाई सम्भव है।
5. नहर के पानी पर निर्भरता कम होगी।

2.2 खेत तलाई (फार्म पौण्ड) द्वारा जल संरक्षण

भारी मिट्‌टी एवं कठोर निचली सतह वाली भूमि में वर्षा जल को एकत्रित कर सिंचाई के काम लेने हेतु खेत तलाई कारगर है। खेत तलाई खेत के सबसे निचले बिन्दु पर होना चाहिए जिससे कि खुदाई के लिए कम से कम मेहनत एवं लागत लगे और वर्षा का अधिकतम पानी इसमें बहकर एकत्र हो जाए। खेत तलाई हेतु काली व भारी संरचना की मिट्‌टी वाली भूमि सर्वोत्तम है क्योंकि इसमे पानी का रिसाव बहुत कम होता है। खेत तलाई हेतु स्थान का चयन करते समय यह भी ध्यान रखा जाय कि भूमि की निचली सतह कठोर हो। तलाई में ढलान 1:1 का तथा निकलने वाली मिट्‌टी 1–1 मीटर का अंतराल देकर मेंड़ बन्दी करनी चाहिए। पानी के भराव के लिए प्रवेश तथा जरूरत से ज्यादा पानी आने पर निकास की व्यवस्था जरूरी है। जिससे कि तलाई टूटे नहीं। खेतों में जहां ढलान कम है वहां प्रवेश तथा निकास एक साथ हो सकता है।किसान अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न आकार के तलाई बना सकते हैं। तलाई का आकार कम से कम 20x20x3 (1200 घनमीटर) या इससे बड़ा होने पर ही अनुदान देय है। फार्म पौण्ड का निर्माण पर अधिकतम 50,000 रूपये का अनुदान देय है। खेत तलाई योजना भारी मृदा वाले क्षेत्रों में अधिक उपयोगी है

क्योंकि इससे

1. वर्षा का जल संरक्षित होगा।
2. खेत से जल बहकर व्यर्थ नहीं जायेगा।

3. भूमि में जल स्तर बढ़ेगा।
4. फसल उत्पादन बढ़ाने में प्रभावकारी है।

2.3 जल हौज द्वारा जल संरक्षण

सिंचाई जल का आवश्यकतानुसार उपयोग सुनिश्चित करने हेतु जल हौज बहुत उपयोगी संसाधन है। हौज का निर्माण कुएं के पास ऊंचे स्थान पर किया जाता हैं। जल हौज का निर्माण करने से अत्यधिक गहराई वाले भूमिगत जल को 15–20 हार्स पॉवर की मोटर से लिफ्ट

कर हौज में आसानी से भरा जा सकता है तत्पश्चात् हौज में उपलब्ध जल को 3–5 हार्स पॉवर के बूस्टर से फव्वारा सिंचाई हेतु काम में लेने पर ज्यादा संख्या में नोजल चलाए जा सकते हैं जिससे सिंचित क्षेत्र में भी बढ़ोत्तरी होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे स्रोत जहां सिंचाई हेतु बिजली रात के समय उपलब्ध होती है ऐसे क्षेत्रों में जल हौज निर्माण कर कुएं अथवा नलकूप का पानी हौज में एकत्रित कर दिन के समय आवश्यकतानुसार सिंचाई हेतु काम में लिया जा सकता है।

2.4 सिंचाई पाईप लाईन द्वारा जल संरक्षण

सिंचाई हेतु उपलब्ध सीमित जल को कच्ची नालियों द्वारा खेत तक ले जाने से जल का 20 से 25 प्रतिशत पव्यय होता है। इस अपव्यय को कम करने एवं अधिक क्षेत्र में सिंचाई करने हेतु सिंचाई पाईप लाईन से करना चाहिए ताकि जल के अपव्यय को बचाया जा सके। पाईप लाईन द्वारा सिंचाई को प्रोत्साहित करने हेतु राजस्थान सरकार अनुदान भी प्रदान करती है। सिंचाई पाईप लाईन द्वारा खेत तक पानी ले जाने के लिए पी.वी.सी./एच.डी. पी.ई. पाईप के क्रय हेतु कृषकों को....उनकी आवश्यकता के अनुरूप सभी कृषकों को लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम 15000 रूपये जो भी कम हो अनुदान के रूप में देय है।

2.5 बूंद–बूंद सिंचाई

बूंद–बूंद सिंचाई तकनीक के अन्तगर्त पानी को पौधों की जड़ों में उनकी जरूरत के अनुसार बूंद–बूंद गिरा कर पहुँचाया जाता है। इस तरीके में पानी के स्रोत (ट्यूबवेल प्लास्टिक या सीमेंट का टैंक) से एक मोटी मुख्य पाईप जुड़ी होती है और इससे सबमेन पाईप लाईन निकलती है उसे लेटरल कहते हैं। जो पूरे खेत में बिछी होती है और इन लेटरल पर बारीक छेद कुछ अंतराल (दूरी) पर ऊपर या अंदर लगे होते हैं जिन्हें ड्रिपर्स कहते हैं। जहाँ से बूंद–बूंद पानी निकलता हैं, जो की पौधों की जड़ां के आस–पास की जमीन को गीला करते हैं। ड्रिपर्स दो प्रकार के होते हैं ऑन–लाईन ड्रिपर्स एवं इन–लाईन ड्रिपर्स। ऑन–लाईन ड्रिपर्स फलों के बगीचों में जहाँ पौधों की दूरी एक मीटर से ज्यादा होती है, उपयोग लिया जाता है और एक मीटर से कम दूरी होने पर इन–लाईन ड्रिपर्स लगाए जाते हैं। खासतौर पर सब्जियों एवं फूलों के उत्पादन के दौरान इनका उपयोग होता है। टपक/ड्रिप एक नई और उन्नत सिंचाई विधि है जिसके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त मात्रा में बचत की जा सकती है। ड्रिप सिंचाई पद्धति एक अधिक आवृति वाला ऐसा सिंचाई तंत्र है जिससें जल को पौधों के मूल क्षेत्र के आस–पास पौधों की आवश्यकतानुसार दिया जाता है। कम अन्तराल पर सिंचाई करने से पौधों की जड़ो में जल नाव नहीं रहता तथा पौधों की वृद्धि भी अधिक होती हैं। इस प्रकार ड्रिप सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार की पारम्परिक हानियों जैसे गहन रिसाव, अप्रवाह तथा वाष्पीकरण आदि से बचा जा सकता है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढलान, जल के स्रोत और किसानों के ज्ञान के अनुसार अधिकतर फसलों के लिए अपनाई जा सकती है।

फसलों की पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ इस विधि से उपज की उच्च गुणवत्ता, रसायन एवं उर्वरकों का दक्ष पयोग, खरपतवारों में कमी और जल की अधिक मात्रा में बचत की जा सकती है। जल और रसायनों की पर्याप्त मात्रा में बचत के साथ रसायनों के लगातार प्रयोग से होने वाले प्रदूषण से पर्यावरण को भी बचाया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई द्वारा 20–40 प्रतिशत तक जल की बचत हो सकती है। सूक्ष्म सिंचाई योजना में ड्रिप व मिनी स्प्रिंकलर संयंत्र स्थापित करने पर पात्र कृषकों को इकाई लागत का 70 प्रतिशत या अधिकतम तय सीमा तक मॉडल के अनुसार अनुदान देय है। न्यून अन्तराल फसलों हेतु ड्रिप पर अनुदान सीमा 90 प्रतिशत देय है।

बूंद–बूंद प्रणाली से सिंचाई

निष्कर्ष और सिफारिशें

- राजस्थान में जल प्रबंधन से संबंधित मुद्दे अत्यधिक जटिल हैं और सरकारी विभागों, अनुसंधान संस्थानों, गैर सरकारी संगठनों और अन्य हितधारकों की भागीदारी के माध्यम से इन्हें हल करने की आवश्यकता है। वर्तमान अध्ययन के अनुसार उपलब्ध जल संसाधनों व वर्तमान मांग का आकलन करने का एक प्रयास किय गया है और भविष्य में शुष्क क्षेत्रों में विभिन्न उपयोगों और सूखे को कम करने के लिए जल की उपलब्धता, जल प्रबंधन दक्षता व जल सरंक्षण में सुधारक तकनीक पर जोर दिया जा रहा है।
- कृषि में इंजीनियरिंग उपायों के माध्यम से जल और मृदा संरक्षण की किया जा सकता है।
- जल संरक्षण के अन्य उपाय जैसे समोच्च खेती, विभिन्न प्रकार बंडिंग, कवर क्रॉपिंग और उचित भूमि–उपयोग के साथ संयोजन से जल संरक्षण और उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं और एक लंबी अवधि तक एक्वीफर को भी रिचार्ज कर सकते हैं।
- मरुस्थलीकरण की रोकथाम के लिए अंतर–बेसिन जल अंतरण एक स्थायी समाधान है। पश्चिमी राजस्थान के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में जल अंतरण के लिए सरकार को पानी की कमी वाले क्षेत्रों में नीतियों को विकसित और क्रियान्वित करने की आवश्यकता हैं।
- प्राकृतिक भूजल पुनर्भरण को निर्धारित करने के लिए अधिक विस्तृत शोध किए जाने की आवश्यकता हैं।
- जल संचयन की पारंपरिक प्रणाली जैसे बावड़ी, झालरा, नाडी, टांका, खडीन आदि, सदियों से इस क्षेत्र में प्रचलित हैं, अभी भी व्यवहार्य और लागत प्रभावी हैं। अगर इनका बड़े पैमाने पर सुधार किया जाये तो इनके द्वारा शुष्क क्षेत्रों में पानी की आवश्यकताओं को बड़े स्तर तक पूरा कर सकते हैं।
- आधुनिक वर्षा जल संरक्षण प्रौद्योगिकियां, जैसे कि ऐंकट्स, परकोलेशन टैंक, इंजेक्शन कुएं और उपसतह बाधाएं, भूजल जलभृत शुष्क क्षेत्रों में अत्यधिक प्रभावी हैं। इन जल संरक्षण प्रौद्योगिकियां के माध्यम से प्रस्तावित वर्षा जल संचयन संरचनाओं के साथ, गंभीर सूखे के दौरान भी 68 एमसीएम पानी उपलब्ध करवाया जा सकता है, जो गांवों में पीने के पानी की आवश्यकताओं के लगभग 69 प्रतिशत को पूरा सकता है।

फव्वारा विधि से सिंचाई

अनार के कार्यिकी विकार एवं उनका प्रबंधन

रमेश कुमार, जगन सिंह गोरा, विजय राकेश रेड्डी एवं चेतराम
भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

अनार गर्म शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली एक उपयोगी बागवानी फसल है। अनार में उच्च गर्मी, शुष्कता तथा लवणीय भूमि को सहने की अद्भुत क्षमता होती है। इसकी दृढ़ प्रकृति, शुष्क वातावरण के दौरान प्रसुप्तता में जाने की क्षमता, उच्च मूल्य, लगातार उच्च उत्पादन, लम्बी भण्डारण अवधि के कारण इसका क्षेत्रफल लगातार बढ़ रहा है। राजस्थान में अनार की खेती मुख्य रूप से जालोर, बाड़मेर, भरतपुर, जयपुर, अजमेर, अलवर, श्रीगंगानगर, पाली, कोटा, बांसवाड़ा, सवाई माधोपुर, भीलवाड़ा, झुंझुनू, सिरोही, बीकानेर, जोधपुर एवं जैसलमेर जिलों में की जाती है। राजस्थान में अनार का क्षेत्रफल लगभग 4 हजार हेक्टेयर तथा उत्पादकता 6 टन प्रति हेक्टेयर है। शुष्क क्षेत्रों में अनार में फलों का फटना, धूप एवं पाले से फलों का झुलसना, फलों का असमान रंग विकास तथा दानों का भूरा होना मुख्य कार्यिकी विकार है। जिनमें फलों का फटने के कारण 30–50 प्रतिशत एवं धुप में झुलसना से 20–25 प्रतिशत तक नुकसान होता है। फलों का फटना प्रबंधन प्रणाली जैसे पोषक तत्व, सिंचाई, छत्र एवं बहार प्रबंधन, किस्मों का चयन, रोगों का प्रकोप, मौसम की परिस्तिथियों आदि पर निर्भर करता है जबकि धूप में झुलसना मुख्य रूप से धूप में उच्च तापमान एवं गर्म हवाओं में झुलसने के कारण होता है। गर्म शुष्क क्षेत्रों में तापमान तथा नमी में अत्यधिक उतार चढाव होता है जिसके कारण इन कार्यिकी विकारों का पूर्ण नियंत्रण नहीं किया जा सकता लेकिन उचित फसल प्रबंधन से इन विकारों की सघनता को काफी कम किया जा सकता है।

(1) फलों का फटना – शुष्क क्षेत्रों में अनार में फलों का फटना एक बहुत गंभीर समस्या है जो शुष्क क्षेत्रों में अधिक तीव्र होती है। इस विकृति में 30 से 50 प्रतिशत तक फल फट जाते हैं, जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। फटे हुई फलों की भंडारण क्षमता कम हो जाती है तथा फफूंद के सक्रमण से फल जल्दी सड़ जाते हैं एवं बाजार भाव कम मिलता हैं। फल लम्बवत एक या

अनार में फलों का फटना एवं धूप में झुलसना

अनार में फलों के फटने के प्रकार–लम्बवत, क्षैतिज तथा असमान रूप से

दोनो तरफ से, क्षैतिज तथा असमान तरीके से फटते हैं। फलों का फटना नये बगीचे में मिट्टी में बोरान की कमी के कारण तथा पुराने बगीचे में भूमि में नमी के असंतुलन के कारण होता है। इसके अलावा अनुचित पादप स्वास्थ्य प्रबंधन, पोषक तत्वों की कमी, बहार के चयन और प्रबंधन की कमी, अनुचित छत्र प्रबंधन और बीमारियों के प्रकोप से भी अनार में फल फट जाते हैं। फलों के फटने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैः–

- मृदा में पोषक तत्वों की कमी एवं अनुचित प्रबंधन के कारण।
- भूमि में नमी का असंतुलन एवम् अधिक उतार चढ़ाव।
- दिन और रात के तापमान में अधिक उतार चढ़ाव।
- बहार के चयन और प्रबंधन की कमी।
- अनुचित छत्र प्रबंधन।
- पादप रोग जैसे – फंफूद जनित पर्णीय एवं फल धब्बा।

फलों के फटने का प्रबंधन– अनार में उचित पादप स्वास्थ्य प्रबंधन से फलों के फटने को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसके लिए पोषक तत्वों का प्रबंधन, उपयुक्त बहार का चयन और प्रबंधन, उचित छत्र प्रबंधन और बीमारियों के प्रबंधन बहुत आवश्यक है। फटे हुए फलों के दाने मीठे तथा सही समय पर तोड़ने पर सामान्य होते हैं, जिनका उपयोग मूल्य सवंर्धित उत्पाद जैसे ज्यूस, स्क्वाश और अनारदाना बनाने के उपयोग में लिया जा सकता है।

(अ) पोषक तत्व प्रबंधन– अनार में अच्छे पादप स्वास्थ्य और गुणवत्ता युक्त फलों के उत्पादन की लिए पोषक तत्व प्रबंधन अति आवश्यक है। खाद एवं उर्वरक मृदा परीक्षण के हिसाब से ही देना चाहिए। अनार में पुष्पन के दौरान उपयुक्त कार्बन नाइट्रोजन अनुपात के प्रबंधन से अच्छा पुष्पन, फल लगाव होता है और फल कम फटते हैं। एक वर्ष के पौधें को 10–15 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 200–250 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फास्फोरस और 100–125 ग्राम पोटेशियम देना चाहिए। पौधें की आयु के हिसाब से खाद एवं उर्वरक की मात्रा भी बढ़ाते रहना चाहिए। पांच साल या इससे बड़े पौधों को 45 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 650 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फास्फोरस और 250 ग्राम पोटेशियम प्रतिवर्ष देना चाहिए। गोबर की खाद का 1/3 भाग फल तोड़ने के बाद सुषुप्तावस्ता में जनवरी माह में तथा 2/3 भाग बहार प्रबंधन के समय देना चाहिए। फास्फोरस और पोटेशियम की 2/3 भाग फल तोड़ने के बाद सुषुप्तावस्ता में जनवरी माह में और 1/3 भाग बहार प्रबंधन के समय देना चाहिए। नाइट्रोजन को चार बराबर भागों में बांटकर, 1/4 भाग बहार प्रबंधन के बाद, 1/4 भाग फूल आने पर, 1/4 भाग फल बनते समय तथा 1/4 भाग फल वृद्धि एवं विकास के समय क्रमश–जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर में देनी चाहिए। इसके अलावा फूल आने पर एनःपीःकेः 12:61:00 का 8 किग्रा. प्रति हेक्टेयर उपयोग, फल बनते समय एनःपीःकेः19:19:19 का 8 किग्रा प्रति हेक्टेयर उपयोग तथा फल विकास के समय एनःपीःकेः 00:52:34 का 2–5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर उपयोग को बूँद बूँद सिंचाई पद्धति से एक–एक महीने तक देना चाहिए।

अनार के दानों से बने मूल्य सवंर्धित उत्पाद

(ब) सिंचाई प्रबंधन– अनार में उचित सिंचाई प्रबंधन से मृदा में उपयुक्त नमी की मात्रा को बनाये रखा जा सकता है। जिससे फलों के फटने की समस्या काफी कम हो जाती है। बाग लगाने के 2–3 साल तक उचित देखभाल करनी चाहिए। अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन के लिए नियमित अंतराल में सिंचाई करतें हैं। बून्द बून्द सिंचाई पद्धति अनार की खेती लिए बहुत ही उपयुक्त है इससे पानी की बचत (50–60) के साथ साथ उत्पादन भी अधिक (20–30) होता है बून्द–बून्द सिंचाई पद्धति से उपयुक्त नमी को बनाये रखा जा सकता है। बून्द बून्द सिंचाई पद्धति से गर्मियों में सप्ताह में दो बार तथा सर्दियों में एक बार पानी देना चाहिए। पानी की मात्रा एवं समय को मौसम, मृदा के प्रकार, मृदा में नमी एवं फसल की वृद्धि अवस्था के अनुसार आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

(स) बहार नियमन– अनार में बहार नियमन से उपयुक्त समय पर फल प्राप्त कर फलों के फटने को कम किया जा सकता है। अनार के पौधें में वर्ष भर फूल आते रहते हैं जिनमे अम्बे बहार (फरवरी–मार्च) मृग बहार (जून–जुलाई) एवं हस्त बहार (सितम्बर–अक्टूबर) प्रमुख है। शुष्क क्षेत्रों में मृग बहार को नियमित कर फलों के फटने को कम किया जा सकता है। बहार नियमन के लिए पौधों को एक महीने जून या जुलाई के महीने में सिंचाई बंद कर देते हैं तथा एक महीने बाद हल्की छंटाई (15–20 सेमी.) कर पतियों की संख्या के हिसाब से 1–2 मिली इथ्रेल और 5 ग्राम डीएपी प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव करते हैं इसके बाद हल्की सिंचाई करके खाद डालनी चाहिए। अच्छे आकार एवं गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिए 50–60 फल प्रति पौधा रखने चाहिए लेकिन स्थानीय बाजार के लिए 80–100 फल प्रति पौधा लिए जा सकते हैं।

(द) छत्रक प्रबंधन (कटाई और छंटाई)– अनार में छत्रक प्रबंधन का बहुत महत्व है। सही वितान प्रबंधन से पौधों में प्रकाश का संचरण सही होता है जिससे प्रकाश संश्लेषण दक्षता बढ़ जाती है और फलों के फटने को कम किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में अनार की बहु तना पद्धति सधाई की जा सकती है। अनार में 1–2 फीट उचाई के द्वितीय शाखाओं को पनपने देना चाहिए जिससे बागवानी कार्य जैसे खाद, पानी एवं गुड़ाई आसानी से की जा सके। अनार में नई एवं पुरानी दोनों शाखाओं पर फूल आते है। फल की तुड़ाई के तुरन्त बाद गहरी छँटाई करनी चाहिए तथा रोग संक्रमित एवं

अनार में अच्छे छत्रक प्रबंधन से गुणवत्तायुक्त फल उत्पादन

सुखी हुई सभी शाखाओं को काट देना चाहिए। छँटाई के बाद 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट को कटे हुऐ भाग पर लगायें। बारिश के समय में छँटाई के बाद तेल युक्त कोपर ओक्सिक्लोराइड (500 ग्राम कोपर ओक्सिक्लोराइड + 1 लीटर अलसी का तेल) का उपयोग करें। अनार में सकर्स (नीचे के तने से निकलने वाली सीधी एवं कोमल शाखाएं) को समय समय निकालते रहना चाहिए क्योकि ये अवांछनीय तथा ऊर्जा को नष्ट करने वाले होतें है। सधाई एवं सकर्स से निकलने वाली स्वस्थ शाखाओं से कलम लगाकर नए पौधें भी तैयार किये जा सकते है।

(क) सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा पादप विकास नियामकों का छिडकाव– अनार की खेती के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का बहुत ही महत्व है इसके लिए जिंक सल्फेट (0.3 प्रतिशत), मेंग्नीज सल्फेट (0.3 प्रतिशत), फेरस सल्फेट (0.4 प्रतिशत) तथा बोरेक्स (0.2 प्रतिशत) का घोल का पतियों पर फल बनने के एक महीने बाद पर दो छिड़काव एक महीने के अन्तराल पर करना चाहिए। कैल्शियम क्लोराइड (2 प्रतिशत) तथा जिब्बरेलिक अमल (जी.ए.) का 20 पीपीएम का फल बनने के एक महीने बाद छिड़काव करने से फल की गुणवत्ता में सुधार होता है और फलों के फटने को कम किया जा सकता है।

(ख) फंफूद जनित पर्णीय एवं फल धब्बा से फलों का फटना –यह रोग फफूँद से होता है। इस रोग में पतियों एवं फलों पर अनियमित आकार में छोटे भूरे, काले रंग के धब्बे बन जाते हैं, जिससे फल फटने लगते है। यह रोग शुष्क क्षेत्रों में बरसात के समय अधिक आद्रता के कारण होता है। प्रभावित पतियों एवं फलों को तोड़कर अलग कर नष्ट कर दें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम (0.2 प्रतिशत), मेंकोजेब (0.2 प्रतिशत) तथा कैप्टान (0.2 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

अनार में फंफूद जनित फल धब्बा से ग्रसित फल एवं उनका फटना

(2) फलों का धूप में झुलसना (सन स्केल्ड) – शुष्क क्षेत्रों में अनार में फलों का धुप में झुलसना एक दूसरी गंभीर समस्या है जो गर्मी के मौसम में ज्यादा होती है। इस विकार में फलों का जो भाग सूर्य की तरफ रहता है वह अत्यधिक तापमान तथा धूप में झुलसकर भूरे काला रंग का हो जाता है, जबकि फल के अन्दर दाने सामान्य रहते हैं, जिससे फलों की गुणवत्ता पर विपरीत असर पड़ता है और बाजार भाव कम मिलता है। पौधों में अच्छे छत्र का विकास कर फलों को धुप से बचाया जा सकता है। इसके प्रबंधन के लिए 35 प्रतिशत छाया वाली जाली से पौधों को ढक दें। फलों को बैग से ढक कर भी धुप से बचाया जा सकता है। इसके अलावा बहार नियमन के द्वारा सही गर्म शुष्क क्षेत्रों में मृग बहार को नियमित कर अगस्त सितम्बर में पुष्पन करवाकर फरवरी मार्च में फल प्राप्त किये जाते हैं जिनमे अनुकूल वातावरण के कारण फलों को धुप में झूलसने से बचाया जा सकता है। बाग के चारों तरफ हवा रोधक पौधे (विंड ब्रेक) लगाकर गर्म हवाओं के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

(3) दानों का भूरा होना (एरिल ब्राउनिंग)– यह विकार सामान्यता गर्म शुष्क क्षेत्रों में कम होता है। इस विकार में अनार के दाने (एरिल) मुलायम एवं भूरे रंग के हो जाता है, जबकि फल बहार से सामान्य दिखाई देता

है। यह विकार शुष्क वातावरण में गर्मियों में अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए फलों को पकने के बाद समय पर तोड़ लें। पौधों में फल लगने के 4–6 महीने बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं और पके फल पीलापन लिए लाल हो जाते हैं, जो किस्मों पर निर्भर करता है। जालोर सीडलेस तथा मृदुला किस्म पुष्पन के 140–150 बाद तथा भगवा किस्म में फल पुष्पन के 180 दिन बाद पकते हैं।

(4) फलों का असमान रंग विकास – इस विकार में फलों का रंग एक समान रूप से विकसित नहीं होता है, जिसमे फलों पर हल्के और गहरे रंग के धब्बे बन जाते हैं यह विकार अनुचित छत्र प्रबंधन तथा गुच्छे में फलों के लगने के कारण होता है। इसमे फलों का जो भाग सूर्य के प्रकाश से दूर होता है, वहां रंग अच्छी तरह विकसित

नहीं हो पाता और धब्बे बन जाते हैं। इस विकार से बचने के लिए उचित छत्र प्रबंधन करना चाहिए तथा गुच्छे में लगे फलों में एक फल रखकर अन्य को हटाना चाहिए।

(5) पाले से फलों का झुलसना– इस विकार में सर्दी के मौसम में दिसंबर–जनवरी के महीने में कम तापमान के कारण (5° सेल्सियस से कम) पौधों की पत्तियां, फल तथा नयी शाखायें झुलस जाती है। इस विकार में प्रभावित क्षेत्र में कोशिकाओं की वृद्धि रूक जाती है और फलों पर भूरे रंग के चकते बन जाते है। प्रभावित फल एवं फूल सुख कर निचे गिरने लगते है। सही छत्रक प्रबंधन से फलों को पाले से बचाया जा सकता है। पौधों को पालें से बचाने के लिए हल्की सिंचाई करनी चाहिए तथा खेत के चारों तरफ वायु अवरोधक पौधे लगाने चाहिए। सर्दी के मौसम में दिसंबर जनवरी के महींने में रात के समय आग जलाने से पालें का प्रकोप कम हो जाता है। इसके अलावा तनु सल्फुरिक अमल (0.1 प्रतिशत) का 1 मिली प्रतिलीटर या थायो यूरिया का 1 ग्राम प्रतिलीटर के हिसाब से घोल बनाकर पौधों पर छिडकाव करें। फलों को सफेद या पारदर्शक बैग से ढककर पाले से बचाया जा सकता है, इससे फलों का रंग तथा गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

सारांश: अनार में गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए कार्यिकी विकारों का उचित प्रबंधन बहुत आवश्यक है। इसके लिए सही बहार का नियमन कर, उचित जल, पोषक तत्वों, वितान, कीट तथा रोग प्रबंधन तथा बागवानी तकनीकों दारा इन विकारों की सघनता को काफी कम किया जा सकता है। बहार नियमन से सिमित संसाधनों का दीर्घकालिक उपयोग करते हुए अच्छी गुणवत्तायुक्त, ज्यादा उपज मनचाहे समय में प्राप्त की जा सकती है। गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए सिंचाई की उपलब्धता, कीट और रोग का प्रकोप, बाजार की मांग, किस्म का प्रकार और क्षेत्र की जलवायु के हिसाब से सही प्रबंधन करना चाहिए। अनार में गहन देखभाल तथा उचित प्रबंधन बहुत आवश्यक है। बहार नियमन तकनीक से पौधों के विकास, फलों की गुणवत्ता और उत्पादन पर बहुत से लाभदायक प्रभाव पड़ते हैं। बहार नियमन तकनीक फल के फटने, धूप में झुलसने और दानों के भूरे होने जैसे कार्यिकी विकारों को कम करने में काफी सहायक है।

अनार में उचित प्रबंधन से गुणवत्तायुक्त फल उत्पादन

अनार में पाले से प्रभावित फल

फलों को बैग से ढकने पर गुणवत्ता में सुधार तथा बिना ढका प्रभावित फल

"हिन्दी सरल और सहज है
अपनाकर तो देखिए"

फालसा- एक बहुउद्देशीय फल

कमलेश कुमार, श्रवण एम. हलधर एवं पी. एल. सरोज

भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

फालसा भारत के सबसे पुराने स्वदेशी फलों में से एक है। इसकी खेती उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में व्यापक रूप से की जाती है। भारत में यह ज्यादातर शहरों के आसपास के क्षेत्रों में पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और हिमालयी क्षेत्रों में व्यावसायिक रूप से उगाया जाता है। छोटे स्तर पर यह महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भी उगाया जाता है। यह कठोर प्रकृति का होने के कारण शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की फसल है। यह अव–प्रयोगी फल फसलों के अंतर्गत आता है, लेकिन यह एक बहुउद्देशीय फल है जिसमें उच्च पोषण और औषधीय गुण होते हैं। इसका सेवन मानव स्वास्थ्य पर कई प्रकार के सकारात्मक प्रभाव डालता है क्योंकि इसमें पोषण और औषधीय गुणों के महत्वपूर्ण विभिन्न घटक मौजूद पाये गये है। वैश्विक स्वास्थ्य और कल्याण में पिछले कुछ दशकों में फालसा फल ने मानव आहार में एक विशेष स्थान प्राप्त किया है, जो कि इसके अपार प्रतिउपचायक, कैंसर– रोधी और बुढ़ापा– रोधी प्रभावों के कारण है। फल के अत्यधिक पोषण मूल्य के बावजूद, इसके व्यावसायिक पैमाने पर खेती और उत्पादन को उद्योग की तरफ से उचित प्रतिक्रिया नहीं मिली। परंपरागत रूप से इसकी खेती निर्वाह खेती के रूप में होती है और इसलिए इसका अधिकांशतः उपभोग ताजे फल एवं जूस के रूप में किया जाता है। भारत में गर्मियों के महीनों के दौरान पके हुए ताजे फलों का अथवा शीतल पेय में संवर्धित करके उपभोग किया जाता है। भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर, में फालसा का शत–प्रतिशत जैविक उत्पादन लेने के प्रयोग किए जा रहे हैं।

फालसा पौधे के सभी भाग जैसे जड़, तना/टहनी, पत्ती एवं फल मानव तथा घरेलू पशुओं के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। फालसा एक बहुउद्देशीय फल का उदाहरण है जो भोजन, चारा, फाइबर, ईंधन, लकड़ी और पारंपरिक दवाओं की एक श्रृंखला प्रदान करता है जिसमें विभिन्न बीमारियों का इलाज करने और एंटीबायोटिक गुण होते हैं। फालसा फल कैलोरी और वसा में कम होते हैं, लेकिन इसमें कई विटामिन, फाइबर और आवश्यक खनिज होते हैं। फालसा के फलों को उच्च औषधीय मूल्यों के लिए

जाना जाता है क्योंकि फल कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स और एंटीकैंसर गुणों के लिए जाने जाते हैं। इसी तरह, फल और बीज पोटेशियम, कैल्शियम, लोहा, फास्फोरस और सोडियम जैसे विभिन्न खनिजों से समृद्ध होते हैं, जबकि जिंक, निकल, कोबाल्ट और क्रोमियम भी सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते है। अपरिपक्व फालसा फल सूजन को कम करते हैं और यह श्वसन, हृदय, रक्त विकारों एवं बुखार में भी लाभप्रद होता है। मतली, उल्टी और पेट दर्द के लिए थोड़े से गुलाब जल और चीनी के साथ फालसा का रस राहत प्रदान करता है। सांस की तकलीफ और हिचकी के लिए थोड़े से अदरक के रस और सेंधा नमक के साथ फालसा का गर्म रस राहत प्रदान करने में उपयोगी माना जाता है। इसी तरह, फालसा शर्बत (पेय) चीनी और नींबू के जूस के साथ मिलाकर पीने से पेट और सीने की जलन को कम करने में कारगर है। इसकी छाल का जलसेक दस्त, दर्द, सन्धिवात और गठिया का इलाज करने के लिए उपयोगी माना जाता है। जड़ की छाल का उपयोग दर्द और सूजन में राहत देने के लिए किया जाता है। शक्कर को परिष्कृत करने के लिए फालसा के तने की लसदार छाल का उपयोग किया जाता है। फालसा की छाल के रेशे का उपयोग रस्सियों को बनाने के लिए किया जाता है। मजबूत और लचीले होने के कारण, इसकी लकड़ी का उपयोग तीरंदाजों के धनुष, खपच्चियाँ, भाले के हैंडल और डंडों के लिए किया जाता है। इसके तने का उपयोग बगीचे के खंभे के साथ–साथ टोकरी बनाने के लिए भी किया जाता है। फालसा की पत्तियों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में मूत्र पथ के संक्रमण और यौन संचारित रोगों के इलाज के लिए किया जाता है। ताजे पत्ते मवेशियों के चारे के लिए काम में लेते हैं।

परिपक्व ताजे फल

ताजे फलों से निर्मित फालसा रस (शरबत)

इसकी पत्तियों में हल्के एंटीबायोटिक गुण होते है। उन्हें रात भर भिगोकर एक पेस्ट बनाया जाता है, जो कट, जलन, फोड़े, एक्जिमा और पुष्ठीय त्वचा के प्रस्फुटन सहित त्वचा की सूजन को राहत देने के लिए जाना जाता है। यह ज्यादातर ताजा खाया जाता है, हालाँकि फलों का सिरप भी तैयार किया जा सकता है, ताकि अधिक समय तक उपयोग किया जा सके। जब गर्मियों के दौरान इसके फल या जूस का सेवन किया जाता है, तो यह शरीर को शीतलता प्रदान करता है। थोड़ा अधपका, लेकिन परिपक्व फल (हरा रंग) का उपयोग सिरका या तेल में डुबो कर अचार बनाने में किया जा सकता है। एक अन्य उत्पाद 'फालसा स्क्वैश, फलों के गूदे और चीनी सिरप से बनाया जाता है। फालसा के फलों के गूदे और चीनी के मिस्रण से जैम तैयार किया जाता है, जो बेकरी उत्पादों के लिए टॉपिंग के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। फालसा के पत्तों और फलों को पानी में उबालकर एक पौष्टिक और सुगंधित हर्बल चाय भी बनायी जा सकती है। म्यांमार में तने की छाल का उपयोग साबुन के विकल्प के रूप में किया जाता है। इसके अलावा, इस पौधे के अन्य भागों का उपयोग विभिन्न रोगों जैसे कैंसर, उम्र बढ़ाने, बुखार, गठिया और मधुमेह के इलाज के लिए हर्बल दवा के रूप में किया जाता रहा है।

बहुउपयोगी करौंदा की उन्नत बागवानी

पी. आर. मेघवाल, अकथ सिंह एवं दलपत सिंह
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

करौंदा एक कांटेदार झाड़ी वाला पौधा हैं। अधिकतर इसको खेतों की बाङ पर लगाया जाता हैं। पूर्ण विकसित अवस्था मे इसके पौधे घनी कांटेदार झाड़ी का रुप ले लेते हैं जिससे यह पौष्टिक फल उत्पादन के साथ – साथ एक रक्षक–जीवित बाड़ का काम करती हैं। करौंदा की बाड़ बगीचे मे लगे अन्य पौधो के लिए सूक्ष्म वातावरण पैदा करता हैं साथ ही वायु तथा जल द्वारा होने वाले भू–क्षरण को रोकने मे भी सहायक होता हैं। करौंदा के फल पेक्टिन, ऊर्जा (कार्बोहाइड्रेट) तथा खनिज लवणो से युक्त होते हैं। करौंन्दा के फलो से चटनी, टार्ट, पुडिंग, सब्जी, स्क्वेश, सीरप, जैली आदि बनाई जा सकती है। विशेषकर हरी मिर्च के साथ इसकी चटनी बहुत स्वादिष्ट बनती है।

भूमि एवं जलवायु

करौंदा एक सूखा रोधी झाड़ी हैं। यह उष्ण व उपोष्ण जलवायु मे अच्छा पनपता हैं। शुष्क क्षेत्रों में भी आंशिक सिंचाई देकर इसको लगाया जा सकता है। इसे सभी तरह की भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, यहां तक कि 10 पी.एच. तक की मृदा में भी इसे लगा सकते हैं। रोपाइ के बाद एक बार स्थापित हो जाने पर इसको वि ोष देखभाल की आवश्यकता नहीं पडती है।

किस्में

करौंदा मुख्यतया दो तरह का होता हैं। पौधे दोनों के एक जैसे ही दिखाई देते हैं। लेकिन फलो के छिलके के रंग मे अन्तर होता है। पहले तरह में फलों का छिलका श्वेत प्रष्ठ भूमि पर गुलाबी आभा लिए होते हैं जबकि दूसरे प्रकार मे फल गहरी हरि प्रष्ठभूमि पर हल्की भूरी या बैंगनी आभा लिए हुए होते हैं। पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय द्वारा करौंदे की तीन किस्में विकसित की गई हैं। पन्त मनोहर, पन्त सुदर्शन तथा पन्त सुवर्णा।

काजरी में भी विगत 15 वर्षो से करौंदा के जीव द्रव्य एकत्र करने तथा उसमें से उन्नत किस्मों का चयन प्रक्रिया द्वारा विकास पर कार्य किया गया जिसके फलस्वरुप तीन उन्नत अधिक उपज वाली किस्मों को विकसित किया गया हैं–सी.जेड.के.–2011, सी.जेड.के.–2022, व सी.जेड.के.–2031। इनमें दो किस्में पहले प्रकार की हैं

तथा तीसरी किस्म दूसरे प्रकार की हैं। उन्नत किस्मों का विवरण निम्न प्रकार है।

मरु गौरव

इस किस्म के पौधे फैलने वाले तथा ढाई से तीन मीटर उंचाई तक जाते हैं। फलों का रंग गहरी हरी पृष्ठभूमि में गहरी भूरी आभा लिए हुए हाते हैं। फलों का आकार 2.18 x 1.63 सेमी. तथ औसत वजन 3.74 ग्राम/फल होता है। एक फल में 6.13 बीज, गूदा 88.27 प्रतिशत, शुष्क पदार्थ 12.85 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 9.4 प्रतिशत, विटामीन सी. 35.88 मिग्रा. / 100 ग्राम, खटास 2.82 प्रतिशत व उपज लगभग 35–50 किलो प्रति झाड़ी होती है। इस किस्म में सूखा सहन करने का विशेष गुण होता है। फूल व फल लगने की प्रक्रिया अन्य किस्मों की तरह मार्च–अप्रैल माह में ही पूरी हो जाती है, परन्तु फल लगने के बाद सुसुप्तावस्था में प्रवेश कर जाते हैं जिससे फलों की बढ़वार अगस्त माह मे वर्षा होने तथा मौसम के अनूकूल होने पर ही शुरू होती है फलस्वरूप यह गर्मी के प्रतिकूल वातावरण को सहन कर पाती हैं। यह गुण शुष्क क्षेत्रों के लिहाज से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसी कारण इस किस्म के फल सबसे अन्त में सितम्बर माह में पकते हैं।

मरु गौरव

पन्त मनोहर

यह पन्त कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित करौंदे की उन्नत किस्म हैं। इसके पौधे मध्यम आकार के घने व फल एक तरफ से गुलाबी लाल व दूसरी तरफ से सफेद रंग के होते हैं। औसत फल भार–3.49 ग्राम, खाने योग्य भाग 88.27 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 3.92 प्रतिशत व उपज 27 किलो प्रति झाड़ी होती हैं।

पन्त मनोहर

पन्त सुवर्णा

यह भी पन्त कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित करौंदे की उन्नत किस्म हैं। इसके पौधे सीधे बढ़ने वाले व कम घने व फल एक तरफ से गहरे भूरे व दूसरी तरफ से हल्के हरे रंग के होते हैं। औसत फल भार–3.62 ग्राम, खाने योग्य भाग 88.27 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 3.83 प्रतिशत व उपज 22 किलो प्रति झाडी होती हैं।

थार कमल

यह किस्म केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर के गोधरा केन्द्र से विकसित की गई है। इस किस्म के पौधे बोने व फैलने वाले होते हैं। इसमे मार्च माह में फूल आते है और फल जून में पक जाते हैं। औसत फल भार–4.97 ग्राम, खाने योग्य भाग 93.66 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 9.54 प्रतिशत, अम्लता 0.64 प्रतिशत व उपज 13 किलो प्रति झाड़ी होती हैं।

प्रवर्धन

करौंदा का प्रवर्धन बीज द्वारा आसानी से किया जा सकता हैं। अधिकतर इसमें फलन स्वपरागण द्वारा होने के कारण इसके बीजू पौधों में मातृ पौधे के अधिकतर गुण आ जाते हैं। प्रवर्धन के वानस्पतिक तरीके जैसे कलम, ऊतक सवर्धन तथा गूंटी द्वारा भी यह कार्य सम्भव हैं लेकिन बीज विधि ज्यादा सरल, अधिक सफल व कम खर्चीली होने के कारण व्यापारिक स्तर पर इसे इसी विधि द्वारा ही प्रवर्धित किया जाता है।

गूटी द्वारा प्रवर्धन

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में करौंदे की बिना किसी वृद्दि नियामकों का प्रयोग किये गूँटी द्वारा प्रवर्धन करने मे सफलता हासिल की है। वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) माह मे करोंदे की 8–10 मि.मी. मोटाई की शाखाओं पर 2–3 इंच लंबी छाल की रिंग हटा कर गीली की हुई मॉश घास को शाखा के चारों ओर लपेट कर पोलिथीन से बाँध देते हैं, तथा गूटी बाँधने के बाद बीच–बीच में इंजेक्सन द्वारा पानी दिया जाता है। इसी प्रकार डेढ़ से दो महीने में जड़े निकल आती है तत्पश्चात

गूॅटी विधि द्वारा प्रवर्धन

कलिकायन विधि द्वारा प्रवर्धन

शाखाओं के मातृवृक्ष से अलग करके पोलिथीन की थेलियों में स्थानांतरित कर देते हैं। इस तरह 2–3 महीने में शत–प्रतिशत सफलता के साथ गूटी द्वारा पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

कलिकायन विधि द्वारा प्रवर्धन

सर्वप्रथम करौंदे के बीजू पौधों को पोलिथीन की थैलियों में तैयार करते है। जब ये पौधे 1–1.5 वर्ष के हो जाते हैं या इनके तने का व्यास 5–8 मिमी. का हो जाता है तब ये कलिकायन करने के लायक हो जाते है तथा इसमें ढाल विधि द्वारा मार्च–अप्रैल के माह मे कलिकायन किया जा सकता हैं। कलिकायन करने के 15–20 दिन बाद कालिकाएँ फूटने लगती हैं तथा 30–40 दिन बाद पौधों को प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

पौधों की रोपाई

करौंदा के लगभग एक वर्ष आयु के पौधों को रापाई में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। जीवित रक्षक बाड़ लगाने के लिए पौधों को 2 फिट की दूरी पर 1 घन फुट आकार के गड्ढों में मिट्टी व अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद (1 : 3 अनुपात) को मिलाकर भरने के बाद लगाना चाहिए।

करौंदा का बगीचा लगाने के लिए 2 x 2 x 2 फीट आकार के गड्ढों की 4–5 मीटर की दूरी पर खुदाई करें। पौधे लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त होता हैं। हालाकि सिंचित क्षेत्रों में पौधे मार्च माह में भी लगाए जा सकते हैं।

खाद व उर्वरक

करौंदा में देशी खाद ही पर्याप्त रहती हैं हालाकि बाड़ लगाते समय 100 ग्राम यूरिया प्रति पौधा देने से पौधे तेजी से बढते हैं और बाड़ जल्दी तैयार होती है। एक वर्ष के पौधों को 2 किलो गोबर की खाद, 20 ग्राम नत्रजन 10 ग्राम फास्फोरस व 10 ग्राम पोटाश देना चाहिये और इसे हर वर्ष इसी अनुपात में 10 साल की आयु तक बढ़ाते रहना चाहिये। इस हिसाब से एक पूर्ण विकसित पौधे में 20 किलो गोबर की खाद, 200 ग्राम नत्रजन, 100 ग्राम फास्फोरस व 100 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष देना चाहिये। गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई तथा शेष बची नत्रजन को अगस्त–सितम्बर में देनी चाहिए।

कटाई छँटाई

बाड़ के रुप में लगे पौधों को हेज की तरह आगे व पीछे की तरफ से काटते हैं जबकि पौधों की बीच में कंटिग नही करते हैं ताकि इनकी शाखाएं आपस में मिलकर घनी बाड़ का रुप ले सके। बगीचे में लगे पौधों में नीचे से निकलने वाली शाखाओं व सकर्स को समय – समय पर निकालते रहना चाहिए। पूर्ण विकसित पौधों के घनी शाखाओं की भी कभी–कभी छंटनी करनी चाहिये ताकि पौधों के मध्य भाग में हवा तथा प्रकाश का प्रवेश हो सके, साथ ही रोग ग्रस्त व सूखी टहनियों को भी हटाते रहें।

सिंचाई

करौंदा के पौधे एक बार लगने के पश्चात असानी से नहीं जाते हैं लेकिन नियमित फल लेने के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हैं चूंकि इसमें मार्च – अप्रैल में फूल आते है तथा गर्मीयों में फल पेड़ों पर लगे होते है इसलिए गर्मियों में 10 –12 दिन के अन्तराल पर लगभग 200 लीटर पानी प्रति पौधा देना चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता लगभग नहीं के बराबर रहती है। फिर भी वर्षा का लम्बा अन्तराल होने पर सिंचाई कर सकते है। फल लगे पौधों में पानी की कमी का संकेत सर्व प्रथम फलों पर पड़ता है जो कि उस स्थिति में मुर्झाने लगते हैं। इसलिए फल लगे पौधों को समय पर सिंचाई अवश्य करें।

कीट व रोग

शुष्क जलवायु में रोग व कीटों का अधिक प्रकोप नहीं पाया गया हैं। हालाकि अन्य क्षेत्रों में प्रारंभिक अवस्था में पत्ती खाने वाली गिडार नई पत्तियों को खा जाती हैं जिससे पेड़ की बढ़वार रुक जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए नुवाक्रोन 2 मि.लि. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त श्याम वर्ण रोग पत्तों व फलों को प्रभावित करता हैं। रोग ग्रस्त पत्तों पर अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं, रोगी पत्तियां गिर जाती हैं और पतली टहनियां सूखना प्रारंभ कर देती है साथ ही फलों व तनों पर भी इस रोग के घाव बन जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 2 ग्राम ब्लाइटाक्स–50 या फाइटालोन की इतनी ही मात्रा को एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिङकाव करें। तने के घावों को खुरच कर उन पर ब्लाइटाक्स–50 व अलसी के तेल को 1:3 के अनुपात में लेप बनाकर लगावें।

फलों की तुड़ाई व उपज

करौंदा में फूल दो ऋतुओं मार्च – अप्रैल तथा अक्टुबर – नवम्बर में आते हैं। मार्च – अप्रैल वाली ऋतु मुख्य होती है जिनके फलों की तुडाई अगस्त–सितम्बर में करते हैं। फलों को पूरी तरह पकने से पहले तोड़ने से ही वे अचार, चटनी या अन्य उपयोग के लिए उपयुक्त रहते है। पूर्णतः पके फल बीज के लिए काम में लेते हैं। औसत उपज लगभग 15–25 किलो प्रति झाड़ी होती है, परन्तु काजरी से विकसित मरु गौरव किस्म की उपज 50 किलो प्रति पौधा तक प्राप्त की गई है।

"हिन्दी ही वह भाषा है, जिसमें दो विभिन्न प्रान्तों के लोग आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह भारत में सर्वत्र समझी जाती है, क्योंकि इसका व्याकरण भारत की अधिकांश भाषाओं के समान है और इसका शब्दकोष सबकी सम्मिलित सम्पत्ति है।"

-डॉ. गिर्यसन

कंटीले करौंदे की मिठास - किसानों की आस

कनक लता, राज कुमार, बलबीर सिंह खददा, ए.के. राय एवं शक्ति खजुरिया

भाकृअनुप.– कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल (गुजरात)

गुजरात राज्य का पंचमहल जिला अपने गर्भ में धार्मिक एवं राजनैतिक इतिहास लिए शनैः शनैः प्रगति के पथ पर अग्रसर है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाँच राजघरानाओं के क्षेत्र को सामूहिक रूप से 'पंचमहल' की संज्ञा दी गयी है। कुछ समय पहले तक यह क्षेत्र महाराष्ट्र, काठियाबाड़ आदि क्षेत्र से आए पशुपालकों के पशुओं के लिए गोचर भूमि के रूप में उपयोगी थी। आज भी काठियाबाड़ के 'भारवाड़' समूह के पशुपालकों के लिए यह प्रिय क्षेत्र है। अक्सर वे अपने पशुओं के समूह के साथ यहाँ के जंगलों में आकर महीनों तक पशुओं को चराते हैं तभी तो इस जिले का मुख्यालय गो, धरा = गोधरा के नाम से प्रसिद्ध है। पंचमहल में ही विश्व प्रसिद्ध चांपानेर राज्य स्थित है जिसके किला के भग्नावशेषों को विश्व धरोहर के रूप में दर्ज किया जा चुका है। पावागढ़ के पावन भूमि के कारण इसका धार्मिक महत्व भी है कहते हैं, आदि पिता महादेव शंकर की प्रथम पत्नी 'सती' का दाहिना पाँव पंचमहल की पहाड़ियों पर गिरा था जो आज 'शक्तिपीठ' के रूप में प्रसिद्ध है। सुरम्य जंगलों से घिरे पहाड़ी पर माँ कालिका का मंदिर विराजमान है, वर्ष में लगभग 20 लाख पर्यटक एवं श्रद्धालू चंपानेर का किला एवं माता के मंदिर में दर्शनों को आते हैं।

पंचमहल जिला आदिवासी बहुल जिला है, यहाँ राठवा, नायका, बारीया आदि आदिवासी बहुलता से बसते हैं, मकई, अरहर, मौसमी शाक–भाजी उनका मुख्य फसल है। आदिवासियों के अलावा भी यहाँ काफी किसान हैं जो धीरे–धीरे आधुनिक कृषि के प्रति उत्सुक हैं और मकई, अरहर के अलावा धान, गेहूँ, चना, आम, चीकू, नींबू आदि

की फसल भी लेते हैं। जंगलों की लगातार कटाई के कारण किसानों को जंगली–पशुओं का आतंक झेलना पड़ रहा है, जंगली सूअर एवं नीलगाय इस क्षेत्र के किसानों के लिए बहुत बड़ी समस्या हैं। किसानों के बीज बोते ही जंगली सूअरों का दल उन बीजों को खा जाते हैं। किसी तरह रखवाली कर फसल तैयार किया जाता है, मकई की फसल तैयार होते ही सूअर का प्रकोप बढ़ जाता है। झुण्ड के झुण्ड जंगली सूअर आकर मक्के की फसल चट कर जाते हैं, वहीं अरहर की फसल को नीलगाय नुकसान पहुँचाते हैं। बगीचों को तो जंगली सूअर और नीलगाय दोनों जानवरों से क्षति पहुँचती है। किसान परिवार फसलों की रखवाली में रात–रात भर परेशान रहते हैं फिर भी फसलों को बचाना उनके लिए समस्या बन जाती है। छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसानों के लिए खेतों की घेराबंदी करना संभव नहीं है। पक्की दिवार या कंटिले तारों की बाड़ काफी महंगी पड़ती है। कुछ किसान पुरानी साड़ियों से बाड़ बनाकर फसलों की सुरक्षा करते हैं परंतु यह अस्थायी उपाय है प्रति वर्ष उतनी पुरानी साड़ियों की उपलब्धता भी संभव नहीं है। आज जंगली पशुओं का आतंक एक बहुत बड़ी समस्या बनकर किसानों के सामने खड़ी है। किसान अपनी समस्या समय–समय पर कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल के समक्ष रखते थे, इस विषय पर कृषि विज्ञान केन्द्र ने अपना ध्यान आकर्षित किया और इस समस्या का समाधान खोजने में जुट गया। अंततः समाधान प्राप्त हुआ। समाधान सुलभ, सस्ता और टिकाऊ है।

पंचमहल भौगोलिक रूप से अर्धशुष्क क्षेत्र है यहाँ के जंगलों में कंटीली झाड़ियों की बहुतायत है। पंचमहल जिले में स्थित केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र ने अल्प उपयोगी फलों के रूप में करौंदे की पहचान की है। इनकी बिना सिंचाई वाली भूमि पर अच्छी बढ़वार देखकर स्थानीय जंगलों एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों से करौंदे के पौधे इकठ्ठे किए गए, इन्हें 'परीक्षण–प्रक्षेत्र' पर लगाया गया। परिणाम काफी अच्छे मिले हैं। बीजों से तैयार पौधों को मानसून में लगाया जाता है, अगर सिंचाई की सुविधा है तो वर्ष के किसी भी महीने में इन पौधों को लगाया जा सकता है। करौंदे के पौधों की बढ़वार काफी अच्छी है दो वर्ष के होने पर ही ये बाड़ के रूप में उपयोगी हो जाते हैं। इसकी घनी डालियाँ एवं उनपर उगे तीक्ष्ण काँटे किसी भी पशु को अंदर नहीं आने देते हैं। एक बार करौंदे की बाड़ तैयार हो जाए तो वह वर्षों तक चलती रहती है। इन्हें अलग से खाद–पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है खेतों की फसलों में दिए जाने वाले सिंचाई एवं खाद के अंश प्राप्त होने से ही भरपूर वृद्धि करते हैं। बाड़ को घना

और जीवंत रखने के लिए कभी–कभी बाड़ के पास की भूमि की खुदाई कर देनी चाहिए। समय–समय पर बाड़ की लम्बी या अलग निकल आयी डालियो की कटाई–छँटाई करते रहना चाहिए जिससे बाड़ सिर्फ फसल की सुरक्षा ही नहीं करेंगे बल्कि सुन्दर भी लगेंगे। स्वस्थ करौंदे के पौधों की पत्तियाँ हरी चमकीली होती है, काँटे तीक्ष्ण और लंबे होते हैं। बाड़ के लिए करौंदे की किसी भी प्रजाति को चुना जा सकता है, परंतु अगर करौंदे से दुहरा लाभ लेना हो तो, के.बा.प.केन्द्र की चयनित प्रजाति का चुनाव करना चाहिए। इस प्रजाति के पौधे काफी घने और जल्दी बढ़वार करने वाले होते हैं। काँटे भी ज्यादा और खूब तीक्ष्ण होते हैं। इनके अलावा इस प्रजाति में आकर्षक लाल रंग के खूब सारे फल लगते हैं। वैसे तो करौंदे पर वर्ष में दो बार मई एवं सितम्बर में फल लगते हैं परंतु पंचमहल जिले के वातावरण में इन झाड़ियों में सालों भर फल लगते रहते हैं। ये फल कच्चे में बहुत खट्टे होते हैं, पकने पर खट्टेपन में कमी आती है एवं कुछ मिठास आ जाती है। मिठास आने के बावजूद भी यह फल के रूप में खाने योग्य नहीं रहता है परंतु इसमें पेक्टीन की प्रचुर मात्रा होने के कारण 'जेली' बनाने के लिए उत्तम फल है। इसके प्राकृतिक लाल रंग के कारण 'जेली' में बगैर कोई कृत्रिम रंग मिलाए ही बहुत आकर्षक रंग प्राप्त हो जाता है। इसमें व्याप्त खटास की वजह से इसमें साइट्रिक एसिड या नींबू के रस मिलाने की आवश्यकता नहीं होती है। आमतौर पर अमरुद की जेली बनायी जाती है, परंतु अगर करौंदे की 'जेली' बनायी जाए तो वह बहुत सरल तरीके से बन जाती है एवं अमरूद की जेली से काफी सस्ती भी बनती है। यह काफी पौष्टिक भी होता है।

किसी भी प्रकार के कृत्रिम रंग या परिरक्षण की सामग्री नहीं मिलाये जाने के कारण करौंदे की जेली रासायन रहित खा। पदार्थ के रूप में तैयार होती है। करौंदे के फल पकने पर काले हो जाते हैं। उपर से भले

ही काले हो जाए परंतु इनके अंदर बहुत सुंदर लाल रंग का रस भरा होता है। घर में तैयार होने वाले नींबू पानी, शिकंजी, सलाद, पुलाव आदि में इन फलों के रस की एक दो बूँद डालने से खुबसूरत रंग आ जाता है। खा। रंग में प्रयोग करने के लिए करौंदे के पके फलों से रंग तैयार किया जा सकता है, जिसे बोतलों में परिरक्षित कर रखा जा सके। इस पर सघन शोध की आवश्यकता है। करौंदे की जेली बनाने की विधि निम्नांकित प्रवाह चित्र में दर्शाया गया है।

लाल–लाल फलों का चुनाव कर तुड़ाई

↓

स्वच्छ पानी से साफ कर सुखाना

↓

कूकर या स्टील के पतीले में 5 मिनट उबालना

↓

उबले फलों को चम्मच द्वारा हल्के हाथों से मिलाना

↓

जाली दार छन्ने से छानना

↓

रस की मात्रा के बराबर चीनी मिलाना

↓

लगातार हिलाते हुए जमने तक पकाना

↓

कुनकुना होने तक ठंडा करना

↓

साफ बोतलों में भरना

↓

बोतलों को सीलबंद करना

करौंदा मात्र बाड़ के रूप में या जेली और खाने के रंग में ही उपयोगी नहीं है बल्कि, उद्यान प्रेमियों के लिए भी यह आकर्षक पौधा है टोपियारी कार्य में करौंदे के पौधों का उपयोग बहुत सहजता से किया जा सकता है। जिस क्षेत्र में पानी की कमी हो उस क्षेत्र के उद्यानों में

करौंदे को शोभाकारी पौधों के रूप में लगाया जा सकता है। सूखा सहिष्णु होने के कारण भीषण गर्मी में भी यह हरा–भरा रहता है। के.बा.प.केन्द्र द्वारा 'कोंकन बोल्ड' नाम की करौंदे की प्रजाति का चुनाव किया गया है इसके फल आकार में अपेक्षाकृत बड़े और खूब मीठे होते हैं, इन्हें फलों के रुप में भी खाया जा सकता है। इस प्रजाति को भी बाड़ के रूप में उपयोग किया जा सकता है क्योंकि इसके काँटे काफी बड़े और नुकीले होते हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल ने जंगली–जानवरों के द्वारा फसल बर्बाद करने की समस्या से जूझते किसानों को करौंदे की बाड़ के रुप में इस समस्या से निपटने के लिए सहज–सुलभ समाधान की सलाह प्रदान किया है। करौंदे के बीज किसानों को उपलब्ध करवाया गया है, जिससे बीज निकाल कर किसानों ने खेतों में बाड़ लगाया है एवं इन पशुओं के आतंक से मुक्ति पायी है। किसानों में करौंदे की बाड़ खूब लोकप्रिय हो रही है। गृहिणियों के बीच करौंदे की 'जेली' निर्माण ने भी खूब रंग जमाया है। अलग–अलग गाँवों से महिलाएं 'जेली' बनाने का प्रशिक्षण लेने कृषि विज्ञान केन्द्र में आती रहती हैं। अब तो करौंदे की झाड़ियों ने महिलाओं के गृह वाटिका में भी अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। सिर्फ गाँव ही नहीं शहर की महिलाएं भी करौंदे के जेली के आकर्षण में कृषि विज्ञान केन्द्र में आकर प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं। जाते हुए जेली तैयार करने के लिए फल एवं गृह वाटिका में लगाने हेतु पौधे ले जाने से नहीं चूकती हैं। यह छोटा सा प्रयास पोषण सुरक्षा के लिए भी कारगर है। कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल का पहल सार्थक हो रहा है और चरितार्थ हो रहा है कि ....

"कृषि समस्या निपटाने में, पोषण सुरक्षा लाने में,
सतत् करता रहता पहल कृषि विज्ञान केन्द्र-पंचमहल !"

सीताफल की वैज्ञानिक खेती

जितेन्द्र सिंह, प्रेरक भटनागर, योगेन्द्र सिंह, और नरेन्द्र कुमार वर्मा
उधानिकी और वानिकी महाविद्यालय, झालरापाटन – झालावाड़ (राजस्थान)

सीताफल एक मीठा व स्वादिष्ट फल है। इसे शरीफा भी कहा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम अनोना स्क्वैमोसा है। इसका उत्पत्ति स्थान उष्ण अमेरिका माना जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरी हरी रंग की होती है जिसमें एक विशेष महक होने के कारण जानवर इसे नहीं खाते हैं। इसके पौधों पर हानिकारक कीड़े एवं बीमारियाँ भी नही लगते हैं। इसलिये पौधों को विशेष देखभाल की जरूरत नहीं होती है।

पौष्टिक गुणवत्ता – सीताफल औषधीय महत्व का पौधा है। इसके फलों में 14.5 प्रतिशत शर्करा, 1.6 प्रतिशत प्रोटीन, 0.3 प्रतिशत वसा, 2.4 प्रतिशत रेशा तथा प्रति 100 ग्राम फल से 114 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। सीताफल के बीजों से निकालकर सुखाई हुई गिरी में 30 प्रतिशत तेल पाया जाता है, इससे साबुन तथा पेन्ट बनाया जाता है। फलों के गूदे को दूध में मिलाकर पेय पदार्थ के रूप में उपयोग किया जाता है। इससे आइस्क्रीम इत्यादि बनायी जाती है।

भूमि व जलवायु – सीताफल के पौधे लगभग सभी प्रकार के भूमि में उगाये जा सकते हैं। परन्तु अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है जिसका पी. एच. मान 5.5 से 7.0 के बीच होना चाहिये। लेकिन 7–9 पी.एच. मान वाली भूमि पर भी अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। सीताफल के पौधों के लिये गर्म और शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते है।

प्रवर्धन – सीताफल लगाने के लिये जुलाई महीना उपयुक्त रहता है। बीज की बुवाई करने से पहले 3–4 दिनों तक पानी में भिगो देने से जल्दी अंकुरण हो जाता है। इसके पौधे को सीधे बगीचे में जहाँ लगाना हो वहीं पर थाले बनाकर एक स्थान पर 3–4 बीज बोते हैं। जब पौधे लगभग 15 सेमी. के हो जाये तो अतिरिक्त पौधों को निकालकर केवल एक पौधे को बढ़ने के लिय छोड़ देना चाहिये। पौधे को शील्ड/पैच कालिकययन विधि से भी तैयार किया जा सकता है। कलिकायन का कार्य एक वर्ष पुराने पेन्सिल जितनी मोटी मूलवृन्त पर फरवरी – मार्च में किया जाता है।

गड्ढे तैयार करना – सीताफल के पौधों के लिये गर्मी के दिनों में 60 x 60 x 60 से.मी. आकार के 5 x 5 मी. की दूरी पर गड्ढे तैयार किय जाते हैं। इन गड्ढो को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी में 5–10 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम करंज की खली

तथा 50 ग्राम एन.पी.के. मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर भर देना चाहिये। इसके बाद गड्ढे की मिट्टी को अच्छी तरह दबा देते हैं और उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी दें। यदि वर्षा न हो रही हो तो पौधों की 3–4 दिन पर सिंचाई करें।

पौधा खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातें:

1. हमेशा किसी विश्वसनीय एवं प्रमाणित नर्सरी से ही कलमी पौधे खरीदें।
2. पौधा ओजस्वी हो, एक तने वाले सीधे तथा कम उँचाई वाले फैले हुए हों।
3. पौधे व बीज स्वस्थ, कीट एवं बीमारियों से मुक्त ही काम लेंवे।
4. पौधों कि रोपाई करने से पहले, पौधों की जड़े तथा मिट्टी की पिण्डी की ठीक तरह से जांच कर लें।

पौधों की रोपाई एवं देखभाल

1. पौध हमेशा शाम के समय ही लगाएँ।
2. पौधे लगाने का उचित समय जुलाई–अगस्त तथा फरवरी–मार्च हैं।
3. पॉलीथिन की थैली या पिण्ड के आकार एवं माप के अनुसार ही गड्ढे में जगह खाली रखें।
4. मिट्टी के पिंड के बाहर लगी पुआल या घास को हटा दें।
5. पौधों को मिट्टी के पिंड के साथ आधे भरे हुए गड्ढे के बीचो–बीच रखें। अब इसके चारों तरफ मिट्टी डालें और पैर से अच्छी तरह दबा दें।

नोट – पौधा रोपने के बाद 10 से 15 दिन बाद पौधों के चारों ओर आधे मीटर दूर तक के क्षेत्र में निराई करके घास आदि उखाड़ दें। पौधे लगाने के एक से दो वर्ष तक मूलवृंत पर आने वाले फुटाव (छोटी शाखायें) को तोड़ते रहें। यदि रोपे गये पौधों को दीमक लग रही हे तो 50 मिली लीटर क्लोरोपायरीफॉस दवा लेकर 15 लीटर पानी में घोल दें। अब 250 मिली लीटर घोल प्रति पौधे की दर से पौधे की जड़ के पास मिट्टी में डालें।

सिंचाई – पौधा लगाने के तुरंत बाद सिंचाई करें। सीताफल का पौधा सूखे के प्रति सहनशील है फिर भी 2 से 3 सिंचाई जरूर करें, मुख्यतः वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने के पूर्व, जिससे फल धारण करने की क्षमता बढती है। गर्मी में सप्ताह में एक बार व सर्दी में 15–20 दिन के अन्तराल पर पानी देने से पैदावार बढ़ती है। बीजू पौधे 3–4 वर्ष में फल देने लगते हैं अतः फलन के समय सितम्बर से नवम्बर के बीच एक बार सिंचाई करें। फूल खिलते समय व फल तोड़ने से पहले सिंचाई नही करें।

पौधों की देख–रेख एवं काट–छांट – सीताफल में मुख्यतः शाखाओं पर आते हैं। अतः अधिक संख्या में नई शाखायेँ विकसित करने के लिय पुरानी व सूखी हुई शाखाओं को काट देना चाहिये। नये पौधों में उचित ढाँचा तैयार करने हेतु 3 वर्ष तक कांट–छांट करते रहना चाहिये। कांट–छांट करते समय ध्यान रखे कि तने पर 50–60 सेमी. ऊंचाई तक किसी भी शाखा को नहीं निकलने दें। उसके ऊपर 3–4 अच्छी शाखाओं को चारों तरफ बढ़ने दे जिससे पौधे का अच्छा ढांचा तैयार हो सके। खरपतवार नियंत्रण हेतु समय – समय पर पौधों के थालों को साफ करते रहें तथा जुलाई–अगस्त में खाद व उर्वरक का प्रयोग तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।

खाद एवं उर्वरक – सीताफल के पेड़ में प्रत्येक वर्ष फलन होती है। अतः अच्छी पैदावार के लिय उचित मात्रा में सड़ी हुई गोबर की खाद व रासायनिक उर्वरक दें।

पौधे की आयु	गोबर की खाद (किग्रा)/पौध	अमोनियम सल्फेट (ग्रा)/पौध	सिंगल सुपर फॉस्फेट (ग्रा)/पौध	मुरेट ऑफ पोटाश (ग्रा)/पौध
पौधा लगाते समय	10	50	100	25
1–3 वर्ष	20	100	200	50
4–7 वर्ष	20	150	300	75
8 वर्ष या अधिक	20	200	400	100

उन्नत किस्में

1. **बालानगर** – झारखंड क्षेत्र के लिए यह एक उपयुक्त किस्म है। इसके फल हल्के हरे रंग के होते हैं तथा फलों का औसतन भार 137 ग्राम और औसतन उपज 5 से 7 किलो ग्राम प्रति वृक्ष होती हैं।
2. **अर्का सहान**– यह भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर से विकसित संकर किस्म है जो कि अपने मीठे स्वाद, सफेद गूदे, उन्नत भण्डारण क्षमता व कम बीजों (9 ग्राम/100 ग्राम फल भार) के कारण पहचानी जाती है। यह एक ऐसी किस्म है जिसके फल लाल रंग के होते हैं। औसतन प्रति पेड़ प्रति वर्ष लगभग 40–50 फल आते हैं।
3. **मैमथ**– इस किस्म के फल गोलाकार होते हैं तथा औसतन उत्पादन 60–80 फल प्रति पेड़ प्राप्त होते हैं।
4. **बारबाडोज सीडलिंग** – फलों का वजन 145 ग्राम तक होता है। औसत उपज 3.5 से 4.5 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष होती है।
5. **ब्रिटिश ग्वाईना** – फलों का औसत वजन लगभग 150 ग्राम तक होता हैं एवं औसत उपज लगभग 4–5 किलो ग्राम प्रति वृक्ष होती है।
6. **लाल सीताफल** – इस किस्म के फल हल्के गुलाबी रंग के एवं आकर्षक होते हैं। फलों में बीजों की संख्या अधिक होती है तथा औसतन उत्पादन 40–50 फल प्रति पेड़ आते हैं।

अन्तर्वर्तीय फसलें – प्रारंभ के 4–5 वर्षो तक पौधों की बढवार धीरे–धीरे होती है। अतः कतारों के बीच में खाली पड़ी जमीन पर मटर, चना, मूंगफली, सब्जियाँ, दलहनी व तिलहन फसलें उगा कर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती हैं।

पुष्पन एवं फलन – उत्तर भारत में मार्च से ही फूल आना प्रारंभ हो जाते है। फूल जुलाई तक आते रहते है। फूल आने के बाद फल पकने मे लगभग 4 महीने का समय लग जाता है। फूल खिलने के तुरन्त बाद 50 पी.पी.एम. जिब्रेलिक अम्ल (जी.ए.) के घोल का छिड़काव कर देने से फलन अच्छी होती है। सामान्यतया फल सितम्बर–अक्टूबर मे पकना शुरू हो जाते है। बडिंग एवं ग्राफ्टिंग द्वारा तैयार पौधे दूसरे वर्ष में अच्छी फलन देने लगते है।

कीट नियंत्रण – सामान्यतया सीताफल में किसी प्रकार का रोग नही लगता हैं लेकिन कभी कभी पत्तियों को नुकसान पहुँचाने वाले कीट का प्रकोप हो जाता हैं। कीट और बग का प्रकोप होने पर प्रोफेनाफास–50 या डायमिथोएट–30 की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एस.एल.) 0.3 मिली./लीटर या थायामिथोग्जाम (25 डब्लू.जी.) 0.25 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

सीताफल का बगीचा

सीताफल का प्रसंस्करण – सीताफल के फल से एक मशीन के द्वारा गूदे और बीज को अलग कर लिया जाता है। निकाले हुए गूदे को एक साल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस गूदे का उपयोग आइसक्रीम, रबड़ी और पेय पदार्थ बनाने में किया जाता है।

फल की तुड़ाई – सीताफल के पौधे मे रोपण के 4–6 वर्ष बाद फल आना प्रारंभ हो जाते हैं और 12–15 वर्ष तक अच्छी उपज देते हैं। फलों की तुड़ाई सितम्बर से नवम्बर तक करना चाहिए। सीताफल के फल पूरी तरह से पकने से पहले ही तोड़ लेना चाहिए अन्यथा फल फट कर सड़ना शुरू हो जाते हैं। तोड़ने के लगभग एक सप्ताह बाद ये फल खाने योग्य हो जाते हैं। इनकी तुड़ाई की अवस्था का निर्धारण इन लक्षणों के आधार पर करना चाहिए :–

1. जब फल कड़े रहें तथा फल का रंग हल्के हरे से पीला होने लगे।
2. फल की फाँकों के छिलके के बीच का रंग पीला–सफेद होने लगे।
3. जब फल की फाँको के बीच के छिलके में दरार सी दिखाई देने लगे।

उपज – पौधा लगाने के तीन वर्ष बाद फल देना प्रारंभ कर देता है। एक 4–5 वर्ष पुराने पौधे में 50–60 फल प्राप्त होते है जबकि पूर्ण विकसित पौधे से 100 फल तक प्राप्त हो जाते है।

कटहल की उन्नत खेती

विकास मण्डलोई, पी.के.एस.गुर्जर, गौरी शंकर पटेल एवं अभिषेक यादव
उद्यानिकी विभाग, कृषि महाविद्यालय ग्वालियर, कृषि विज्ञान केन्द्र ग्वालियर (म.प्र.)

परिचय एवं महत्व

कटहल का पौधा एक सदाबहार, 8–15 मी. ऊँचा बढ़ने वाला, फैलावदार एवं घने छत्रकयुक्त बहुशाखीय वृक्ष, होता है जो भारत का देशज है। भारत वर्ष में इसकी खेती पूर्वी एवं पश्चिमी घाट के मैदानों, उत्तर–पूर्व के पर्वतीय क्षेत्रों, संथाल परगना एवं छोटानागपुर के पठारी क्षेत्रों, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बंगाल के मैदानी भागों में मुख्य रूप से की जाती है। कटहल के वृक्ष की छाया में कॉफी, इलाइची, काली मिर्च, जमीकंद हल्दी, अदरक इत्यादि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। पूरे भारत में इसकी खेती करीब 187 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। जिससे लगभग 1857 हजार मैट्रिक टन एवं उत्पादकता 9.93 मैट्रिक टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। कटहल बंग्लादेश का राष्ट्रीय फल है। कटहल मुख्यः रुप से दो प्रकार के होते हैं, जिसमें मुलायम गूदा एवं कठोर गूदा वाली प्रजातियां आती हैं। कठोर गूदे वाले फल आकार में बड़े होते हैं, जबकी मुलायम गूदे वाले फल छोटे एवं मीठे होते हैं। दक्षिण भारत में कटहल की खेती बहुत प्रचलित है। यहां कटहल का सालाना उत्पादन में आम एवं केले के बाद स्थान आता है।

फलो में पोषक तत्वों की मात्रा एवं उपयोग

स्वाद एवं पौष्टिकता की दृष्टि से कटहल का फल अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके फल बसंत ऋतु से वर्षा ऋतु तक उपलब्ध होते हैं। बसंत ऋतु में जब प्रायः सब्जी की अन्य प्रजातियों का अभाव रहता है, कटहल के छोटे एवं नवजात मुलायम फल एक प्रमुख एवं स्वादिष्ट सब्जी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। जैसे–जैसे फल बड़े होते जाते है इनमें गुणवत्ता का विकास होता जाता है एवं परिपक्व होने पर इसके फलों में शक्रा, पेक्टिन, खनिज पदार्थ एवं विटामिन 'ए' का अच्छा विकास होता है। कटहल के फल एवं बीज में पाये जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों को नीचे की सारणी में दिया गया है:–

पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम)	कच्चे फल	पके फल	बीज
नमी (प्रतिशत)	84.0	77.2	64.5
कार्बोहाइड्रेड (ग्रा.)	9.4	18.9	25.8
प्रोटीन (ग्रा.)	2.6	1.9	6.6
कुल खनिज पदार्थ	0.9	0.8	1.2
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	50.0	20.0	21.0
फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	97.0	30	20.1
लौह तत्व (मि.ग्रा.)	1.5	500.0	20.1
विटामिन 'ए' (आइ.यू.)	0.0	540.0	17.0
थायमिन (मि.ग्रा.)	0.3	30.0	17.0

भूमि एवं जलवायु

कटहल के पौधे लगभग सभी प्रकार के भूमि में पनप जाते हैं परन्तु अच्छी जल निकास की व्यवस्था वाली गहरी दोमट मिट्टी इसके बढ़वार एवं पैदावार के लिए उपयुक्त होती है। मध्यम से अधिक वर्षा एवं गर्म जलवायु वाले क्षेत्र कटहल के खेती के लिए उपयुक्त होते है। यह देखा गया है कि छोटानागपुर एवं

कटहल फलों से लदा वृक्ष

संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्रों की टांड जमीन जिसमें मृदा पी.एच.मान सामान्य से थोड़ा कम, संरचना हल्का तथा जल का निकास अच्छा है, कटहल की खेती के लिए उपयुक्त पायी गयी है।

उन्नत किस्में

कटहल एक पर–परागित फल वृक्ष होने तथा प्रमुखतः बीज द्वारा प्रसारित होने के कारण इसमें प्रचुर जैव विविधता है। कटहल कि कोई स्थाई किस्म नहीं है जो किस्मे उगाई जा रही है उनको साधारणतया दो समूहों में बांटा गया है।

कठोर गूदे वाली किस्में

कठोर गूदे वाली किस्मों में गूदा कठोर और फलों की महक अच्छी होती है।

मुलायम गूदे वाली किस्में

इस प्रकार की किस्मों का गूदा मुलायम होता है और मिठास अधिक होती है। स्थानीय नाम व गुणों के आधार पर कुछ किस्मों का नामकरण किया गया है उनमें प्रमुख किस्में निम्नानुसार है –

खजवा : इस किस्म के फल जल्दी पक जाते हैं। यह ताजे पके फलों के लिए एक उपयुक्त किस्म है।

स्वर्ण मनोहरः छोटे आकार के पेड़ में बड़े–बड़े एवं अधिक संख्या में फल देने वाली यह एक उम्दा किस्म हैं। यह किस्म छोटानागपुर एवं संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त पाई गई है। इसकी प्रति वृक्ष औसत उपज 350–500 कि.ग्रा. (पकने के बाद) है।

स्वर्ण पूर्तिः यह सब्जी के लिए एक उपयुक्त किस्म है। इसका फल छोटा (3–4 कि.ग्रा.), रंग गहरा हरा, रेशा कम, बीज छोटा एवं पतले आवरण वाला तथा बीच का भाग मुलायम होता है। इस किस्म के फल देर से पकने के कारण लंबे समय तक सब्जी के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं। इसके वृक्ष छोटे तथा मध्यम फैलावदार होते हैं जिसमें 80–90 फल प्रति वर्ष लगते हैं। फलों का आकार गोल एवं कोये की मात्रा अधिक होती है।

गुलाबीः गुलाबी किस्म के गुदे में गुलाब जैसे खुशबू होती है।

चंपाः इस किस्म के गूदे में चंपा जैसी खुशबू होती है।

हजारीः इस किस्म में बहुत ही अधिक मात्रा में फल लगते है इसलिए इसका नाम हजारी रखा गया है।

खाजाः यह किस्म इलाहाबाद जिले में अधिक लोकप्रिय है।

धिलाः फल छोटे गुदा कम बीज बड़ा और छिलका खुरदरा होता ह। इसके कोये बहुत ही छोटे होते है और सब्जी बनाने के प्रयोग में ली जाती है। फलों का भार 4–5 किलो तक होता है।

रुद्राक्षीः यह दक्षिण भारत में अधिक उगाई जाती है जिसके फल छोटे और छिलका कम कांटेदार होता है। इसके फल अन्य किस्म के फलों की अपेक्षा गुण में कमजोर होते हैं।

पौधा प्रसारण

कटहल मुख्य रूप से बीज द्वारा प्रसारित किया जाता है एक समान पेड़ तैयार करने के लिए वानस्पतिक विधि द्वारा पौधा तैयार करना चाहिए। वानस्पतिक विधि में कलिकायन तथा ग्राफ्टिंग अधिक सफल पायी गयी है। इस विधि से पौध तैयार करने के लिए मूल वृंत की आवश्यकता होती है जिसके लिए कटहल के बीजू पौधों का प्रयोग किया जाता है। मूल वृंत को तैयार करने के लिए ताजे पके कटहल से बीज निकाल कर 400 गेज की 25 x 12 x 12 सें.मी. आकार वाली काली पॉलीथीन को थैलियों में बुआई करना चाहिए। थैलियों को बालू, चिकनी मिट्टी या बागीचे की मिट्टी तथा गोबर की सड़ी खाद को बराबर मात्रा में मिलाकर बुवाई से पहले ही भर देना चाहिए। चूँकि कटहल का बीज जल्दी ही सूख जाता है। अतः उसे फल से निकालने के तुरन्त बाद थैलियों में 4–5 सें.मी. गहराई पर बुआई कर देना चाहिए। उचित देख–रेख करने से मूलवृंत लगभग 8–10 माह में बंडिंग/ग्राफ्टिंग योग्य तैयार हो जाते है। कटहल के पौधे को पैच बडिंग या क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किया जा सकता है। पैच बडिंग के लिए मातृ वृक्ष से सांकुर डाली काटकर ले आते हैं। जिससे 2–3 सें.मी. लम्बी कली निकाल कर मूलवृंत पर उचित ऊँचाई पर उसी आकार की छाल हटाकर बडिंग कर देते हैं। बडिंग के बाद कली को सफेद पालीथीन की पट्टी (100 गेज) से अच्छी तरह बांध देते हैं तथा मूलवृंत का ऊपरी भाग काट देते हैं। ग्रैफ्टिंग विधि से पौधा तैयार करने के लिए मातृ वृक्ष पर ही सांकुर डाली की पत्तियों को लगभग एक सप्ताह पहले पर्णवृंत छोड़कर काट देते हैं। जब पत्ती का पर्णवृंत गिरने लगे तब सांकुर डाली को काटकर ले आते है। मूलवृंत को उचित ऊँचाई पर काट देते हैं। तथा उसके बीचो–बीच 3–4 सें.मी. लम्बा चीरा लगा देते हैं। सांकुर डाली के निचले भाग को दोनों तरफ से 3–4 सें.मी. लगा

कलम बनाते हैं। जिसे मूलवृंत के चीरे में घुसाकर 100 गेज मोटाई की सफेद पालीथीन की पट्टी से बांध देते है। छोटानागपुर क्षेत्र में बडिंग के लिए फरवरी–मार्च तथा ग्राफ्टिंग के लिए अक्टूबर–नवम्बर का महीना उचित पाया गया है।

खेत की जुताई व मिटटी की तैयारी

कटहल की खेती के लिए उचित जल निकास वाली गहरी उपजाऊ दोमट भूमि अच्छी रहती है। भूमि की अच्छी तरह से जुताई करने के बाद पाटा लगाकर भूमि को समतल कर लेना चाहिए। इसकी बुवाई व कटाई का उचित समय जून–जुलाई माह होता है।

पौधा रोपण एवं देख–रेख

कटहल का पौधा आकार में बड़ा तथा अधिक फैलावदार होता है अतः इसे 10 x 10 मी. की दूरी पर लगाया जाता है। पौध रोपण के लिए समुचित रेखांकन के बाद निर्धारित स्थान पर मई–जून के महीने में 1 x 1 x 1 मीटर आकार के गड्ढे तैयार किये जाते हैं। गड्ढा तैयार करते समय ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ तथा आधी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी में 20–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1–2 कि.ग्रा. करंज की खली तथा 100 ग्रा. एन.पी.के. मिश्रण अच्छी तरह मिलाकर भर देना चाहिए। जब गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह दब जाये तब उसके बीचो–बीच में पौधे के पिण्डी के आकार का गड्ढा बनाकर पौधा लगा दें। पौधा लगाने के बाद चारों तरफ से अच्छी तरह दबा दें और उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी दें। यदि वर्षा न हो रही हो तो पौधों को हर तीसरे दिन एक बाल्टी (15 लीटर) पानी देने से पौध स्थापना अच्छी होती है।

खाद एवं उर्वरक

कटहल के पेड़ में प्रत्येक वर्ष फलन होती है अतः अच्छी पैदावार के लिए पौधे को खाद एवं उर्वरक पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। प्रत्येक पौधे को 20–25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 100 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष की दर से जुलाई माह में देना चाहिए। तत्पश्चात पौधे की बढ़वार के साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते रहना चाहिए। जब पौधे 10 वर्ष के हो जाये तब उसमें 80–100 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. यूरिया, 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 1 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देते रहना चाहिए। खाद एवं उर्वरक देने के लिए पौधे के

क्षत्रक के नीचे मुख्य तने से लगभग 1–2 मी. दूरी पर गोलाई में 25–30 सें.मी. गहरी खाई में खाद के मिश्रण को डालकर मिट्टी से ढक देना चाहिए।

पुष्पन एवं फलन

कटहल एक मोनोसियस पौधा है जिसमें नर एवं मादा पुष्पक्रम (स्पाइक) एक ही पेड़ पर परन्तु अलग–अलग स्थानों पर आते हैं। नर फूल, जिसकी सतह अपेक्षाकृत चिकनी होती है, नवम्बर–दिसम्बर में पेड़ की पतली शाखाओं पर आते हैं। ये फूल कुछ समय बाद गिर जाते हैं। मादा फूल मुख्य तने एवं मोटी डालियों पर जनवरी–फरवरी में आते है। मादा फूल अधिक ओजपूर्ण वृंत, जिसे 'फुटस्टॉक' कहते है। कटहल एक पर–परागित फल है जिसमें परागण समकालीन नर पुष्प से ही होता है। यदि मादा फूल में समान परागण नहीं होता है तो फल विकास सामान्य नहीं होता है। परागण के पश्चात पुष्पक्रम का आधार, अंडाशय और दलाभ एक साथ विकसित होकर संयुक्त फल का विकास होता है। फल जनवरी–फरवरी से जून–जुलाई तक विकसित होते रहते हैं। इसी समय में फल के अंदर बीज, कोया इत्यादि का विकास होता है और अंततः जून–जुलाई में फल पकने लगते हैं।

सिंचाई

कटहल की जड़ें काफी गहराई तक जाती है। अतः बड़े बृक्ष में सिंचाई कि आवश्यकता बहुत कम पड़ती है, 1–3 साल के पौधे को गर्मी के दिनों 4–5 दिन के बाद तथा सर्दी में 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचते है। फल आने के समय सिंचाई रोक देते है तथा फल लग जाने के बाद नियमित अंतराल पर सिंचाई करते है। खरपतवार नियंत्रण के लिए समय–समय पर निराई–गुड़ाई करके पौधें के थाले साफ रखने चाहिए। बड़े पेड़ों के बगीचों में वर्ष में दो बार जुताई करनी चाहिए।

अन्तरसस्य

कटहल के पेड़ जब तक बड़े न हो जाये तब तक प्रारंभिक वर्षो में बाग में सब्जी वाली फसले जैसे मूली–टमाटर – गाजर–फूल गोभी तथा दलहनी फसलें जैसे मूंग–मसूर– उड़द– चना आदि उगाई जाती हैं। इस तरह से अंतः फसल से भूमि का अधिकतम उपयोग हो जाता है तथा प्रारंभ के वर्षो में बाग से आमदनी भी प्राप्त हो जाती है।

कटाई–छंटाई

कटहल के पेड़ को उचित आकार देने के लिए काट–छाँट की जाती है। कटहल में 2 वर्षो के अंतर पर कांट–छाँट करनी चाहिए। कमजोर और रोग ग्रस्त तथा एक दुसरे से उलझी व सूखी शाखाओं को काट देते हैं। काट–छांट अक्तूबर माह में करते हैं।

फल तुड़ाई

फलों की तुड़ाई उनके उपयोग पर निर्भर करती है। सब्जी हेतु तुड़ाई के लिए पूर्ण वृद्धि लिए हरे फल को तोड़ा जाता है। आवश्यकता के अनुसार फलों को वृक्षो से तोड़ते रहते हैं। पके फलों की पहचान के लिए तुड़ाई के समय फलो का रंग हल्का पीला होना चाहिए।

उपज

परागण के 3 माह बाद फल तोड़ने लायक हो जाते है जो कि सब्जी के रूप में उपयोग में लाये जाते है फल 4–5 माह में पक कर तैयार हो जाते है जो कि पके खाए जाते है। कटहल के फल आमतौर पर मार्च से जून तक मिलते हैं। समुद्रतल से अधिक उंचाई वाले क्षेत्रों में फल सितम्बर तक मिलते है। कटहल के पौधों से प्रत्येक वर्ष एक सामान पैदावार नही होती है। अच्छी तरह से पूर्ण विकसित 15–16 वर्ष के पौधें से 100–400 फल प्रतिवर्ष मिलते है जिनमें से कुछ फलों का वजन 20 किलो ग्राम तक होता है पैदावार कटहल की फसल पर निर्भर करती है।

भंडारण

कटहल के कच्चे फल कमरे के ताप पर 7–8 दिन तक तथा पके फल 3–4 दिन तक भंडारित किये जा सकते हैं। शीत गृहों में 11.5–12.5^{0} सें. तथा 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 6 सप्ताह तक भंडारित कर सकते है।

कीट, रोग एवं नियंत्रण

तना वेधक–इस कीट के नवजात पिल्लू कटहल के मोटे तने एवं डालियों में छेद बनाकर नुकसान पहुँचाते हैं। उग्रता की अवस्था में मोटी–मोटी शाखायें सूख जाती हैं एवं फसल को प्रभावित करती है। इसके नियंत्रण के लिए छिद्र को किसी पतले तार से साफ करके नुवाक्रान का घोल (10 मि.ली./ली.) अथवा पेट्रोल या किरोसिन तेल के चार–पाँच बूंद रुई में डालकर गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू मर जातें हैं एवं तने में बने छिद्र धीरे–धीरे भर जाते है।

गुलाबी धब्बा–इस रोग में पत्तियों को निचली सतह पर गुलाबी रंग का धब्बा बन जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और फल विकास सुचारू रूप से नहीं हो पाता। इसके नियंत्रण के लिए कॉपर जनित फफूंद नाशी जैसे कॉपर आक्सीक्लोराइड या ब्लू कॉपर के 0.3 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोग–यह रोग राइजोपस आर्टोकार्पी नामक फफूंद के कारण होता है जिसमें नवजात फल डंठल के पास से धीरे–धीरे सड़ने लगते हैं। कभी–कभी विकसित फल को भी सड़ते हुए देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए फल लगने के बाद लक्षण स्पष्ट होते ही ब्लू कॉपर के 0.3 प्रतिशत घोल का दो छिड़काव 15–20 दिनों के अंतराल पर करें।

कटहल का उपयोग

खाद्य पदार्थ के रूप में: प्रायः पश्चिम के लोग कटहल को तब अधिक पसन्द करते हैं। मुलायम एवं छोटे फलों से अचार बनाया जाता है। इसके फलों को चीनी या शहद के शिरप में सिट्रिक अम्ल के साथ डिब्बाबंद भी किया जाता हैं। डिब्बाबंद करने के लिए क्रिस्प प्रकार के कटहल अधिक उचित होते हैं। डिब्बाबंद कटहल, ताजे कटहल से अधिक आकर्षक होता है और इसे "वैजिटेबल मीट" की संज्ञा दी ताजी हैं। कटहल के गूदे को यांत्रिक विधियों से पृथक कर इससे कटहल नेक्टर बनाया जाता है। भारत में कटहल के टुकड़ों को तेल में तल कर आलू के चिप्स की तरह खाया जाता हैं। कटहल के बीज को उबाल कर या भूनकर भी खाया जाता है। कटहल की कोमल पत्तियो और फूलों का सब्जियों के रूप में भी उपयोग करते हैं।

लेटेक्स का उपयोग: लेटेक्स के गर्म करके घरेलू चीजो को जोड़ने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग रबर की तरह नहीं किया जा सकता है परन्तु इसमें 82.6 से 86.4 प्रतिशत तक रेजिन पाया जाता है जिसके कारण इसे वार्निश की तरह इस्तेमाल कर सकते है। इसकी जीवाणु नाशक शक्ति पपीते के लेटेक्स के बराबर होती है।

लकड़ी का उपयोग: श्रीलंका मे कटहल की लकड़ी एक मुख्य इमारती लकड़ी है। भारत मे इसका इस्तेमाल इमारती लकड़ी के रूप मे कम किया जाता है। कटहल की लकड़ी दीमक के लिए अवरोधी होती है। इसकी लकड़ी जीवाणु एवं कवक से होने वाले सड़न के लिए भी अवरोधी होती है। इसका उपयोग मुख्यः फर्नीचर बनाने में, निर्माण कार्यो में, औजार बनाने में तथा संगीत के उपकरण बनाने मे होता हैं। पेड़ की जड़ से फोटो फ्रेमिंग भी की जाती है। इसके बुरादे को फिटकरी के साथ उबाल कर पीले रंग की डाई बनायी जाती है।

कटहल के औषधीय गुण

मुख्य रूप से कटहल को उसके स्वाद के लिए जाना जाता है। परन्तु कटहल में बहुत औषधीय गुण भी होते हैं। कटहल के प्रत्येक भाग को "हर्बल मैडीसन" की तरह उपयोग किया जाता है। पत्तियों के प्रयोग से स्त्रियों मे दूध की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। अपच की शिकायत में भी पत्तियों का उपयोग किया जाता है। रक्तचाप एवं डायरिया मे भी पत्तियों का इस्तेमाल किया जाता है। कटहल की लकड़ी का अवसापक के रूप मे प्रयोग करते हैं। इसका फल बहुत स्वादिष्ट होता हैं। इसमें रेशा एवं स्टार्च पाया जाता है। इसके फल में प्रोटीन, बसा, कार्बोहाइडेट, विटामिन एवं खनिज लवण पाये जाते है जो बहुत लाभकारी होते है। कटहल की पत्तियाँ, गन्ने की पत्तियाँ एवं बाँस का चारकोल समान अनुपात मे लेकर उबाल ले। इसे दिन मे तीन बार पीने से अस्थमा का उपचार होता है। जले पर या घाव पर कटहल की निचोड़ी हुई पत्तियाँ रखने पर जलन कम हो जाती है एवं घाव जल्दी भरता है। जड़ों के रस से डायरिया एवं ज्वर का उपचार किया जाता है। जड़ का प्रयोग त्वचा की बिमारियों एवं अस्थमा में किया जाता है। इसके गूदे एवं बीज को चीन मे टॉनिक की तरह इस्तेमाल किया जाता है। कटहल से मदिरा का असर भी कम किया जा सकता हैं। भुने हुए बीजों में कामोद्दीपक गुण होते हैं।

"ध्यान रहे....
जिन शब्दों के अंत में 'ई' आता है वे केवल संज्ञाएं होती हैं क्रियाएं नहीं, जैसे-
मिठाई, मलाई, सिंचाई, ढिठाई, बुनाई,
सिलाई, कढ़ाई, निराई-गुड़ाई, आदि"

शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में आलू की वैज्ञानिक खेती

रूप चंद बलाई, मुकेश कुमार जाटव एवं एस. आर. मीना
भाकृअनुप.– केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

मनुष्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली विभिन्नम प्रकार की सब्जियों में आलू का प्रमुख स्थान है। इसमें कार्बोहाइडेट की भरपूर मात्रा के साथ साथ खनिज लवण, विटामिन तथा अमीनों अम्ल की मात्रा भी पायी जाती है जो शरीर की वृद्धि एवं स्वास्थ्य के अनुरक्षण के लिये आवश्यक है। आलू की फसल से अन्य प्रमुख खाद्यान्न फसलों के मुकाबले कम समय में ही अधिक खाद्य प्रति इकाई क्षेत्र में पैदा की जा सकती है।

जलवायु एवं भूमि

आलू के लिए शीतोष्ण जलवायु तथा कन्द बनने के समय उपयुक्त तापक्रम 18 से 20 डिग्री सेन्टीग्रेड होना चाहिये। यह फसल पाले से प्रभावित होती है। आलू की फसल सामान्य तौर पर सभी प्रकार की भूमि में उगाई जा सकती है परन्तु हल्की व बलुई दोमट मिट्टी का उपजाऊ खेत जहां जल निकास की सुविधा हो इसके लिये विशेष उपयुक्त रहता है। खेत का समतल होना भी आलू की फसल के लिये आवश्यक है। आलू को 6 से 8 पी.एच. वाली भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है परन्तु लवणीय तथा क्षारीय भूमि इस फसल के लिये पूर्णतया अनुपयुक्त होती है।

उन्नत किस्में

सफेद त्वचा वाली	75 से 90 दिन में पकने वाली – कुफरी चंद्रमुखी, कुफरी अशोका (जीने376), कुफरी (जेएच 222), गरीमा, ख्याति
	90 से 105–110 दिन में पकने वाली –कुफरी ज्योति, कुफरी (बहार ई 3797), कुफरी पुखराज (जे ई एक्स/ सी–166), कुफरी बादशाह (जे एफ. 4870), कुफरी सतलज (जे आई 5857) कूफरी सूर्या
लाल त्वचा वाली	90 से 105 दिन में पकने वाली–कुफरी सिन्दुरी, कुफरी लालिमा
प्रसंस्कारण हेतु उपयुक्त (सफेद त्वचा वाली)	39 से 105–110 दिन में पकने वाली – कुफरी चिप्सोना–1, कुफरी चिप्सोफना–2, चिप्सोना–4, फ्राईसोना

कुफरी चिप्सोना : 2 यह किस्म एफ 6 एवं क्यू बी/बी–92–4 के संस्करण से तैयार की गई है। यह किस्म भी प्रसंस्करण उदेश्य के लिए उपयुक्त है। इसके कंद सफेद चिकने, मध्यम आकार के होने के साथ–साथ गोल अण्डायकार एवं चपटी आंख वाले होते हैं। इसके गूदे का रंग पीला होता है। यह, किस्मद पछेती झुलसा बीमारी से प्रतिरोधी एवं पाले के प्रति सहनशील है। उचित परिस्थितियों में लगभग 35 टन प्रति हेक्टेयर उपज क्षमता है। यह किस्म 90 से 100 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

कुफरी ज्योति : इसके कन्द अण्डाकार सफेद रंग के तथा कई आंखों वाले होते हैं। मैदानी भागों में इसकी पकने की अवधि 100 दिन तथा औसत उपज 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्मं अगेती व पछेती झूलसा रोग प्रतिरोधी है तथा इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी होती है।

कुफरी बादशाह : इसके कन्द बड़े से मध्य्म आकार के अण्डाकार, चमकदार, सफेद चिकने, नियमित गहरी आंखों सहित होते हैं। गूदा हल्का सफेद होता है। 90 से 100 दिन की पकने वाली इस किस्म की भण्डारण क्षमता अपेक्षाकृत कम है तथा यह अगेती व पिछेती झुलसा, विषाणु रोगरोधी है। इसकी औसत उपज 300 से 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

कुफरी सूर्या : अधिक उपज (30–35 टन हे) देने वाली मध्यम अवधि (90–105 दिन) की किस्म तथा इसके कन्द मध्यम से बड़े आकार, सफेद त्वचा वाली अंडाकार कम गहरी आँखें व क्रीमी गूदा पाया जाता है। यह किस्म अच्छी भंडारण क्षमता वाली है तथा हायर बर्न के प्रति प्रतिरोधी एवं तापमान के प्रति सहनशील है।

कुफरी सिन्दूरीः इस किस्म के आलू का आकार गोल व आंखे कुछ गहरी होती है व रंग कुछ लालिमा लिए हुए होता है। यह अधिक मात्रा में मिलता है। यह किस्म 110 से 120 दिन में तैयार हो जाती है। इसकी उपज क्षमता पैदावार 250 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

खेत की तैयारी एवं भूमि उपचार

इसकी खेती के लिए खेत की जुताई बहुत अच्छी तरह होनी चाहिए। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो–तीन बार हैरो या देशी हल से जुताई कर मिट्टी को बारीक भुरभुरी कर लेनी चाहिये। इससे भूमिगत जुताई के बाद पाटा लगायें जिससे ढेले न रहें। भूमि उपचार के लिये अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिला दें। इससे भूमिगत कीटों से फसल की रक्षा होती है।

खाद एवं उर्वरक

फसल की बुवाई से एक माह पूर्व 250 से 350 गाडी प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद देवें। उर्वरकों में 187.5 किग्रा नत्रजन, 125 किग्रा फास्फोरस तथा 125 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। विभागीय सिफारिशों के अनुसार उर्वरकों के प्रयोग के अतिरिक्त आलू कंद बीज को 1 प्रतिशत यूरिया एवं 1 प्रतिशत सोडियम बाईकार्बोनेट के घोल में 5 मिनिट तक डुबाने के बाद पी.एस. बी. कल्चर एवं ऐजेटोबेक्टीर कल्चर से उपचारित करके बुवाई करने पर उपज में वृद्धि होती है। यूरिया के समुचित उपयोग के लिये आलू की फसल को नत्रजन की आधी मात्रा को बेसल रूप में यूरिया तथा कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट 1:1 की दर से देना चाहिए तथा शेष बची हुई आधी नत्रजन की मात्रा को यूरिया द्वारा बुवाई के 30–35 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने की अवस्था में देवें। फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा पोटाश की 2/3 मात्रा बुवाई के समय एवं शेष मात्रा बुवाई के 30–35 दिन बाद भी दी जा सकती है। आलू की खड़ी फसल में बुवाई के 40 दिन बाद 0.1 प्रतिशत बोरिक अम्ल का छिड़काव करने पर कम से कम फटते है एवं अधिक उपज प्राप्त होती है।

बीज की मात्रा व उपचार

भण्डारित आलू को 4 से 5 दिन पूर्व शीतगृह से निकाल कर सामान्य ठण्डे स्थान पर रखना चाहिये। बुवाई से पूर्व इसे 24 से 48 घण्टे तक हवादार, छायायुक्त स्थान पर फैलाकर रखें। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शीतगृह से लाये गये आलुओं को धुप में न रखें और न ही तुरन्त बुवाई के लिये प्रयोग में लावें अन्यथा बाहरी तापक्रम की अधिकता की वजह से आलू के सड़ने का खतरा बना रहता है। जिन कन्दों पर अंकुरित प्रस्फुटन न दिखाई दे उन्हें हटा देना चाहिये। बुवाई के लिये रोग रहित स्वस्थ कंद ही उपयोग में लाने चाहिये। सिकुडे हुए या सूखे कन्दों का इस्तेमाल नही करना चाहिये। बीज कम से कम 2.5 सेमी. व्यास के आकार के 25 से 30 क्विंटल आलू प्रति हेक्टे. के कंदों की आवश्यकता होती है। बुवाई से पूर्व बीज को स्टेनप्टोमसाइक्लिन 0.1 प्रतिशत अथवा टोपसिन एम 0.2 प्रतिशत या बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत के घोल से उपचारित करना चाहिये। इसके बाद बीजों को एजोटोबेक्टयर कल्चर से उपचारित कर छाया में सुखाकर काम में लेना चाहिये।

आलू की बुवाई

आलू की मुख्य फसल को सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से अक्टूबर के अन्त तक बो देना चाहिये। कोटा क्षेत्र में बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक है। बुवाई के समय मौसम हल्का ठण्डा होना चाहिये। बीज की मात्रा व बुवाई की दूरी सामान्यतः बीज की किस्म, आकार व भूमि की उर्वरकता पर निर्भर करती है। कोटा क्षेत्र में कतार से कतार की दूरी 60 सेमी एवं कंद की दूरी 20 सेमी रखें।

अन्य विधियां

खेत में 45–45 सेमी. की दूरी पर कतारें बनाकर 20 सेमी. की दूरी पर 5–7 सेमी. की गहराई पर आलू के कन्द बोये। दो कतारों के बीच में हल चलाकर आलू को दबा देवें। इस प्रकार बोने से डोलियां बनाने का श्रम व खर्चा बचेगा। पहले खेत में 15 सेमी. ऊंची डोलियां बना लेवें और उसके एक तरफ या बीच में आलू के बीज को 5 से 7 सेमी. गहरा बोते हैं।

संस्थान में ड्रिप विधि से आलू फसल

प्रति पौधा आलू

सिंचाई

साधारणतः आलू की फसल के लिये 10–15 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है लेकिन आलू की फसल में ड्रिप से सिंचाई करने पर 40–50 प्रतिशत पानी की बचत की जा सकती है। संस्थान में आलू की फसल को ड्रिप पर लेने पर फसल उत्पादन में सकारात्मक परिणाम मिले है। फसल के अंकुरित होते ही सिंचाई प्रारम्भ कर देना चाहिये। मैदानी भागों में जहां सर्दियों में बुवाई की गयी हो और तापमान अधिक हो या बलुई या बहुत अधिक हल्की मिट्टी हो तो अंकुरण के पूर्व भी सिंचाई करनी पड़ती है। सर्वप्रथम हल्की सिंचाई करनी चाहिये। इसके बाद सामान्य सिंचाई करते है। परन्तु किसी भी दशा में नालियों को तीन चौथाई से अधिक नही भरना चाहिये। डोलियों पर पानी चढ़ जाने से उसका ऊपरी भाग कड़ा हो जाता है। इस कारण आलू की जडें भली– भांति नही फैलने से आलू समान रूप से नही बढ़ पाते। हल्की मध्यम दर्जे की मिट्टी में 7 से 10 दिन में तथा भारी मिट्टी में 12 से 15 दिन के बाद सिंचाई करनी चाहिये। जैसे–जैसे फसल पकती जाये सिंचाई का अन्तर बढ़ाते जायें। फसल पकने से 15 दिन पूर्व सिंचाई बन्द कर देवें।

किसान के खेत पर आलू की फसल

कन्द बनाते समय आलू की फसल

संस्थान में किए जा रहे प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया गया है कि पश्चिमी राजस्थान की जलवायु में आलू की खेती में अच्छी वृद्धि होती है। मौसम साफ होने के कारण बलुई दोमट में आलू के कन्द का आकार भी अच्छा मिलता है। आलू की विभिन्न किस्मों का विश्लेषण किया गया। साथ ही साथ किसानों के खेत पर भी आलू के प्रदर्शन लगाए गए जिससे फसल उत्पादन में अच्छी पैदावार पायी गई एवं यहां शुष्क क्षेत्र में आलू सब्जी की अपार संभावनाएँ हैं। आलू की अच्छी गुणवत्ता के लिए उच्च गुणवत्ता बीज, उचित विपणन प्रणाली, उचित शीत भंडारण, ड्रिप/स्प्रिंकलर द्वारा सिचाईं की सुविधा एवं

तालिका 1. आलू की प्रजातियों की उपज कारकों, कंदों तथा वृद्धि कारक गुणों का अध्ययन

आलू की किस्म	पौधे की ऊँचाई (45 दिन)	शाखाओं की संख्या	कंपाउंड लीफ	आँखों की संख्या	कंद की संख्या (,000)			उपज क्वि./हे.			उपज क्वि./हे.
					छोटा (25 ग्रा तक)	मध्यम (25–75 ग्रा.)	बड़ा (75 ग्रा. से अधिक)	छोटा (25 ग्रा तक)	मध्यम (25–75 ग्रा.)	बड़ा (75 ग्रा. से अधिक)	
कूफरी ख्याति	24.0	3.0	24.8	9.15	107	118	257	25.39	82.19	225.76	333.34
कूफरी गरिमा	25.14	4.0	21.2	11.05	128	185	207	16.70	102.76	204.99	324.45
कूफरी चिपसोना–4	42.60	4.2	28.2	8.31	240	118	250	45.18	74.31	309.17	428.67
कूफरी पुखराज	24.80	3.2	16.8	9.44	66	142	155	11.78	65.28	126.92	203.98
कूफरी फ्राईसोना	36.66	4.0	37.4	7.95	161	141	305	15.18	72.07	348.12	435.37
कूफरी सूर्या	31.40	5.0	28.8	9.15	31	127	230	5.41	92.63	243.02	341.06
कूफरी ज्योति	28.12	3.4	26.4	8.23	91	175	196	16.23	116.6	212.35	345.18

किसानों के खेत पर प्रदर्शनों के माध्यम से प्रशिक्षित कर, प्रसंस्करण इकाई स्थापित कर आलू की अपार संभावनाए प्रेरित की जा सकती है।

आलू की कम (90–105) दिन में पकने वाली किस्मों में जल उपलब्धता की स्थिति में पलेवा कर बुवाई के 8–10 दिन पश्चात आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। कंद की बुवाई के 30 से 35 दिन बाद पौधे जब 8 से 10 से.मी. के हो जावें तो खरपतवार निकाल कर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये। इसके एक माह बाद दुबारा मिट्टी चढ़ावें।

प्रमुख कीट

मोयला एवं हरा तेला : यह आलू के महत्वपूर्ण कीट हैं तथा पत्तियों व टहनियों से रस चूस कर हानि पहुंचाते हैं। जब प्रकोप अधिक होता है तो पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती हैं और पीली पड़कर सूख जाती हैं। यह कीट विषाणु रोग फैलाने में भी सहायक हैं। नियंत्रण हेतु मिथाइल डेमेटोन 25 ई सी 1 मि.ली.प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

कटवर्म (कटवा लट) : इस कीट की लटें आलू के पौधों की शाखाओं व उगते हुए आलू को काटकर नुकसान पहुंचाती है। बाद की अवस्था में ये लटें आलू में छेद कर देती हैं जिससे उनका बाजार भाव कम हो जाता है। खेती में इससे 40 प्रतिशत तक की हानि होती है। इनकी लटें दिन में मिट्टी के ढेलों में छिपी रहती हैं तथा रात के समय फसल को क्षति पहुंचाती हैं। इनके नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व भूमि उपचार किया गया हो तो इस कीट के आक्रमण की सम्भावना नही रहती है। खड़ी फसल में इस कीट रोकथाम हेतू क्यूनोलफार्स 2 मिली./ली. की दर से प्रयोग करें।

प्रमुख रोग

झुलसा रोग (अ) अगेती झुलसा : इस बीमारी का प्रकोप कन्द बनने से पहले होता है। पहले भूरे धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं जो बाद में गहरे भूरे होकर काले धब्बे में बदल जाते है। धब्बे नुमा धारियां भी दिखाई देती हैं। कभी–कभी कन्दों व शाखाओं पर भी भूरे से काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा कन्दों का सड़ना भी देखा गया है। इस रोग से निचली पत्तियां सूखने तथा गिरने लगती हैं।

(ब) पिछेती झुलसा : रोग की शुरूआत पर पत्तियों पर जलीय धब्बे बनते है जो बाद में भूरे रंग के होते हैं। ऐसे धब्बे गोल से अनियमित आकार के होते हैं। धब्बों के ऊतक मर जाते हैं और सम्पूर्ण पत्तियां झुलस जाती हैं। रोग के लक्षण कन्दों पर भी दिखाई देते हैं तथा कन्द झड़ जाते हैं। नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकानाशी दवायें जैसे डाइफोल्टान या रिडोमिल एम जैड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी या साइमोक्सेनिल 8 प्रतिशत मेंकोजेब 64 प्रतिशत मिश्रण के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर यह छिड़काव 10 से 12 दिन बाद दोहरावें। छिड़काव विशेष रूप से नीचे की पत्तियों पर करें। आलू के पछेती झुलसा रोग के प्रबंधन हेतु साईजोफेमिड 35.4 प्रतिशत के घोल का 200 ग्राम प्रति हेक्टर की दर से बीमारी के प्रारम्भ होते ही छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव दोहराए।

विषाणु रोग

आलू की फसल में कई प्रकार के विषाणु रोग लगते हैं जिसमें पर्णकुंचन तथा विभिन्न प्रकार के मोजेक मुख्य हैं। पर्णकुंचन रोग से पत्तियां किनारों से मुडती हैं तथा पत्ती की कोमलता नष्ट हो जाती है। मोजेक रोगों के लक्षण फसल की किस्मों, विषाणु की जाति तथा कोमलता के अनुसार बदलते रहते हैं। इनमें मुख्यतः बौनापन, पत्तियों पर गहरे व हल्के पीलापन लिए हरे रंग के चित्तीदार धब्बे प्रमुख हैं। इसके नियंत्रण हेतु बुवाई के लिए कन्द रोग मुक्त होने चाहिये। रोगग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिये। रोग के लक्षण दिखाई देते ही मिथाइल डेमेटोन 25 ईसी मिली./ली. लीटर पानी के घोल का छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करना चाहिये।

कन्द सड़न रोग

इस रोग के प्रकोप से कन्द सड़ जाते हैं। रोगी पौधों में अंकुरण कम होता है। पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा पौधे छोटे रह जाते हैं व बाद में मर जाते है। कन्द मुलायम होकर सड़ जाते हैं। फसल की बुवाई अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह या बाद में करें। लक्षण दिखाई देने पर मोनोक्रोटोफास 36 एसएल का 1 मि. लीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें व 15 दिन के अन्तराल पर इसे दोहरावें।

स्टेम नेक्रोसिस (तना क्षय) रोग : इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को इमिडाक्लोप्रिड 70 डबल्यू.एस. एक ग्राम दवा एक लीटर पानी या इमिडाक्लोप्रिड 48 प्रतिशत एफ.एस. 1.5 मिली दवा 10 लीटर पानी के हिसाब से घोल में बीज को दस मिनट तक डुबोकर उपचार कर बुवाई करें। बीजोपचार नहीं कर पाने पर बुवाई के 21 दिन पश्चात इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 0.006

प्रतिशत (3 मिली दवा /10 लीटर पानी) का छिड़काव करें। इमिडाक्लोप्रिड 70 डबल्यू.एस. का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर बीज उपचार 10 मिनट तक करने के पश्चात इसी घोल का पाँच बार प्रयोग किया जा सकता है। आलू के तना गलन रोग की रोकथाम हेतु बीजोपचार इमिडाक्लोप्रिड 70 डबल्यू.एस. 0.1 प्रतिशत दस मिनट करने के बाद तथा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. बुवाई के 21 दिन बाद तथा बीजोपचार इमिडाक्लोप्रिड 70 डबल्य 0.1 प्रतिशत दस मिनट करने के साथ साथ नीम उत्पाद (अचूक 0.2 प्रतिशत) का प्रयोग करें।

पाले से सुरक्षा

आलू की फसल में पाले से काफी नुकसान होता है। सर्दियों में जिस दिन शाम के समय आसमान साफ हो धीमी–धीमी ठण्डी हवा चल रही हो व तापक्रम कम चल रहा हो तो पाला पड़ने की सम्भावना हो जाती है। इससे बचाव के लिये निम्न उपाय करें :–

1 फसल की सिंचाई करें।

2 खेत की मेड़ के उत्तर–पश्चिम दिशा की तरफ घास फूस जलाकर धूआं करें।

3 व्यापारिक गन्धक के अम्ल का 0.1 प्रतिशत (1 लीटर गंधक का अम्ल 1000 लीटर पानी में मिला कर) फसल पर छिड़काव करें। इससे फसल 10–15 दिन के लिए पाले से सुरक्षित हो जाती है। गंधक का अम्ल छिड़काव करने के लिये टंकी में पानी भर कर अम्ल को लकड़ी की डंडी के सहारे पानी में मिलावें।

आलू की खुदाई

आलू की फसल में जब पत्तियां एवं तने सूखने आरम्भ हो उस समय खुदाई प्रारम्भ करें। वैसे आलू की खुदाई का समय बाजार की मांग व भाव पर भी निर्भर करता है। यदि मांग अच्छी हो, मूल्य ठीक मिलता हो, और आलू के पौधे हरे हो परन्तु आकार सामान्यतः ठीक हो गया हो, तो इन्हें खोद कर बाजार में बेचा जाना चाहिये। सामान्य तौर पर जब पौधे पीले होकर सूखने लगते है उस समय पौधे के तने को पत्तियों सहित काट लेते हैं तथा इसकी 10–15 दिन बाद खुदाई करते हैं। इससे कन्दों में मजबूती आ जाती है और अधिक समय तक रखे जा सकते हैं। अत्यधिक समय तक भूमि में छोड़ा गये आलू गर्मी के कारण सड़ जाते हैं। अतः समय रहते खुदाई करके आलू निकाल लेना चाहिये।

भंडारण एवं विक्रय

आलू को खोदने के बाद उचित प्रकार से ग्रेडिंग करके बाजार में बेचकर अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। यदि शीतग्रह की व्यवस्था नहीं हो तो खुदाई के बाद आलू के विक्रय की व्यवस्था करना आवश्यक होता है क्योंकि गर्मी के कारण खराब होने की सम्भावना रहती हैं। अतः इसे अधिक समय तक नही रखा जा सकता है। आलू को लंबे समय तक रखने के लिए शीत भंडारण में रखा जा सकता है।

खेजड़ी तथा अन्य शुष्क बागवानी फसलों का उत्पादन

दिलीप कुमार समादिया एवं अजय कुमार वर्मा

भाकृअनुप – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)

खेजड़ी मरु–धरा का स्थानीय, बहु–उपयोगी एवं बहु–वर्षीय वृक्ष है तथा इससे पौष्टिक चारा (लूँग) एवं सब्जी उपयोगी फलियाँ (सांगरी) प्राप्त होती है। इस कल्प–वृक्ष का योजनाबद्ध विस्तार एवं संरक्षण करके इसके सह–चर्य में लाभ ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह पौष्टिक खाद्य स्त्रोत के साथ पर्यावरणीय संतुलन, कृषि–योग्य वातावरणीय अनुकूलता, भूमि सुधार व संरक्षण तथा नियमित आय में भी अति–सहयोगी है। संस्थान में विगत 25 वर्षों से इस बहु–उपयोगी वृक्ष पर किए गए अनुसंधानों के परिणामों के फलस्वरूप यहाँ की प्रतिकूल जलवायु, कम वर्षा एवं सीमित संसाधनों में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास तथा नवोन्वेषित फसल उत्पादन प्रणालियाँ व प्रबन्धन तकनीकियाँ अपनाकर कृषि–बागवानी–पशुपालन से इस क्षेत्र में अकाल की स्थिर कु–छाया को सु–काल में परिवर्तित किया जा सकता है।

राजस्थान की शुष्क जलवायु में किसान वर्षा आधारित (बारानी) अथवा सीमित सिंचाई द्वारा परम्परागत प्रणालियों में खेती से आवश्यक उत्पादन एवं उचित लाभ नहीं ले पा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण स्थानीय फसलों व पेड़–पौधों की जलवायु के अनुरूप उन्नत किस्मों का अभाव तथा नवोन्वेषित व संस्तुतित तकनीकों का कृषि में समावेश नहीं करना रहा है। परंतु वर्तमान में किसान प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी में खेजड़ी आधारित व्यवस्थाएँ विकसित कर परम्परागत अथवा गैर–परम्परागत फसलों व पेड़–पौधों का सु–नियोजित प्रारूपों में समावेश कर कम वर्षा, सीमित सिंचाई व संसाधन एवं विषम परिस्थितियों में भी योजनाबद्ध खेती कर सुनिश्चित उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

संस्थान में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी विकसित करने के लिए यहाँ की परम्परागत (मिश्रित या एकल) व गैर–परम्परागत फसलों–पेड़–पौधों की वर्षा–आधारित अथवा सीमित सिंचाई व्यवस्था अपनाकर विविध उत्पादन प्रारूपों में खेती करने के लिए दीर्घ–कालीन अनुसंधान अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों के लिए बीछवाल, बीकानेर में संस्थान के प्रक्षेत्र की 10

खेजड़ी वृक्षों के नीचे अन्य फसलें

हैक्टेयर मरूस्थलीय रेतीली मिट्टी वाला भू–भाग आरक्षित कर खेजड़ी आधारित विविध उत्पादन प्रारूपों को योजना के अनुरूप स्थापित किया गया।

प्रारम्भिक अध्ययनों के विश्लेषणात्मक तथ्यों के आधार पर वर्ष 2007 में स्थापित खेजड़ी पौध–रोपण की विभिन्न दूरियों के 12 उत्पादन प्रारूपों यथा के एम–1 (4 x 4 मीटर), के एम–2 (6 x 6 मीटर), के एम–3 (8 x 8 मीटर), के एम–4 (8 x 4 मीटर), के एम–5 (8 x 4 x 4 मीटर), के एम–6 (16 x 4 मीटर), के एम–7 (16 x 4 x 4 मीटर), के एम–8 (24 x 4 मीटर), के एम–9 (24 x 4 x 4 मीटर), के एम–10 (44 x 4 मीटर), के एम–11 (44 x 4 x 4 मीटर) व के एम–12 (बिखरे पौधे / 24 पौधे/हेक्टेयर) में विविध फसलों–पेड़–पौधों के संयोजनों को प्रणालियों के अनुरूप 10 वर्षों तक अनुसंधान अध्ययन किए गए। वर्ष 2016 तक के अनुसंधान आंकड़ों को संकलित व विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गए तथा इन परिणामों से उन्नत व नवोन्वेषित बागवानी करने के लिए विविध तकनीकी व क्रियाओं की संस्तुति की गई है।

खेजड़ी आधारित अध्ययनों के लिए वर्ष 2006 में रेतीले टिब्बों वाली भूमि को खेत स्वरूप तैयार कर मूल्यांकन किए गए तथा उपरोक्त वर्णित पौध–रोपण प्रारूपों के अनुरूप रेखांकन कर बीजू मूल–वृंत वर्ष 2007 में लगाए गए। वर्षा–आधारित फसल उत्पादन प्रबंधन के इस प्रक्षेत्र में स्व–स्थानिक तकनीकी से खेजड़ी मूल–वृंतों पर किस्म थार शोभा से कलिकायन कर वर्ष 2008 व 2009 में पेबन्दी (कलमी) बनाया गया। कलिकायन का यह कार्य बारम्बार पद्धति से किया गया जिससे निर्धारित प्रक्षेत्र कलमी बगीचे स्वरूप दीर्घकालीन बागवानी अध्ययनों के लिए वर्ष 2009 में स्थापित हुआ।

इस प्रकार वर्ष 2007 से खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र में पौध–रोपण प्रारूपों के वृक्षों, स्थानीय पेड़–पौधों, झाड़ियों, घास व ऋतु फसलों पर वानस्पतिक वृद्धि के लक्षण तथा उत्पाद उपज के लगातार अध्ययन किए गए।

खेजड़ी एवं स्थानीय बहु–वर्षीय पेड़–पौधे का स्व–स्थानिक बगीचा बारम्बार पद्धति से मूल–वृंत रोपण/कलिकायन कर दो वर्ष में प्रक्षेत्र बागवानी आधारित खेती के लिए विकसित हो जाता है। शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकसित करने के प्रथम वर्ष से ही खरीफ ऋतु की फसलें जिनमें ग्वार, मोठ, काचरी, काकड़िया, मतीरा, टिंडा, चंवला, तूम्बा, सेवण, धामण, भरूट से सफलतापूर्वक उत्पादन लिया गया है तथा इन फसलों की निरन्तर खेती की जा सकती है।

वर्षा–आधारित प्रक्षेत्र में प्रारूप के अनुरूप खेजड़ी मूल–वृंत रोपण, स्व–स्थानिक कलिकायन एवं विकसित पेबन्दी वृक्षों की वैज्ञानिक तकनीकी से प्रतिवर्ष कटाई–छंगाई कर वानस्पतिक वृद्धि तथा फलन के अध्ययनों के आंकड़े लगातार 10 वर्षों तक संकलित किए गए। खेजड़ी किस्म थार शोभा के पेबन्दी वृक्षों पर वार्षिक वानस्पतिक वृद्धि के अध्ययनों से यह सुनिश्चित हुआ है कि पौध स्थापना के तीन–चार वर्ष आयु से सांगरी व लूंग उत्पाद लिया जा सकता हैं। प्रारूपों में लगाए गए वृक्ष छः–सात वर्ष आयु से व्यावसायिक उत्पादन प्रणालियों के लिए तैयार हो जाते हैं तथा 4 x 4 मीटर प्रारूप के एकल अथवा जोड़े में स्थापित वृक्ष प्रक्षेत्र में बगीचा स्वरूप आकृति ले लेते हैं।

खेजड़ी के 12 पौध–रोपण प्रारूप उपचारों में किस्म थार शोभा के इस अवस्था के कलमी वृक्षों पर अध्ययन से वानस्पतिक वृद्धि एवं कुल जैव–उत्पाद (सांगरी, लूंग व छड़ियाँ) में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। वर्ष 2015 से 2017 के औसत आधार पर किस्म थार शोभा के छः–सात वर्ष आयु से 6.58 किलोग्राम सांगरी व 8.15 किलोग्राम लूंग प्रति पौधा प्राप्त हुई है तथा कलमी वृक्षों से सर्वाधिक जैव–उपज खेजड़ी पौध–रोपण प्रारूप संख्या के एम–1, के एम–7, के एम–9 व के एम–11 में रही है।

संस्थान में शुष्क क्षेत्र की स्थानीय सब्जियों व फसलों पर दीर्घकालीन अनुसंधान के निष्कर्षों से विकसित उन्नत एवं नवोन्वेषित तकनीकियाँ अपनाकर काचरी व ग्वारफली को खेजड़ी के विभिन्न पौध–रोपण प्रारूपों के साथ वर्षा–आधारित तथा सीमित सिंचाई से खेती के लिए विस्तृत अध्ययन किए गए। खेजड़ी प्रक्षेत्रों की स्थापना के प्रारंभिक तीन–पांच वर्ष तक पौध–रोपण के मध्य की भूमि को ग्वार की एकल अथवा मिश्रित अंतरःशस्य फसल के उपयोग में लिया गया। ततपश्चात् प्रक्षेत्र के प्रारूपों में संस्थान द्वारा संस्तुतित तकनीकियाँ व क्रियाएँ अपनाकर काचरी एवं ग्वारफली फसल उत्पादन के अध्ययन किए

गए। इस तरह वर्षा–आधारित अध्ययनरत प्रक्षेत्रों में समेकित प्रबंधन एवं फसल उत्पादन से काचरी किस्म ए एच के–119 से ताजा फल 56.58 तथा ग्वारफली किस्म थार भादवी से ताजा फली 54.34 क्विंटल/हेक्टेयर औसत उपज वर्ष 2014 से 2017 में प्राप्त हुई है।

खेजड़ी आधारित अध्ययनों में अधिकतम दूरी वाले प्रारूपों में एकल व जोड़े (4 x 4 मीटर) से पौध–रोपण तथा 16 से 44 मीटर भू–भाग की पट्टिकाओं को खेत स्वरूप तैयार किए गए तथा वहाँ पेड़–पौधों व फसलों का सहजता से उत्पादन किया गया। अधिकतम दूरी के के एम–7 से के एम–12 प्रारूपों में बहुवर्षीय फल–वृक्ष नमूनों के लिए झरबेर व केर का 4 x 4 मीटर पद्धति से पौध–रोपण किया गया जबकि चारे के लिए सेवण, धामण व भरूट घासों पर उत्पादन अध्ययन किए गए।

शुष्क क्षेत्र की चयनित सब्जी फसलों यथा काचरी (42–113), काकड़िया (85–222), मतीरा (92–275), टिंडा (48–103), लौकी (117–268), तुरई (68–135), ग्वारफली (45–138), चंवलाफली (45–88), सेमफली (62–127), पालक (118–212), पान–मैथी (92–165), बैंगन (113–242), टमाटर (128–235), हरी–मिर्च (45–132) इत्यादि को खेजड़ी प्रारूप के एम–9, के एम–11 एव ।के एम–12 में वैज्ञानिक तकनीकी से समावेश एवं उन्नत क्रियाएँ अपनाने से उपज (क्विंटल/हेक्टेयर) के सार्थक परिणाम मिले हैं। इसी के साथ इन सब्जी फसलों के उत्पादन पर प्रक्षेत्र सुरक्षा, प्रबंधन एवं जल–बचत खेती के तरीकों (क्यारी, नाली, कुड, बूँद–बूँद व फव्वारा) का विशेष प्रभाव रहा है।

खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्रों में अनुकूल कृषि वातावरण तैयार करने के लिए स्थानीय पेड़–पौधे व झाड़ियाँ यथा खेजड़ी, लसोड़ा, केर, कुमट, रोहिड़ा, बोरड़ी, झरबेर, पीलू, फोग, खींप, हिंगोट, बुई, सनिया जैसी बीजू वनस्पतिओं का चुनाव किया गया। इन स्थानीय वनस्पतिओं का संरक्षण एवं बढ़ावा देने तथा वर्षा आधारित बागवानी अथवा जैव–उत्पाद की अति–उपयोगिता को ध्यान में रखकर प्रक्षेत्र/खेत के चारों दिशाओं की चार मीटर चौड़ाई की पट्टिकाओं पर इनका समावेश व व्यवस्थित पद्धति से स्थापित कर दीर्घ–कालीन अध्ययन किए गए। इन पेड़–पौधों पर व्यवस्थित अध्ययन के लिए फसल सुरक्षा, कटाई–छंगाई एवं वर्षा–जल प्रबंधन पर विशेष ध्यान रखा गया जिससे इनकी वानस्पतिक वृद्धि पर जैविक व अजैविक कारकों का विपरीत प्रभाव नहीं हो सके तथा इनसे जैव–उत्पाद के नियमित आंकड़ों का संकलन किया जा सके।

संस्थान में खेजड़ी आधारित स्थानीय पेड़–पौधों की बागवानी पर किए गए सतत् अनुसंधान अध्ययनों से यह सुनिश्चित हुआ है कि नवोन्वेषित पौध–रोपण प्रारूप संरचनाएँ व अन्तरःशस्य क्रियाएँ अपनाकर विकसित झरबेर, केर, लसोड़ा, कुमट व फोग के बीजू बगीचे स्थापना के 6–9 वर्ष आयु से व्यावसायिक जैव–उपज लेने योग्य हो जाते हैं। परन्तु वर्षा–आधारित प्रक्षेत्र में इन पेड़–पौधों के बगीचों को पालतू/जंगली पशुओं से होने वाले नुकसान से बचाव तथा मई–जून की तपिश में जब वातावरण में 45–50 व भूमि की सतह का 58–65 डिग्री सेल्सियस तक तापमान हो जाता है तब इनमें एक–दो जीवनदायी सिंचाई कर सुरक्षात्मक फसल उत्पादन प्रबंधन की अनिवार्यता मानी गई है।

प्रक्षेत्र के किनारों पर 4 व 4 x 4 मीटर जोड़े की विधि से विकसित खेजड़ी के बीजू पौधे 6–7 वर्षीय आयु पर पेड़–नुमा आकृति लेते हैं तथा इस अवस्था पर यह वृक्ष 4.65–5.16 मीटर ऊंचाई एवं 4.24–4.58 x 4.88–4.96 मीटर फैलाव के होते है। सुव्यवस्थित, वर्षा–आधारित एवं सुरक्षात्मक तकनीकी से रखे 30–40 प्रतिशत पेड़ों में इस आयु पर फूल व फलियाँ लगना प्रारंभ हुई हैं। वैज्ञानिक तकनीकियाँ अपनाकर विकसित यह बीजू वृक्ष 8–9 वर्ष आयु से व्यावसायिक उत्पादन योग्य हुए तथा एक पौधे से ताजा सांगरी 2.25–3.54 एवं लूंग 5.46–6.18 किलोग्राम/वर्ष उत्पाद प्राप्त हुआ है।

शुष्क बागवानी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्थाएँ विकसित करने के लिए खेजड़ी रोपण के विभिन्न प्रारूपों में इसके पेबन्दी (कलमी) वृक्षों के वानस्पतिक वृद्धि व उपज के लक्षणों पर लगातार 10 वर्षों तक प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकियाँ अपनाकर अनुसंधान अध्ययन किए गए। वर्षा–आधारित प्रक्षेत्र के विविध प्रारूपों में खेजड़ी के पेबन्दी पौधे 4–5 वर्ष की आयु पर अच्छी आकृति के बन गए तथा इसका मुख्य आधार वैज्ञानिक तकनीकी से पौध संरचना, कटाई–छंगाई एवं जानवरों से बचाव के सुरक्षात्मक कार्य रहे हैं। इस अवस्था के वृक्षों से प्रारंभिक सांगरी व लूंग उत्पाद भी लिया गया है।

खेजड़ी बगीचों से व्यावसायिक उत्पादन 5–6 वर्ष आयु से लेना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है। इस अवस्था पर पेबन्दी पौधोंमें आवश्यक आकृति बन जाती है तथा इनकी जून महीने के दूसरे पखवाड़े में कटाई–छंगाई करने से वृक्षों में चक्रीय वानस्पतिक वृद्धि होती है एवं प्रतिवर्ष सांगरी व लूंग का अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ है। सुरक्षित व व्यवस्थित प्रबंधन से रखे इस आयु के पेबन्दी पौधे 3.46–4.62 मीटर ऊंचाई एवं 3.38–4.34 x 3.37–5.31

मीटर फैलाव के होते हैं तथा एक वृक्ष से ताजा सांगरी 5.34–6.88 एवं लूंग 6.23–8.24 किलोग्राम/वर्ष उत्पाद प्राप्त हुआ है।

खेजड़ी प्रारूपों में झरबेर के 4 x 4 मीटर पद्धति से रोपित बीजू पौधे स्थापना के 4–5 वर्ष आयु पर अच्छी आकृति के बन जाते हैं एवं इनकी वानस्पतिक वृद्धि झाड़ीनुमा होती है तथा इस अवस्था पर कटाई–छंगाई क्रियाएँ अपनाकर प्रारंभिक उत्पादन लिया गया। इस आयु की झाड़ियाँ 3.52–4.05 मीटर ऊंचाई एवं 2.76–3.53 x 2.68–3.57 मीटर फैलाव लिए होती है। खेजड़ी आधारित झरबेर प्रक्षेत्र में झाड़ियों से व्यावसायिक जैव–उत्पाद 6–7 वर्ष आयु से लिया गया तथा एक पौधे से फल 1.85–2.56 एवं पत्ती–चारा 3.18–3.82 किलोग्राम/वर्ष उपज प्राप्त हुई है।

खेजड़ी प्रारूपों में केर के 4 x 4 मीटर पद्धति से रोपित बीजू पौधे स्थापना के 6–7 वर्ष आयु पर झाड़ीनुमा आकृति लेते हैं तथा यह अच्छी वानस्पतिक वृद्धि लिए दिखाई देते हैं। इस अवस्था की झाड़ियाँ 1.78–2. 85 मीटर ऊंचाई एवं 1.62–1.74 x 1.74–1.83 मीटर फैलाव लिए होती है तथा 30–40 प्रतिशत पौधों में फूल भी खिलना प्रारंभ हुए हैं। सुरक्षित, व्यवस्थित एवं वर्षा आधारित विकसित प्रक्षेत्र में केर के बीजू पौधे 9–10 वर्ष आयु से व्यावसायिक फल उत्पादन योग्य हुए तत्पश्चात् प्रतिवर्ष एक पौधे से 1.78–2.54 किलोग्राम सब्जी उपयोगी गुणवत्ता के विपणन योग्य फल उपज प्राप्त हुई है।

खेजड़ी प्रक्षेत्र के किनारों पर पंक्तिनुमा 4 x 4 मीटर दूरी से रोपित लसोड़ा के बीजू पौधे सहजता से स्थापित हो जाते हैं तथा इनमें शीघ्रता से वानस्पतिक बढ़ोत्तरी होती है। सुरक्षित, व्यवस्थित एवं वर्षा आधारित प्रक्षेत्र में 4–5 वर्ष आयु पर लसोड़ा के बीजू वृक्ष अच्छी आकृति लेते हैं तथा 30–40 प्रतिशत पौधों में फलन भी प्रारंभ हो

जाती है। इस आयु के बीजू वृक्ष 4.43–5.54 मीटर ऊंचाई एवं 6.14–7.11 x 6.18–6.86 मीटर फैलाव लिए होते हैं। वैज्ञानिक तकनीकियाँ अपनाकर प्रबंधित 6–7 वर्षीय आयु के बीजू लसोड़ा पौधों में व्यावसायिक उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है तथा एक वृक्ष से 24.5–38.7 किलोग्राम ताजा, कच्चे व सब्जी/अचार उपयोगी फल–उपज प्राप्त हुई है। अप्रैल–मई महीने में जब फल मटर–दानों जैसे होते हैं, इसी समय वृक्षों में एक या दो सिंचाई करने से विपणन योग्य फल–उपज में बढ़ोतरी पाई गई है।

इसी प्रकार प्रक्षेत्र के किनारों पर लगाए गए अन्य स्थानीय बीजू पौधों व झाड़ियों जिनमें रोहिड़ा, कुमट, बोरड़ी, झरबेर, पीलू, फोग, खींप में वर्षा–आधारित रख–रखाव, कृषि–क्रियाएँ एवं कटाई–छंगाई तकनीकियाँ अपनाने से इन वनस्पतियों में आवश्यक वानस्पतिक बढ़ोत्तरी हुई है तथा कुछ प्रजातियों में 5–6 वर्ष आयु पर फूल व फलन भी प्रारंभ हो जाते हैं। इस अवस्था पर रोहिड़ा के पौधे 2.56–3.14 मीटर ऊंचाई व 2.14–3.21 x 2.26–3.11 मीटर फैलाव लेकर अच्छी आकृति लेना प्रारंभ करते हैं एवं मुख्य तना 22.13–27.24 सेन्टीमीटर घेराव का होता है तथा लगभग 50 प्रतिशत पौधों में फूल भी खिलना प्रारंभ हो जाते हैं।

व्यवस्थित प्रबंधन तकनीकियाँ अपनाकर विकसित फोग की झाड़ियाँ 6–7 वर्ष आयु पर पौधनुमा आकृति लेती हैं। इस अवस्था के पौधे 2.28–2.87 मीटर ऊंचाई एवं 1.89–2.71 x 2.09–2.72 मीटर फैलाव लिए होते हैं। वर्षा–आधारित फोग झाड़ियों से 8–9 वर्ष आयु से व्यावसायिक चारा व फोगला उत्पादन प्रारंभ हो जाता है तथा एक पौधे से हरा 4.28–5.25 अथवा सूखा 2.85–3.16 किलोग्राम/वर्ष चारा प्राप्त होता है।

वैज्ञानिक तकनीकियों से प्रबंधित फोग के पौधों में मार्च–अप्रैल महीने की नई वानस्पतिक फुटान के

साथ–साथ पुष्प–कलियाँ खिलना प्रारंभ होती हैं तथा पूर्णविकसित इन कलियों का 'फोगला' के नाम से जाना जाता है। गुणकारी, ताजा अथवा सूखे फोगलों को दही के साथ रायता बनाकर सब्जी स्वरूप उपयोग में लिया जाता है। पौधों से अच्छी गुणवत्ता की फोगला–उपज लेने के लिए पूर्णविकसित पुष्प–कलिकाओं के पुष्प–गुच्छ खिलना प्रारंभ होने से पहले ही तुड़ाई करना आवश्यक है तथा प्रतिवर्ष एक झाड़ी से 0.556–0.895 किलोग्राम ताजा फोगला प्राप्त हुआ है।

कुमट के बीजू पौधे 7–8 वर्ष आयु पर पेड़नुमा आकृति लेते हैं। व्यवस्थित व सुरक्षित रखे इन वृक्षों की 9–10 वर्ष आयु से व्यावसायिक फली एवं बीज उत्पादन प्रारंभ होता है तथा एक पौधे से 2.26–4.15 किलोग्राम बीज उपज प्रतिवर्ष प्राप्त हुई है। प्रक्षेत्र के किनारों पर स्वतः पनपी खींप की झाड़ियाँ 4–5 वर्ष आयु से अच्छी आकृति लेती हैं। व्यवस्थित व सुरक्षित रखी इन झाड़ियों की 6–7 वर्षीय अवस्था से विपणन योग्य फली–तुड़ाई प्रारंभ होती है। प्रतिवर्ष एक पौधे से सब्जी उपयोगी कच्ची फलियाँ 0.65–0.92 किलोग्राम ताजा 'खींपोली' होती है।

खेजड़ी पौध–रोपण प्रारूप के एम–7 से के एम–12 में अन्तरःशस्य अध्ययनों के निष्कर्षों से स्थानीय फसलों यथा सेवण, धामण, भरूट व ग्वार का इन प्रणालियों में भरपूर ताजा व सूखा चारा उत्पादन हुआ है। वर्षा–आधारित प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकियाँ अपनाकर खेजड़ी पौध–रोपण प्रारूप के एम–7 व के एम–9 में बहुवर्षीय पेड़–पौधे यथा झरबेर व केर के साथ इन चारा फसलों का मिश्रित उत्पादन सर्वाधिक लाभप्रद रहा है। वर्ष 2013 से 2015 के संकलित आंकड़ों के अध्ययनों से इन खेजड़ी प्रारूपों में औसतन ताजा व सूखा चारा उपज की दर क्रमशः सेवण (278.15 व 140.62), धामण (134.37 व 70.65), भरूट (92.53 व 36.87) एवं ग्वार (303.12 व 84.37) क्विंटल/हेक्टेयर रही है।

इसी प्रकार वर्षा–आधारित प्रक्षेत्र में नवोन्वेषित क्रियाएँ अपनाकर पौध–रोपण प्रारूप के एम–7 व के एम–9 में स्थापित खेजड़ी एवं झरबेर से विपणन योग्य लूंग व पत्ती चारा का अधिकतम उत्पादन हुआ है। चूंकि इन प्रारूपों में प्रति इकाई पौधों की संख्या प्रजातियों की स्थापना के अनुरूप निर्धारित हुई है, अतः यहाँ लूंग व पत्ती चारा उपज की दर क्रमशः खेजड़ी 17.11 व 13.69 तथा झरबेर 10.11 व 11.35 क्विंटल/हेक्टेयर रही है।

मरुक्षेत्र की जलवायु को आधार बनाकर विकसित किए गए प्रक्षेत्र में खेजड़ी पौध–रोपण प्रारूपों में एकीकृत अन्तरःशस्य प्रबंधन तकनीकियाँ/क्रियाएं अपनाकर वर्ष 2012 से 2017 तक फसलों से संकलित आंकड़ों से जैव–उत्पाद की अर्जित धनराशि व श्रम–व्यय का आंकलन किया गया। इन अध्ययनों में जहाँ खेजड़ी प्रारूप के एम –12 में परम्परागत प्रणाली से व्यवस्थित फसल उत्पादन कर रूपए 23000–42000 हेक्टेयर/वर्ष कुल आय प्राप्त हुई है। इसकी तुलना में नवोन्वेषित प्रणालियों के एम–1, के एम–3, के एम–7, के एम–9 व के एम–11 में चयनित फसलों, उन्नत प्रजातियों एवं तकनीकों का समावेश कर रूपया 75,000–2,25,000 हेक्टेयर/वर्ष कुल आय हुई है।

प्रक्षेत्र प्रबंधन की वर्षा–आधारित/सीमित सिंचाई में खेती की इस योजना में एक हेक्टेयर फसल क्षेत्र उत्पादन पर रूपया 16000–32000 प्रति वर्ष व्यय हुआ है तथा इस व्यय में 60–80 प्रतिशत राशि में घरेलू मानव–श्रम, पशुधन एवं संसाधनों का योगदान है। बागवानी आधारित इन प्रणालियों में वृक्षों के विकसित होने की आयु 8–10 वर्ष होती है जिससे किसान की आय में स्थिरता, बढ़ोतरी एवं दुगुना होने का आकलन हुआ है।

खेजड़ी प्रक्षेत्र विकास एवं प्रबंधन के इन अध्ययनों से यह निश्चित हुआ है कि खेत में स्थापित बहु–वर्षीय पेड़–पौधों व फसलों को जैविक एवं अजैविक कारकों से होने वाले नुकसान से सुरक्षात्मक बचाव करना पहली आवश्यकता रही है जिससे इनकी नियमित वानस्पतिक वृद्धि पर विपरीत प्रभाव नहीं हो तथा इनसे उचित जैव–उत्पाद लिया जा सके। इसी प्रकार प्रक्षेत्र में वर्षा–जल संग्रहण व नमी संरक्षण, पेड़–पौधों की व्यवस्थित कटाई–छंगाई एवं फल–सब्जी उत्पाद की सुरक्षा व समय पर तुड़ाई जैसे प्रमुख कार्यों को व्यवस्थित अपनाकर फसलों से अधिकतम उपज एवं लाभ लिया गया है।

अतः बागवानी आधारित प्रक्षेत्र अध्ययनों से यह सुनिश्चित हुआ है कि शुष्क जलवायु में खेजड़ी पौध–रोपण प्रारूपों में उत्पादन की विविध व्यवस्थाएँ अपनाकर सीमित वर्षा अथवा सिंचाई से चयनित पेड़–पौधों व फसलों से अधिक उत्पादन के साथ–साथ घरेलू श्रम व संसाधनों का भी भरपूर उपयोग होता है। संस्थान द्वारा विकसित स्थानीय खेती की इस एकीकृत व वैज्ञानिक योजना को अपनाने से किसानों की आय में निरन्तर वृद्धि के साथ यह स्व–रोजगार का एक उपक्रम भी बन जाता है।

शुष्क क्षेत्र में चिकनी तोरई की फसल उत्पादन तकनीक

अजय कुमार वर्मा एवं डी.के. समादिया
भाकृअनुप.—केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

चिकनी तोरई एक महत्वपूर्ण कद्दूवर्गीय सब्जी है और इसकी खेती व्यावसायिक पैमाने पर की जाती है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, झारखंड, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली आदि प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। इसके फल आकार में बेलनाकार होते हैं और फल की बाहरी त्वचा चिकनी हरी होती है। फल में सफेद गूदा होता है जो रेशेदार होता है। इसके अपरिपक्व फलों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है जो विटामिन ए और सी के अच्छे स्रोत भी माने जाते हैं। धारीदार तोरई और चिकनी तोरई दोनों ही जीनस लुफा से संबंधित हैं। जीनस नाम 'लूफ्हा' शब्द से लिया गया था जिसका इस्तेमाल स्नान स्पंज, स्क्रबर पैड, डोरमैट, तकिए, गद्दे, बर्तन की सफाई आदि के रूप में किया जाता है। परिपक्व सूखे फलों में उपस्थित फाइबर (रेशा) का उपयोग स्नान स्पंज के रूप में किया जाता है। तोरई में विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य व औषधीय गुण भी हैं। चूंकि कच्चे व कोमल फल आसानी से पचने योग्य और स्वादिष्ट होते हैं, इसलिए यह उन लोगों के लिए अच्छी मानी जाती है जो मलेरिया और अन्य मौसमी बुखार से पीड़ित हैं। यह एक उत्कृष्ट रक्त शोधक एवं प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाने का कार्य करती है इसके अतिरिक्त मधुमेह नियंत्रण और वजन घटाने में भी सहायता करती है।

उन्नत किस्में

पूसा चिकनी, पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा, आजाद तोरई–1, आजाद तोरई–2, पंजाब काली तोरई–9, राजेंद्र नेनुआ–1, पी.एस.जी.–9, फूले प्रजक्ता आदि। इसके साथ ही केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा विकसित थार तपिश किस्म शुष्क क्षेत्र के लिये अत्यधिक उपयुक्त है।

थार तपिश : यह किस्म शुष्क कृषि–जलवायु के तहत उच्च फल उपज क्षमता और बहु–तनाव सहनशीलता के लिए उत्कृष्ट है। यह किचन गार्डनिंग के लिए भी उपयुक्त है। यह किस्म बरसात और गर्मी दोनों मौसम में उत्पादन हेतु उपयुक्त है। यह प्रति पौध 1.18–1.42 किग्रा फल उपज देने की क्षमता रखती है और प्रति हेक्टेयर 142–155 क्विंटल पैदावार ली जा सकती है।

खेत की तैयारी

मानसून आगमन की सूचना के साथ ही जून महीने में भूमि को तैयार कर गहरी जुताई कर लेवें तथा गोबर या भेड़–बकरी की मींगनी खाद मिलाकर अंतिम सप्ताह में एक बार पुनः जुताई करें, तत्पश्चात पाटा लगाकर खेत खेत को फसल बुवाई के लिये तैयार रखें। दीमक व भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिये नीम की खली अथवा कीटनाशी पाउडर 25 किग्रा/ हेक्टेयर का भुरकाव पाटा लगाने से पहले करना चहिये। ग्रीष्मकालीन बुवाई के लिये खेतों को दिसंबर के अंत तक जुताई करके खाली छोड़ देना चाहिये जिससे कि सर्दी की वर्षा (मावठ) का पानी खेत में ही संग्रहीत हो सके। खेत को जुताई पश्चात पाटा लगाकर तैयार रखना चहिये इस तरह तैयार खेतों में तोरई को कुड, नाली या बूंद–बूंद विधि अपनाकर

सस्थान द्वारा विकसित किस्म 'थार तपिश'

उत्पादन करना लाभप्रद रहता है।

मरुस्थलीय रेतीली मिट्टी वाले खेतों में सब्जी उत्पादन के लिये नियंत्रित परंतु लगातार खाद व उर्वरकों का प्रयोग करना अनिवार्य है तथा यह मृदा की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है। खेतों में अच्छी जीवांश के लिये गोबर (200–250 क्विंटल/हेक्टेयर) या 5–6 ट्रैक्टर– ट्राली भेड़–बकरी की मींगनी खाद प्रतिवर्ष देवे। तोरई की व्यवस्थित खेती के लिये रासायनिक उर्वरकों में 80 किग्रा. नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फॉस्फोरस व 40 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना आवश्यक है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई से पहले खेत की तैयारी के समय दें। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को युरिया के रूप में दो भागो में बाँटकर फसल बुवाई के 30 व 45 दिनों बाद (फल जमाव के समय) देना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। बूंद–बूंद प्रणाली में यूरिया का उपयोग 4–6 भागो में विभक्त कर 10–12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई के साथ करना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है।

फसल बुवाई व सिंचाई तकनीक

ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई फरवरी से मार्च तक अवश्य कर देनी चाहिये। इसी तरह, वर्षा कालीन फसल की बुवाई जून से जुलाई तक की जा सकती है, जब भी अच्छी वर्षा का दौर हो। उन्नत तकनीक से फसल बुवाई हेतु 2.0 किग्रा./हेक्टेयर बीज पर्याप्त होता है। प्रायः तोरई की बुवाई कतारों में थाले, क्यारियों, नलियों अथवा गहरे कुडों में की जाती है। शुष्क जलवायु में वैज्ञानिक ढंग से व्यवसायिक खेती हेतु कतारों में नाली अथवा कुड विधि सर्वोत्तम पायी गयी है। इसकी बुवाई हेतु 2.0 मी. (कतार–कतार) x 50 से.मी. (पौध–पौध) की दूरी पर्याप्त रहती है। बुवाई से पहले, बीज को 6 घंटों के लिए पानी में डुबा कर रखें एवं जो बीज पानी में गये हों उन्हीं को बाहर निकाल कर गीली टाट में बाँधकर बुवाई हेतु ले जाये। इस क्रिया से बीजों में अंकुरण शीघ्र एवं जमाव अच्छा रहता है। कवकनाशी जैसे थायरम या बाविस्टिन (2 ग्रा./किग्रा. बीज) के साथ बीज उपचार भी करना चाहिए। प्रत्येक बुवाई स्थल पर, 2–3 बीज बोए जाते हैं। अच्छे अंकुरण के बाद और जब पौधे 8–10 सेंटीमीटर की ऊंचाई के हो जाते हैं या 18–21 दिन बाद, प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधों को रखते हुए अन्य पौधों को हटा देना चाहिये। बुआई से पहले मिट्टी में पर्याप्त नमी जरूरी है।

वर्षा ऋतु में वर्षा के अंतराल व फसल की आयु को ध्यान में रखकर नियमित सिंचाई करें। शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में यदि वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली फसल में निश्चित अंतराल पर उचित वर्षा होती रहे तो अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। समय पर वर्षा न हो या वर्षा अंतराल अधिक हो तो आवश्यकता के अनुरूप सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्मकाल में नाली विधि से बोई फसल में 4–5 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। संस्थान में किए गए अनुसंधान कार्यों के आधार पर सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था में नाली एवं बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति बेहतर पायी गई। बूंद–बूंद पद्धति से फसल की बुवाई हेतु 14–16 मिलीमीटर व्यास की एकल पाइप लाइने जिन पर 50–50 से.मी. की दूरी के अंतराल पर चार लीटर प्रति घंटा पानी छोडने वाले इन–लाइन ड्रिपर्स हो, सर्वाधिक उपयुक्त रहे हैं। बूंद–बूंद पद्धति में 2–3 दिन के अंतराल पर 1.5–2.0 घंटे के लिये सिंचाई करनी चाहिये इस तकनीक में न केवल जल की बचत होती है बल्कि उपज भी अधिक प्राप्त होती है।

नवोन्वेषित कृषि क्रियाएँ

वर्षा या सिंचाई पश्चात रेतीली एवं बलुई मिट्टी कठोर परत के रूप मे जम जाती है जिससे बीज अंकुरण एवं

खेत में फसल का सामान्य परिदृश्य

नवोदित पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भिक अवस्था में पौधों के आस–पास निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद रहता है। यह कार्य क्रमशः फसल बुवाई के 18–21, 30–35 एवं 45–50 दिनों बाद करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। निराई–गुड़ाई कर खरपतवार निकालने से जड़ों में वायु संचार अच्छा रहता है जो फसल विकास के लिए लाभदायक होता है।

फल तुड़ाई व उपज

मौसम की स्थिति और किस्म के आधार पर सब्जी के लिए बुवाई के 48–55 दिनों के बाद फसल तैयार हो जाती है। सब्जी हेतु फल की तुड़ाई कच्ची एवं कोमल अवस्था में करें। कम अंतराल पर बार–बार तुड़ाई की जानी चाहिये क्योंकि फलों की तुड़ाई समय पर ना होने पर फल रेशेदार हो जाते हैं जो कि सब्जी उपयोग हेतु उपयुक्त नहीं रहते। फलों को बेल से अलग करने के लिये तेज धार चाकू का प्रयोग करना चाहिये फल खींच कर तोड़ने से पौधे को क्षति पहुंचती है। तुड़ाई के बाद फलों को छायादार स्थान पर रखना चाहिए ताकि फलों से खेत की गर्मी (फिल्ड हीट) दूर हो सके। तत्पश्चात फलों को टाट की गीली बोरी में लपेटकर रखना चाहिये और समय समय पर उनके ऊपर पानी छिड़कते रहना चाहिये इस प्रकार से तोरई फलों को बिना किसी खर्च के 2–3 दिन तक ताजा रखा जा सकता है और बाद में खाने या बाजार में बेचने के किये काम में लिये जा सकते हैं। शीत भंडारों में 5–8 डिग्री सेल्सियस तापमान पर फलों को 20–25 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अच्छी कीमत पाने के लिए विपणन से पहले रेशेदार और अधिक परिपक्व फल एवं कीट व रोग से प्रभावित फलों को दूर करना बेहतर होता है। कम संसाधनों में व्यवस्थित खेती कर 140–155 क्विंटल प्रति हेक्टेयर फल उपज प्राप्त की जा सकती है।

फसल सुरक्षा

कीड़ों एवं बीमारियों के अलावा वातावरण में अचानक परिवर्तन से होने वाली परिस्थितियां भी हैं जो फसल पर प्रतिकूल प्रभाव दालती हैं इसलिये प्रक्षेत्र में ऐसी व्यवस्थायें हों जिससे समय पर सुरक्षित बचाव एवं नियंत्रण किया जा सके। नवांकुर में लाल व एपिलेकना भृंग एवं रस चूसने (पर्ण जीव, चेपा, तेला, सफेद मक्खी व फल मक्खी) वाले कीड़ों के प्रकोप की आशंका रहती है जिसके लिये एक किग्रा. कीटनाशी को 10 किग्रा. राख के मिश्रण को तात की थैली में भरकर प्रातःकाल पौधों पर भुरकाव करना चाहिये। फल मक्खी के नियंत्रण हेतु खेत की निराई करके प्यूपा को नष्ट कर दें साथ ही प्रभावित फलों को इकट्ठा करें और गर्म पानी या कीटनाशक घोल में डुबोकर नष्ट करें। पौधे पर संक्रमित फल न रखें। लाइट ट्रैप (प्रकाश प्रपंच) का उपयोग करें। पत्तियों की निचली सतह पर मोटी बूंदों के रूप में 20 लीटर पानी में 200 ग्राम गुड़ या चीनी और 10 मिलीलीटर इंडाक्सीकार्ब युक्त दवा मिश्रण के घोल का छिड़काव करें। तोरई में समेकित कीट नियंत्रण के लिये बुवाई पश्चात के 18–21, 30–35 एवं 40–50 दिनों के क्रम में स्पिनोसैड (0.5 मिली. प्रति लीटर पानी), मिथाइल डिमेटान (1.5 मिली. प्रति लीटर पानी) एवं स्पिनोसैड (0.5 मिली. प्रति लीटर पानी) दवा के घोल का छिड़काव करना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है।

बीजोत्पादन

बीज उत्पादन में पृथक्करण दूरी एवं अवांछित पौधों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बीज शुद्धता बनाए रखने के लिए प्रमाणित बीज की पृथक्करण दूरी 500 मीटर पर्याप्त रहती है। साथ ही फसल में तीन बार फसल का निरीक्षण कर अवांछित पौधों को निकाल दें पहली बार वानस्पतिक वृद्धि, फसल में फूल आने की अवस्था में, फल जमाव तथा प्रथम फल तुड़ाई के समय पौधे तथा फल के गुणों के आधार पर अवांछित पौधों को निकाल दें। बीज की फसल के लिए फल बुवाई के 80 दिनों पश्चात परिपक्व हो जाते हैं। नियमित अंतराल पर पकी फलों की तुड़ाई करके बीज को अलग कर लिया जाता है इसके बाद उन्हे पर्याप्त रूप से सुखाकर रोगनाशक तथा कीटनाशक से उपचारित कर एक ठंडे एवं सूखी जगह पर संग्रहित किया जाता है। प्रति पौध 90–150 ग्राम बीज की पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

“ जन जन की भाषा है हिन्दी ”

बागवानी फसलों के लिए केंचुआ खाद का उपयोगः सतत् विकास के लिए एक दृष्टिकोण

राहुल कुमार*[1], आर. के. गुप्ता[1], सोनिया सिंह[2], एकता[1], पूजा[1]
[1]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार,
[2]बागवानी विभाग, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल, (हरियाणा)
*ई–मेल : rahulrohila01@gmail-com

रासायनिक आधारित उर्वरक, शाकनाशी और कीटनाशक के अंधाधुंध उपयोग से, फसलों की उच्च उपज वाली किस्मों को अपनाने, सिंचाई क्षमता के अधिक से अधिक दोहन आदि जैसी प्रौद्योगिकियों को अपनाने से हरित क्रांति प्राप्त हुई है। सत्तर के दशक के दौरान पौधों में उपज और गुणवत्ता बढ़ाने में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम जैसे रासायनिक उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यद्यपि, इन उच्च ऊर्जा आदानों के लगातार उपयोग से अंधाधुंध उत्पादन प्राप्त हुआ है, लेकिन यह भी एक स्थापित तथ्य है कि फसलों के लिए अकार्बनिक उर्वरक के उपयोग के कारण, फसलों में अवशिष्ट प्रभाव देखा गया है जो कि मानव के स्वास्थ्य और पर्यावरण के बिगड़ने का कारण बनता है। हाल के वर्षों में असंतुलित तरीके से रासायनिक (अजैविक) उर्वरकों के उपयोग से कई समस्याओं जैसे कि मृदा स्वास्थ्य, बीज प्रजनन क्षमता में कमी, कई पोषक तत्वों की कमी और सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों आदि का नुकसान हुआ है। लेकिन जैविक खाद के मामले में ऐसी समस्या उत्पन्न नहीं होती है और दूसरी ओर यह मिट्टी की उत्पादकता और फसल को भी बढ़ाता है। दुनिया के दो सबसे बड़े और सबसे जरूरी मुद्दे, जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा का समाधान करने में जैविक कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में जहां एक तरफ जैविक कचरे के जमा होने से प्रदूषण दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी ओर जैविक खाद की भी भारी कमी है। इसलिए दूसरी 'हरित क्रांति' के लिए वैश्विक आंदोलन को खाद, विशेष रूप से केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्टिंग) पर जोर देना चाहिए। केंचुआ खाद पारंपरिक खाद पर 50–100: और रासायनिक उर्वरकों पर 30–40 प्रतिशत से विकास को बढ़ावा देता है।

सतत कृषि का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों के दीर्घकालिक रखरखाव और पर्यावरण पर न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव के साथ कृषि उत्पादकता है। यह कम से कम बाहरी आदानों के साथ इष्टतम फसल उत्पादन पर जोर देता है। यह व्यावसायिक आदानों (उर्वरकों और कीटनाशकों) पर निर्भरता को कम करता है और उन्हें आंतरिक संसाधनों के साथ प्रतिस्थापित करता है।

केंचुआ खाद

विशेष प्रजाति के केंचुए (आइसीनिया फोटिडा, यूडिलस यूजिनी) समृद्ध खनिज मिट्टी व जैविक अवशेषों (बायोडिग्रेडेबल सामग्री) को निगलकर अपने पाचन नली से गुजारते हैं जिससे वह छोटे महीन खाद में परिवर्तित होते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटे–छोटे कास्टिंग (केंचुआ मलमूत्र) के रूप में निकालते हैं, यही केंचुआ खाद है। केंचुआ खाद में महत्वपूर्ण पोषक तत्व, एक बड़ी आबादी में लाभकारी सूक्ष्मजीव और जैविक रूप से सक्रिय चयापचयों (मेटाबोलाइट्स), विशेष रूप से जिबरेलिन, साइटोकिन्स, ऑक्सिन हार्मोन और समूह बी विटामिन होते हैं। कृषि में केंचुआ खाद के महत्वपूर्ण उपयोग के कारण इसे जैविक सोना कहा जाता है। केंचुआ खाद

आइसीनिया फोटिडा और खाद

में मोटे दानेदार सामग्री जैसे काला–भूरा धूसर (ह्यूमस) होता है, जिसमें विद्युत आवेशित कण होते हैं जो मिट्टी में उपलब्ध पादप पोषक तत्वों के बेहतर सोखने के लिए होता है। केंचुआ खाद कार्बनिक पोषक तत्वों को धीरे–धीरे और लगातार प्रणाली में छोड़ता है और पौधे को इन पोषक तत्वों को अवशोषित करने में सक्षम बनाता है, जो बेहतर पर्यावरण के रखरखाव और टिकाऊ कृषि में मदद करता है।

अधिकांश प्रयोगों ने पुष्टि की है कि केंचुआ खाद पौधों के विकास पर लाभकारी प्रभाव डालते हैं। केंचुआ खाद, मिट्टी के योजक के रूप में या ग्रीनहाउस में पौधा मीडिया के घटकों के रूप में उपयोग किया जाता है, बीज के अंकुरण में सुधार करता है, अंकुर वृद्धि और विकास को बढ़ाता है, और समग्र पौधे की उत्पादकता में वृद्धि करता है। केंचुआ खाद में रासायनिक कारकों का मृदा–जनित कवक पर कोई प्रत्यक्ष अवरोधक प्रभाव नहीं है लेकिन केंचुआ खाद में मौजूद जीवाणु और कवक, फ्यूसैरियम ऑक्सीस्पोरम कवक, गोल कृमि के लिए विरोधी है।

पौधों की पोषक संरचना पर केंचुआ खाद का योगदान

एक अच्छी फसल का उत्पादन करने के लिए, मिट्टी में उपलब्ध स्थूल (मैक्रो) और सूक्ष्म पोषक इष्टतम मात्रा में होना चाहिए। यह पुष्टि की गई है कि केंचुआ खाद में फसल के अधिकतम विकास के लिए मिट्टी में स्थूल और सूक्ष्म पोषक दोनों की आपूर्ति करने की क्षमता रखता है। केंचुआ खाद ने गाजर सहित फलों और सब्जियों की एक विस्तृत श्रृंखला में कैरोटीन (पीला वर्णक) की एकाग्रता में वृद्धि की है। यह भी बताया गया कि टमाटर के पौधों की पत्तियों की बड़ी हुई नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम पोषक तत्त्व भी केंचुआ खाद से निकाले गए तरल के उपयोग के कारण ही है। उर्वरकों के अकेले उपयोग की तुलना में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम उर्वरकों के साथ केंचुआ खाद 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग की गई तो मटर की पैदावार अधिक हुई है। अन्य उपचारों की तुलना में समृद्ध केंचुआ खाद के साथ उपचार से लोबिया, मिट्टी से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम प्राप्त करने में बहुत सक्षम है। एक अन्य अध्ययन में, यह बताया गया कि केंचुआ खाद को मिट्टी में मिलाने से लाल क्लोवर (*ट्राइफोलियम प्रेटेंस*) के तना ऊतक में खनिज तत्त्व फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज, तांबा और जस्ता में वृद्धि हुई है।

प्रकाश संश्लेषण और क्लोरोफिल उत्पादन पर केंचुआ खाद का प्रभाव

फसलों की पैदावार और फलों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ–साथ पत्तियों में बढ़े हुए क्लोरोफिल का श्रेय केंचुआ खाद के माध्यम से आसानी से उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के सुधार को दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त केंचुआ खाद, पिस्ता के पत्तों की क्लोरोफिल सामग्री, साथ ही प्रकाश संश्लेषण की दर में काफी सुधार करता है। केंचुआ खाद के उपयोग के कारण लाल मिर्च (*कैप्सिकम एनम*) में प्रकाश संश्लेषक रंजक और पत्ती गैस विनिमय में वृद्धि हुई है।

पौधे के विकास पर केंचुआ खाद के संभावित प्रभाव

केंचुआ खाद सब्जियों, फूलों और फलों की फसलों सहित विभिन्न क्षेत्र की फसलों की वृद्धि और उपज में सुधार करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। सब्जी और सजावटी पौधों की एक विस्तृत श्रृंखला से संबंधित एक अध्ययन में, नियंत्रण की तुलना में केंचुआ खाद से अंकुरण बेहतर दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए, केंचुआ खाद के उपयोग ने नियंत्रण (84 प्रतिशत) की तुलना में मूंग बीन में उच्च अंकुरण (93 प्रतिशत) की वृद्धि दी है। यह भी देखा गया है कि केंचुआ खाद (10 टन प्रति हेक्टेयर) के विभिन्न स्तरों के परिणामस्वरूप गुलदाउदी फूलों के ताजे वजन, फूलों की संख्या प्रति पौधा (26), फूल व्यास

केंचुआ खाद उपचारित गुलाब

केंचुआ खाद उपचारित पत्तागोभी

(6 सेमी) और उपज (0.5 टन प्रति हेक्टेयर) में वृद्धि हुई है। किसानों के खेतों में केंचुआ खाद (5 टन प्रति हेक्टेयर की दर) के उपयोग से टमाटर की उपज 5.8 टन प्रति हेक्टेयर है जबकि नियंत्रण में 3.5 टन प्रति हेक्टेयर ही है।

एक प्रयोग में केंचुआ को विभिन्न सामग्रियों जिसमें (मशरूम मीडिया अपशिष्ट, गोबर खाद, और सब्जी अपशिष्ट का मिश्रण (खाद–1), मशरूम मीडिया अपशिष्ट, गोबर खाद और पत्ता कूड़े का मिश्रण (खाद–2), मशरूम मीडिया अपशिष्ट, गाय गोबर, सब्जी अपशिष्ट और पत्ता कूड़े (खाद–3) का उपयोग करके केंचुआ खाद बनाई गई है। इन तीन प्रकार के केंचुआ खाद से गोभी में चीनी (कार्बोहाइड्रेट) और विटामिन–सी की मात्रा में क्रमशः औसतन 12 प्रतिशत और 57 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। भंडारण हानि (प्रारंभिक द्रव्यमान का प्रतिशत) ने कमरे के तापमान पर (25 डिग्री सेल्सियस) में 7 दिनों के भंडारण के उपचार के तहत औसत 23 प्रतिशत की कमी दिखाई और ठंडे तापमान (5 डिग्री सेल्सियस) में 14 दिनों के भंडारण के उपचार के तहत औसत 8 प्रतिशत की कमी दिखाई, जबकि तुलना में अकार्बनिक उपचार के साथ क्रमशः 85 प्रतिशत और 18 प्रतिशत हानि हुई है। अधिकांश उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि जैविक फसलों में क्षय प्रक्रिया धीमी है। परिणाम बताते हैं कि केंचुआ खाद के आवेदन से गोभी की उपज और गुणवत्ता बढ़ सकती है। एक अन्य प्रयोग में, कुल मृदा उपचार की तुलना में केंचुआ खाद के उपचार विशेष रूप से 4:7 (केंचुआ खाद:मृदा) से पत्ता गोभी में पोषक तत्वों जैसेकि घुलनशील चीनी, घुलनशील प्रोटीन, विटामिन–सी, कुल फिनोल और कुल फ्लेवोनोइड्स की सामग्री की मात्रा में क्रमशः 62, 18, 200, 25 और 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

छः टन प्रति हेक्टेयर की खुराक पर सूक्ष्म पौधे (मैक्रोफाइट) आधारित केंचुआ खाद से बैंगन के अंकुरण में (22.56+ 2.5 प्रतिशत), प्रति पौधे फल की संख्या (3.55+ 0.07), फल का वजन (73+ 5.0 ग्राम), प्रति पौधा उपज (1.48+ 0.05 किग्रा) और विपणन योग्य फल (28.66+ 3.0 प्रतिशत) में काफी वृद्धि हुई जब नियंत्रण के साथ तुलना की जाती है। अध्ययन से पता चलता है कि स्थायी बैंगन उत्पादन (सतत विकास) के लिए पोषक तत्वों के संभावित स्रोत के रूप में मैक्रोफाइट–आधारित केंचुआ खाद बहुत फायदेमंद है। एक सब्सट्रेट (सामग्री) के रूप में केंचुआ खाद का उपयोग लहसुन में बल्ब बनने और बल्ब के विकास में मदद करता है। गांठ बनने की अवधि, कुल घुलनशील कार्बोहाइड्रेट के समान होती है और बाद में गैर–संरचनात्मक कार्बोहाइड्रेट के वितरण परिवर्तन विशेष रूप से फ्रुक्टेन (स्कोरोडोज) के चयापचय के समान होती है। केंचुआ खाद उपचार से स्कोरोडोज के संचय में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक उपज और क्लोव (गांठ) की गुणवत्ता बढ़ती है। केंचुआ खाद के उपयोग से बल्ब की तीक्ष्णता और घुलनशील ठोस पदार्थों में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

भिन्डी (*हिबिस्कस एस्कुलेंटस*) की सबसे अधिक उपज केंचुआ खाद उपचार और उसके बाद यूरिया में पाई गई है तथा नियंत्रण में सबसे कम पाई गई। भिन्डी की उपज के तुलनात्मक आंकड़ों से पता चलता है कि केंचुआ खाद के कारण सब्जियों की कुल संख्या 15 है, कुल वजन 185 ग्राम है, औसत वजन 10.3 ग्राम है, कुल लंबाई 184.7 सेमी, औसत लंबाई 12.31 सेमी, कटाई की संख्या 3 है और सब्जियों का आत्म जीवन 18 है, जबकि नियंत्रण में क्रमशः 4, 28 ग्राम, 7 ग्राम, 42.9 सेमी, 10.72 सेमी, 2 और 8 है। इस से पता चलता है कि केंचुआ खाद भिन्डी के विकास के लिए आदर्श मिट्टी प्रदान करता है।

यद्यपि केंचुआ खाद पौधे के विकास में उल्लेखनीय रूप से सुधार करने के लिए दिखाया गया है, उच्च सांद्रता में केंचुआ खाद के उपयोग से खाद में उपलब्ध घुलनशील लवण पौधे की वृद्धि में बाधित हो सकते है। इसलिए केंचुआ खाद को पौधे की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए मध्यम सांद्रता पर लागू किया जाना चाहिए। सेमफली (फ्रेंच बौना बीन) के अध्ययन में यह पाया गया कि लीचिंग के कारण, उच्च विद्युत चालकता से संबंधित केंचुआ खाद के नकारात्मक प्रभाव में कमी आई और इस सामग्री का निरंतर उपयोग संभव हो सकता है। केंचुआ खाद लीचेट और वर्मीवाश का उपयोग टिकाऊ

सेम की खेती के लिए जैविक उर्वरक के रूप में किया जा सकता है। वर्मीवाश के साथ उपचारित सेम पौधों में सबसे लंबे पौधे, सबसे लंबे फली, प्रति पौधे की फली की संख्या, पार्श्व शाखाओं की संख्या, और फली की संख्या बढ़ती है, लेकिन उच्चतम सूखा वजन और सबसे लंबी अन्तरगाँठ (इंटर्नोड) केंचुआ खाद लीचेट के कारण पाया गया।

इन अध्ययनों और प्रयोगों से पता चलता है कि केंचुआ खाद बागवानी फसलों की बेहतर पैदावार और मिट्टी के पर्यावरण के रखरखाव के लिए अधिक अनुकूल है तथा यह आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से उपयुक्त है। इसलिए हम कह सकते हैं कि फसलों के लिए सतत विकास के लिए केंचुआ खाद सर्वोत्तम है।

औषधीय गुणों से भरपूर ग्वारपाठा

ग्वारपाठा को संस्कृत में धृतकुमारी, अंग्रेजी में एलोवीरा के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं/बोलियों में घीकुंवर, क्वारगंदल, आदि नामों से जाना जाता है। ग्वारपाठा तना रहित पौधा होता है जो कम पानी में सरलता से उगाया जा सकता है। इसका प्रयोग सब्जी व अचार बनाने में किया जाता है। इसके औषधीय गुणों को देखते हुए आयुर्वेद में इसे बहुतायत में प्रयोग किया जाता है। त्वचा रोगों में इसकी क्रीम लाभदायक होती है। यह पेट के रोगों में बहुत असरदार औषधी मानी जाती है। इसके अलावा सौन्दर्य प्रसाधन में इसका प्रयोग सर्वविदित हैं वायुविकार, कैंसर, आंत संक्रमण, योन रोग, कब्ज, गठिया आदि अनेकों रोगों में यह रामबाण औषधी के रुप में प्रयोग किया जाता है। इसके गूदे से कई औषधीय महत्व के व्यंजन भी बनाए जाते हैं।

शुष्क क्षेत्रों में पौध प्रवर्धन तकनीक

दीपक कुमार सरोलिया, विजय राकेश रेड्डी एव रामकेश मीनां
भाकृअनुप – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

प्रवर्धन में वानस्पतिक विधि का विशेष महत्व है क्योंकि बीज द्वारा तैयार पौधों के गुण मातृ पौधों के गुणों से भिन्न होते है। जबकि वानस्पतिक विधि से तैयार पौधों के गुण पैतृक पौधों के गुणों के समान होते हैं।

इसके अतिरिक्त इस विधि से तैयार पौधे अपेक्षाकृत कम समय में ही फलत में आ जाते हैं। कुछ वृक्षों में बीज नहीं पाये जाते हैं जिससे प्रसारण वानस्पतिक विधि द्वारा ही संभव है जैसे केला, अंगूर तथा अनानास। बौने किस्म के पौधे अथवा रोग सहन करने के लिए उचित मूलवृत पर वानस्पतिक विधि द्वारा पौधे तैयार किये जा सकते हैं। क्योंकि मूलवृंत का प्रभाव उसके ऊपर रोपित पौधों पर पड़ता है। इस विधि का प्रयोग करके देशी एवं कम गुण वाले पौधों को अन्य किस्म के पौधों में बदला जा सकता है जैसे आम के देशी पौधों को टॉपवर्क्रिंग करके नई निकली शाखाओं पर वीनियर कलम करके वांछित किस्म के पौधों में बदला जा सकता है।

वानस्पतिक प्रसारण विधियों में कलम तथा गूटी का विशेष महत्व है। अधिकांश पौधों का प्रसारण इन्ही विधियों द्वारा किया जाता है।

1. कृंतन या कलम

तना कलम में पौधों की 9–12 माह पुरानी शाखा से 15 – 20 सें. मी. लंबाई की जिसमें 3–4 अविकसित कलियां हों, काटकर तैयार की जाती है। तैयार कलम इंडोल ब्यूटाइरिक अम्ल से उपचारित कर 2/3 भाग को जमीन के भीतर गाड़ दिया जाता है तथा 1/3 भाग ऊपर रहता है जिसमें कम से कम दो कलियां होनी चाहिए। अच्छी सफलता पाने के लिए पेंसिल की मोटाई की कलम होनी चाहिए। कलम बनाते समय ध्यान रखना चाहिए की नीचे वाले कटे भाग के ठीक ऊपर एक आँख हो। कलम का ऊपर का भाग तिरछा तथा नीचे का सीधा तथा साफ काटना चाहिए। अंजीर, अंगुर, नाशपती, अलूचा, आड़ू, नींबू, शहतूत तथा अनार का प्रसारण इस विधि द्वारा आसानी से किया जा सकता है। परंतु पर्णपाती फल जैसे अंगूर, आड़ू तथा नाशपती आदि की कलमें दिसम्बर–जनवरी में ही लगानी चाहिए जबकि वे फल वृक्ष अपनी पत्तियां गिराकर सुसुप्तावस्था में आ जाते हैं।

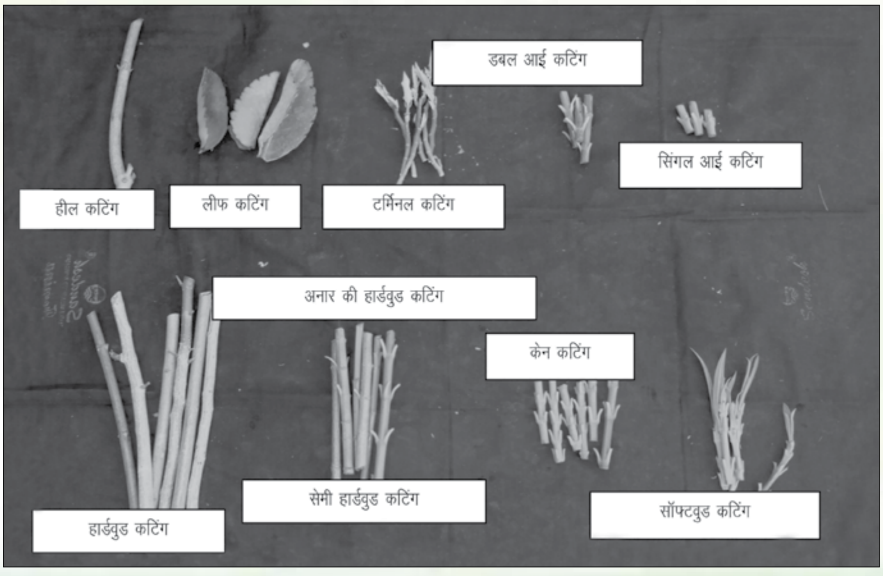

2. कलम बांधना (ग्राफिंटग)

इस विधि में वृक्ष की शाखा को उसी प्रजाति तथा उसी मोटाई के किसी दूसरे पौधे (मूलवृंत) पर बांध देते है। आम, अमरूद, लोकाट, कमरख, जामुन, चीकू आदि का प्रसारण इस विधि द्वारा किया जाता है। कलम बांधने की बहुत – सी विधियां प्रचलित हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विधि इस प्रकार हैं।

(अ) भेट कलम (इनार्चिंग)

प्रवर्धन की पुरानी तकनीक है जिसमें पॉलिथीन की थैली या मिट्टी के गोले के साथ मूलवृंत को उस वृक्ष के पास ले जाते हैं जिससे शाख लेनी होती है। इसके बाद 15–20 से.मी. ऊंचाई पर मूलवृंत से ऊपर का छिलका अंदर तक 4–5 से.मी. की लंबाई में इस प्रकार काट लेते हैं कि छिलका तथा लकड़ी का कुछ भाग भी कट जाये। ठीक उसी प्रकार शाख को भी काट लेते हैं और दोनों के कटे भाग को मिलाकर बांध देते हैं। लगभग दो माह

बाद जुड़ाव पूर्ण हो जाता है। मूलवृंत का भाग 15 से.मी. जोड़ के ऊपर तथा शाखा को जोड़ के 15 से.मी. नीचे से काट देना चाहिए। 15 दिन पश्चात मूलवृंत को ठीक जोड़ के ऊपर से तथा शाखा को जोड़ से ठीक नीचे से काट देना चाहिए। इस नये पौधे को छाया में लगा देना चाहिए। यह विधि आम, अमरूद, चीकू में मुख्य रूप से अपनाई जाती है।

(ब) वीनियर कलम

इस विधि में 4 से 6 माह की टहनियों को चुन लेते हैं और ऊपर के लगभग 15 से.मी. की सभी पत्तियों को 0.5 से.मी. डंठल रखकर काट देते हैं। इस क्रिया को पत्ती उन्मूलन क्रिया कहते हैं। ऐसा करने से 8–10 दिन के बीच शीर्षस्थ कली बढ़ने की अवस्था में आ जाती हैं। इन टहनियों को 10–15 सें.मी. लंबी काटकर एक से डेढ़ वर्ष पुराने बीज पौधे पर कलम बांधते है। मूलवृंत के तने पर जमीन से लगभग 15 सें.मी. ऊंचाई पर 4 से 5 सें.मी. लंबा कटान मूलवृंत की मोटाई के लगभग एक–तिहाई गहराई का काटते हैं। इसी नाप का कटाव मातृ वाहिनी (शाखा) में भी लगते हैं। इन दोनों सतहों के एक–दूसरे से पूर्ण रूप से सटाकर पोलीथीन की 1.5 से.मी. चौड़ी पट्टी से बांध देते है। लगभग 15 दिनों में मूल टहनी मूलवृंत से जुड़ जाती है और शीर्षस्थ कली फूट कर बढ़ने लगती है। जब 4 से 6 पत्तियां हो जाती हैं तो मूलवृंत के सिरे को 2–3 कट में काट देना चाहिए। मूलवृंत पर मातृ टहनी का जोड़ लगभग दो मास में पूरा हो जाता है। इस विधि द्वारा प्रसारण का सबसे उपर्युक्त समय जून के अंत से जुलाई तक है। वीनियर कलम द्वारा टॉप वर्क्रिंग विधि से पुराने और अवांछित किस्म के पेड़ो का जीर्णोद्धार किया जा सकता है।

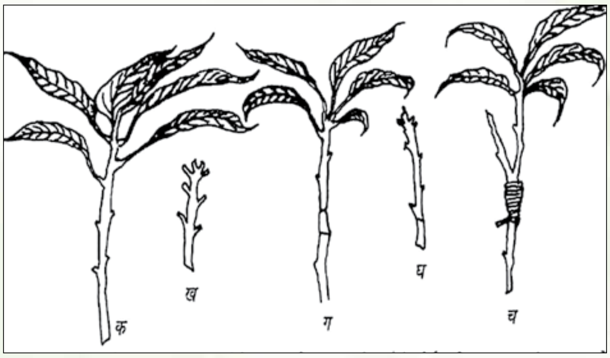

(स) इपिकोटाइल स्टोन ग्राफ्टिंग

इसके द्वारा पौधा, भेट कलम, वीनियर ग्राफ्टिंग एवं कलिकायन की अपेक्षा कम समय व खर्च में तैयार हो जाता है। कलम बनाने के लिए नये जमते हुए 12–15 दिन के अंकुरण पर वेज विधि द्वारा 12 से 15 सें.मी. लंबी अर्ध–परिपक्व सांकुर डाली प्रयोग की जाती है कलम किये गये पौधे 12 से 14 दिन तक ऐसी जगह रखे जाते है जहां हवा में काफी नमी हो। इस विधि द्वारा आम में जुलाई–अगस्त में प्रवर्धन किया जाता है।

(द) चश्मा चढ़ाना (बडिंग) –

इस विधि में आँख को मूलवृत्त पर चढ़ाई जाती है यह कार्य जुलाई–अगस्त माह में पेंसिल आकार के मूलवृत्त पर करना उपयुक्त रहता है। जैसे– यह विधि बेर, आँवला, अखरोट, सीताफल, सन्तरा, किन्नों आदि फल वृक्षों के लिए उपयुक्त है।

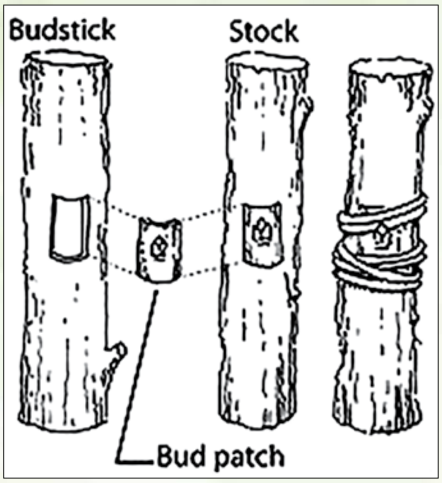

3. गूटी

इस विधि में गूटी की मिट्टी या मॉस घास को शाखा में बांधते है तथा जड़ निकलने के बाद शाखा को काट लेते हैं। इस प्रकार पौधा तैयार हो जाता है। इस विधि द्वारा लीची, अमरूद, नींबू, करौंदा, लीची, अनार तथा जामुन का प्रसारण किया जा सकता है। गूटी बांधने के लिए पेड़ की एक वर्ष पुरानी शाख को चुन लिया जाता है। फिर एक कलिका के नीचे का 2.5–3 सें.मी. लंबाई का गोलाकार छिलका शाखा के चारों तरफ से हटा लिया जाता है। इसके ऊपर गूटी की मिट्टी (चिकनी मिट्टी, सड़े गोबर की खाद तथा सड़ी पत्ती की बारीक खाद का मिश्रण) या मॉस घास रखकर टाट का टुकड़ा या पोलीथीन के टुकड़े से बांध देते हैं। इन्डोल ब्यूटारिक एसिड (आई. बी.ए.) नामक पौध वृद्धि नियामक को लेनोलीन में प्रयोग करके लेयर बनाकर लाभदायक पाया गया है। 1 से 2 माह (वृक्ष की प्रकृति के अनुसार) पर जब जड़े जैसे कटहल, जिनमें जड़ें आसानी से नहीं निकलती हैं 10,000 पी.पी.एम. आई.बी.ए. (10 ग्राम इन्डोल ब्यूटारिक एसिड प्रति कि.ग्रा. लेनोलीन) का प्रयोग लाभप्रद पाया गया है।

लीची का व्यवसायिक प्रसारण गूटी द्वारा ही किया जाता है परंतु गूटी की मिट्टी का प्रयोग करने से निकलने वाली जड़ें, मोटी, शीघ्र टूटने वाली होती हैं। इस प्रकार की जड़ें, पानी व खनिज लवणों का शोषण नहीं कर पाती जिससे पौधे मर जाते हैं। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि गूटी की मिट्टी के स्थान पर मॉस घास और वर्मीकुलाइट के मिश्रण का प्रयोग करने से जड़े पतली निकलती हैं जो कि पानी को आसानी से अवशोषित कर लेती है।

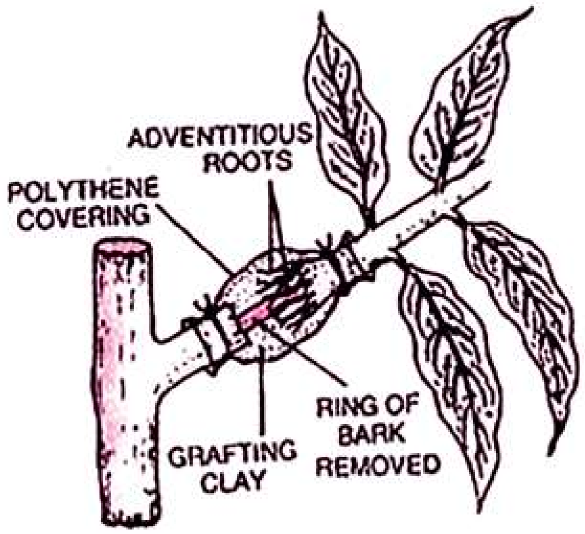

गूटी (एयर लेयरिंग)

बाहर से पॉलीथीन में जड़े दिखाई देती है तब इस लेयर को आधा कट लगाकर छोड़ देते है जिसे 7 दिन बाद मात्र वृक्ष से काटकर अलग कर पॉलीथीन की थैली जिसमें 1:2:1 में रेत, मिट्टी व खाद के मिश्रण से भरी हो उसमें लगा देते हैं। जो नई पत्तियाँ निकलने लगे तब या अगले वर्ष खेत में लगाने योग्य हो जाते हैं।

4. बीज द्वारा

पपीता, जामुन, करोंदा व नींबू आदि फलदार वृक्षों का प्रवर्द्धन बीज द्वारा किया जाता है। बीजों को उपचारित कर मातृक्यारी या पॉलीथीन की थैली में लगाया जाता है।

"हिन्दी अब सारे देश की राष्ट्रभाषा हो गई है। उस भाषा का अध्ययन करने और उसकी उन्नति करने में गर्व का अनुभव होना चाहिए।
राष्ट्रभाषा किसी व्यक्ति या प्रांत की सम्पत्ति नहीं है, इस पर सारे देश का अधिकार है।"

- सरदार बल्लभाई पटेल

शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में स्व-स्थानिक कलिकायन (इन-सीटू) से बेर का प्रवर्धन-एक उपयुक्त तकनीक

राज कुमार, कनक लता, ए. के. राय एवं एस. खजुरिया
भाकृअनुप.–कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल (भाकृअनुप.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान)
गोधरा–बड़ोदा हाइवे, वेजलपूर, गोधरा, जिला– पंचमहल (गुजरात) 389 340

बेर (*झीझीफस मोरीस्याना* एल.) भारत में प्राचीन समय से एक लोकप्रिय फल है। बेर का उद्‌गम स्थल भारत है। भारत और चीन में इसकी खेती प्राचीन काल से बड़े पैमाने पर होती आई है। बेर का फल पोषक तत्वों का खजाना होने के कारण इसे गरीबों का मेंवा व शुष्क क्षेत्र में अच्छा उत्पादन देने के कारण शुष्क क्षेत्र के फलों के राजा की संज्ञा दी गई है। बेर के फल आमतौर पर ताजे खाये जाते हैं। यह मुरब्बा, कैंडी, स्क्वैश और चटनी आदि बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। जंगली किस्मों में विशेष रूप से झड़ बेरी (*झीझीफस नुमुलेरिआ*) के फलों को धूप में सूखाकर बे–मौसम में बेचकर अच्छी आमदनी अर्जित की जा सकती है। बेर के पेड़ पर लाख के कीट का पालन किया जाता है, पत्तियों का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है कटाई से प्राप्त लकड़ी ईंधन के रूप में व औषधीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता है। भारत बेर का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। इसकी खेती के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 49000.00 हेक्टेयर, उत्पादन 481000 मीट्रिक टन व उत्पादकता 9.82 मीट्रिक टन है।

शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्र की विशेषता है कि, गर्मी के महीनों (मई–जून) में अत्यधिक गर्मी पड़ती है। तापमान 44 से 50 डिग्री सेल्सियस तक हो जाता है, वहीं दिसम्बर जनवरी में बहुत अधिक ठंड पड़ती है। तापमान –4 डिग्री सेल्सियस तक चला जाता है। गर्मियों के मौसम में हवा में आर्द्रता बहुत कम (लगभग 30 प्रतिशत) हो जाती है। रेतीले क्षेत्रों में गर्मियों में खासकर जून माह में हवा की गति औसतन11.6 से 27.2 कि.मी. प्रति घंटा होती है। फलस्वरुप मिट्टी का क्षरण एवं रेत के टीलों का निर्माण होने लगता है। ऐसे क्षेत्रों में मृदा की बनावट में रेत की मात्रा अत्यधिक लगभग 60 से 90: तक होती है। सिल्ट, क्ले एवं ह्यूमस की मात्रा बहुत कम होती है। मृदा में जैविक कार्बन सुक्ष्म जीव इत्यादि बहुत कम होते हैं जिसके फलस्वरुप मृदा की जल–धारण क्षमता एवं उर्वराशक्ति बहुत कम एवं पी.एच.मान और लवणता काफी बढ़ जाती है।

हमारे देश में 31.71 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जो कि मुख्य रुप से राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश की सीमा तक में हैं। ऐसे क्षेत्रों में बेर की खेती की अपार संभावनाए हैं। ऐसे विकट वातावरण में अन्य फलों की खेती के बारे में सोचा भी नही जा सकता है वहाँ बेर की खेती वाणिज्यिक फसल के रुप में उभर रही है। बेर के सहिष्णु गुण जिनके कारण प्रतिकूल वातावरण में यह आसानी से फलता फूलता है क्योंकि इसकी जड़ों का बहुत गहराई तक जाना, गर्मियों के दौरान सुसुप्त अवस्था में चले जाना, छाल का रंग भूरा होना, मानसून की बारिश के तुरंत बाद फूल व फल लगने की प्रवृति के कारण शुष्क क्षेत्रों में उगाये जाने वाले अन्य फल वृक्षों की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है।

शुष्क क्षेत्रों में गरीब, आदिवासी, संसाधन रहित किसान ज्यादा होते हैं जिनको अपना जीवन यापन करना बहुत मुश्किल है वहाँ पर नर्सरी से महंगे फल पौधे खरीद कर लगाना व प्रतिकूल मौसम (गर्मी व सर्दी) में उनको बचाना एक बहुत ही मुशिकल कार्य है। स्व–स्थानिक (इन–सिटू) बडिंग इन परिस्थितियों के लिए एक कारगर तकनीक है जिसको अपनाकर किसान बहुत कम खर्च कर आसानी से बेर का बाग लगाकर न केवल आय बढा सकेंगे बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों को रोजगार के साथ–साथ उचित पोषण उपलब्ध करवाने हेतु यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

बेर की प्रजातियाँ

अन्य फल वृक्षों की तरह बेर की भी बहुत सारी प्रजातियां हैं जो कि विभिन अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित की गई हैं जो क्षेत्र विशेष के नाम से प्रख्यात है। बेर की मुख्य प्रजातियां निम्नांकित हैं।

अगेती पकने वाली प्रजातियाँ – इन प्रजातियों के फल दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में पकना शुरू होते

हैं तथा पूरे जनवरी तक उपलब्ध रहते हैं जैसे – थार सेविका, गोला, गोमा कीर्ति, काजरी गोला इत्यादि।

मध्यम पकने वाली प्रजातियाँ – इन प्रजातियों के फल मध्य जनवरी से मध्य फरवरी में पकते हैं। जैसे – सेव, कैथली, छुहारा, दण्डन, सानेर – 5, मुण्डिया, इत्यादि।

पछेती पकने वाली प्रजातियाँ – इन प्रजातियों के फल फरवरी–मार्च में पकते हैं तथा अप्रैल तक उपलब्ध रहते हैं। जैसे – उमरान, काठा, टीकड़ी, इलायची, थार मालती इत्यादि।

फल मक्खी के प्रति प्रतिरोधक प्रजातियाँ – इन प्रजातियों में काठ, टिकड़ी, मेंहरुन, डोडिय, सानोर–1, इत्यादि हैं।

पाउड्री मिलड्यु के प्रति प्रतिरोधक प्रजातियाँ – गोला, सेब, ईलायची, मेंहरुन, सफेद रोहतका, इत्यादि।

भाकृअनुप– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान के प्रक्षेत्र पर 300 से ज्यादा प्रजातियों का संग्रह क्षेत्र जीन बैंक के रुप में किया गया हैं एवं इन पर शोध कार्य चल रहा है।

बेर का प्रवर्धन

पौधों की संख्या बढाना प्रवर्धन कहलाता है। बेर का प्रवर्धन बीज व वानस्पतिक दोनों विधियों से किया जा सकता है। बीज से प्रवर्धन करने से फलन में ज्यादा समय (5–7 वर्ष) लगता हैं। पेड़ की लम्बाई ज्यादा होती हैं जिससे फलों की तुड़ाई करने में मुश्किल होती है, उत्पादन कम व फल निम्न गुणवत्ता वाले होते हैं, जबकि वानस्पतिक विधि से प्रवर्धन करने से फलन में कम समय (2–3 वर्ष) लगता है, पेड़ की लम्बाई कम होती है जिससे फल की तुड़ाई करने में आसानी रहती है, कीट व फफुंदीनाशक दवाईयों के छिड़काव करने व फलों की तुड़ाई करने में आसानी रहती है। ज्यादा उत्पादन व फल उच्च गुणवत्ता वाले होते हैं, अतः वानस्पतिक विधि से प्रवर्धन करना उत्तम होता है। बेर में आँख कलम विधियाँ जैसे पैच, "टी", "आई" "एच" एव "रिंग" विधियों से किया जा सकता है।

स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) – यह तकनीक शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में जहाँ सिंचाई की उचित सुविधा ना हो यानि वर्षा आधारित बागवानी हेतु बहुत ही कारगार है। इस तकनीक में देसी बेर के बीज या पौधों को रेखांकित कर तैयार किये हुए गड्ढे (लम्बाई 1 मीटर x चौड़ाई 1 मीटर x गहराई 1 मीटर) जो कि अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद व लाल मिट्टी बराबर मिलाकर भरे गये हैं उनके बीच में मानसून की पहली बरसात होने के बाद लगा देना चहिये। करीब एक वर्ष बाद तैयार मूलवृन्त को 20–25 सें. मी. छोड़कर काट दिया जाता है तथा उचित प्रजाति की ऑख जो कि अधिक फल, अच्छी गुणवता व कीट व रोगो से कम प्रभावित होती हो, से सांकुर डाली का चुनाव कर, कलिका या आँख निकालकर जून–जुलाई माह में "पैच", "टी" या "आई" बडिंग विधि से कलिकायन कर देते हैं। पंचमहल (गुजरात) के वातावरण में मध्य मई से जब तक बरसात शुरु ना हो तब तक "पैच" बडिंग विधि में सौ प्रतिशत तक सफलता पाई जा सकती है। इसके बाद अवांछित शाखाओं को निकालते रहना चाहिये। इस तकनीक से पौधे तैयार करने से पौधे खरीदने का खर्च बच जाता है, कम पौधे मरते हैं व पौधों में दो वर्ष में फल लगने लगते हैं।

स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) के लाभ

- स्व–स्थानिक विधि से तैयार पौधे मातृ पौधे के समान गुणों वाले होते हैं।
- पौधों का किशोर काल छोटा होता है अतः पौधे फलन में जल्दी आते हैं।
- बडिंग के बाद यदि सांकुर डाली मर जाये तो उसी मूलवृन्त (रूटस्टॉक) पर दुबारा बडिंग किया जा सकता है।
- पौधो की स्थापना के बाद उनको बेहतर किस्म में बदला जा सकता है।
- इस विधि से तैयार पौधों की मृत्यु दर कम रहती है।
- इस विधि से पौधे तैयार करने में खर्च कम लगता है।
- रोग और क्षतिग्रस्त पौधों में सुधार किया जा सकता है।

रोग और कीट प्रतिरोधक पौधों का उत्पादन किया जा सकता है

स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) की हानियां

- कई बार बडिंग के बाद सांकुर डालियों के मर जाने से पूरा बगीचा एक साथ नहीं खड़ा किया जा सकता है।
- बडिंग तकनीक का ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है।
- प्रत्येक किसान के पास उचित प्रजाति की आँखों की उपलब्धता होनी चहिये।

स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) की अवस्थाए

मूलवृन्त तैयार करना आमतौर पर मूलवृन्त (रूट स्टॉक) के लिये देसी प्रकार का बोरड़ी (*जिजिफस रोटंडीफोलिआ*) का उपयोग लिया जाता है। बेर एक पर–परागित फसल है इसलिए, एक समान पौध की स्थापना करना कठिन कार्य है। बेर के बीज के ऊपर कठोर आवरण होने के कारण आसानी से नहीं उगाये जा सकते हैं अतः इसके लिये बीजों को थोडा तोड़कर या एक– दो दिन पानी में भीगोकर या सल्फ्युरिक अम्ल से उपचारित कर अंकुरण प्रतिशत बढाया जा सकता है। अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद, मिटटी व रेती को मिलाकर 20–25 सें. मी. ऊचीं क्यारी (चौड़ाई 1.0 मीटर व लम्बाई 3.0 मीटर) बनाकर बीजों की बुआई कर नियमित रुप से झारे से सिंचाई कर क्यारी में नमी बनाई रखनी चाहिये, बुआई के 40–45 दिन बाद बीज फटने लगता और प्लुमुल निकलने लगता हैं और पौध बनने लगते हैं। जब इन पौधों पर 2 से 4 पत्तियां निकल जायें तब एक – एक बीज को सावधानीपूर्वक उठाकर मूलवृन्त (रूट स्टॉक) तैयार करने के लिये भरी हुई पॉलिथीन की थैलियों में स्थानांतरण कर देना चाहिये जब ये पौधे पेंसिल की मोटाई के हो जायें तब उचित प्रजाति से आँख कलम विधि (पैच बडिंग) करनी चाहिये। बीज की बुआई ऊंची क्यारी में ना करके सीधे 25–25 सें. मी. पर जमीन पर या पोलिथीन की थैलियों में की जा सकती है। नियमित अंतराल पर सिंचाई, निराई– गुड़ाई, खरपतवार निकालते रहना चाहिये।

उचित प्रजाति का चुनाव – बेर की बहुत प्रजातियाँ हैं जो प्रजाति क्षेत्र विशेष में ज्यादा लोकप्रिय हों, अधिक उत्पादन देने वाली, अच्छी गुणवत्ता, कम वृद्धि, रोग व कीड़ों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता हो का चुनाव करना चहिये व उक्त प्रजाति के उचित आँख का स्रोत जैसे किसान के पास या किसी सरकारी अर्ध–सरकारी संस्था के पास चयनित प्रजाति का मातृ पौधा हो जिससे उचित समय पर आँख प्राप्त की जा सके।

पैच बडिंग का उचित समय– बेर में पैच बडिंग करने का उचित समय बरसात का मौसम होता है, क्योंकि इस मौसम में हवा में आर्द्रता प्रतिशत ज्यादा व कम तापमान होने के कारण बडिंग की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। मध्य गुजरात की परिस्थितियों में 15 मई के बाद जबतक बरसात ना हो जाये तब तक का समय कलीकायन के लिये बहुत ही उपयुक्त पाया गया तथा

खेत में तैयार मूलवृंत

खेत में तैयार मूलवृंत

बडिंग किया हुआ पौधा तथा बडिंग करते हुए किसान

90–95 प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है।

पैच बडिंग प्रक्रिया– बेर के तैयार मूलवृन्त (रूट स्टॉक) जो कि पेंसिल मोटाई का हो, उस पर जमीन से 15–20 सें. मी. छोड़कर बडिंग करनी चहिये। पेंच बडिंग में लगभग 2.5–3.0 सें. मी. लम्बाई व 0.75–1.0 सें. मी. चौड़ाई वाली कली चयनित की हुई प्रजाति से निकालकर, उसी आकार का पैच मूलवृन्त से निकालकर चिपका देते हैं और पोलीथिन की पटटी से कली निकलने के स्थान को छोड़कर अच्छी तरह से बांध देना चहिये। बडिंग के उपरांत नई कली के प्रस्फुटित होने के बाद मूलवृन्त से निकलने वाली अन्य फुटानों को समय–समय पर निकालते रहना चहिये जिससे कली की वृद्धि सुचारु रुप से हो सके।

शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में स्व–स्थानिक कलिकायन व नर्सरी में तैयार किये हुए पौधों का तुलनात्मक अध्ययन

शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) व नर्सरी में तैयार किये हुए पौधों का तुलनात्मक अध्ययन का परिणाम तालिका– 1 में दिया गया है।

स्व–स्थानिक कलिकायन व नर्सरी में तैयार किये हुए पौंधों से प्रति हेक्टेयर बाग लगाने का आर्थिक विश्लेषण

स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) व नर्सरी में तैयार किये हुए पौधों से प्रति हैक्टेयर बाग लगाने का आर्थिक विश्लेषण तालिका–2 दिया गया है, के अनुसार स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग) विधि से लगाये गये बाग पर खर्च रू 9410/– व नर्सरी से तैयार पौधे खरीद कर बाग लगाने में रू 20576/– का खर्च आता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शुष्क व अर्ध

शुष्क क्षेत्र में इन सीटु बडिंग विधि, नर्सरी बडिंग से बहुत ही ज्यादा कारगार सिद्ध हुई है।

तालिका 2. स्व–स्थानिक कलिकायन व नर्सरी में तैयार किये हुए पौधों से बाग लगाने का आर्थिक विश्लेषण (प्रति हेक्टेयर)

मापदंड	खर्च	
	स्वस्थाने बडिंग	नर्सरी बडिंग
गडढा खोदना (208 गडडे, 8x6 मी)	4160	4160
गोबर की खाद	3000.00	3000.00
गडढे भरना	500.00	500.00
पौधे 230 (208 + 10 प्रतिशत अधिक) भाव रू. 40/पौधा)	–	9200
पौधे की रोपाई व पानी देने का मजदुरी खर्च	–	1150
देशी बीज व बुवाई	750	–
पोधो की ढुलाई भाड़ा	–	1000
सांकुर डाली	–	350
कलम भाड़ा	–	216
रासायनिक खाद (युरिया 50 + डी. ए. पी. 100 ग्रा. /पौधा)	550	550
कीट व रोग प्रबंधन	450	450
कुल खर्च	9410	20576

तालिका 1. शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र में स्व–स्थानिक कलिकायन व नर्सरी में तैयार किये हुए पौधों का तुलनात्मक अध्ययन

मापदंड	स्व–स्थानिक कलिकायन (इन–सीटू बडिंग)		नर्सरी में तैयार किये हुए पौधे	
	दो माह बाद	एक वर्ष बाद	दो माह बाद	एक वर्ष बाद
कलम की सफलता (प्रतिशत)	90	–	60	–
पौधे की लम्बाई (सें. मी.)	93.25	255.50	52.20	93.30
मूलवृन्त की मोटाई (मि. मी.)	13.30	32.30	4.60	9.40
सांकुर डाली की मोटाई (मि. मी.)	13.00	31.25	4.10	8.10
फलों की संख्या (प्रति पौधा)	–	188.00	–	31.00
उत्पादन प्रति पौधा (किग्रा.)	–	3.10	–	0.52

बुंदेलखण्ड क्षेत्र में बेर वृक्षों का कलिकायन द्वारा पुनरोद्धार- किसानों की सतत आय का एक साधन

जगदीश पाटीदार, लाल चन्द, आनन्द कुमार एवं आशाराम
भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी– 284003 (उ.प्र.)

''शीर्ष कार्य तकनीक में पौधे के अवांछित शीर्ष भाग का किसी उन्नत प्रजाति से कलिकायन द्वारा पुनरोद्धार किया जाता है''

परिचयः बेर शुभक क्षेत्रों में उगाया जाने वाला सूखा अवरोधी फल है, जिसे शुभक एवं अर्द्ध शुभक क्षेत्र मे फलों का राजा कहा जाता है। शुभक क्षेत्रों में आवर्ती सूखे की देशी में बेर की खेती बीमा फसल की तरह कार्य करती है जहाँ एक तरफ यह शुभक क्षेत्रों में वायु से होने वाले मृदा क्षरण जैसी गम्भीर समस्या से संसाधनों को संरक्षित करने में सक्षम है वही पत्तियों की वि ेश संरचना एवं गहराई तक जाने वाली जड़ों के कारण इसके पेड़ बारानी अवस्था वाली शुभक भूमि में सत्त एवं अच्छी उपज देते हैं। यह पेड़ ग्रीष्म ऋतु की प्रतिकूल परिस्थिति आते ही सुषुप्तावस्था मे चला जाता है।

पौष्टिकता से भरपूर बेर विटामीन–सी, ए एवं विटामीन–बी की प्रचुरता वाला एक कम प्रचलित फल है। इस पौधे के फल के अतिरिक्त पेड़ के अन्य भागों का भी आर्थिक महत्व है इसकी पत्तियों मे 5.6ः सुपाच्य क्रूड़ प्रोटीन एवं 49.7ः कुल पाँच पोषक तत्व पाये जाते हैं जो कि इसे पशुओं के लिए एक पौष्टिक चारा भी बनाती है।

बुंदेलखण्ड क्षेत्र में दक्षिण–मध्य उत्तर प्रदेश के सात जिले झाँसी, ललितपुर, जालौन, बांदा, हमीरपुर, महोबा एवं चित्रकूट आते है। यहाँ की वार्षिक वर्षा 700–750 मि. मी. है एवं इसका वितरण भी असमान एवं अनिश्चित होने की वजह से किसान इसका भी भरपूर फायदा नहीं उठा पाते हैं। सामान्यतः यहाँ खरीफ की फसल कभी अतिवृष्टी तो कभी सूखे की वजह से बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। इस क्षेत्र का अधिकतम तापमान बांदा जिले में 43 डिग्री सेन्टीग्रेड तक जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है जो रोजगार और संसाधनों की कमी के चलते गरीबी से जूझ रही है पिछले कुछ वर्षों से गरीबी अपने उच्च स्तर पर है न केवल उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश यहाँ तक की पूरे देश के सबसे गरीब क्षेत्रों में से बुन्देलखण्ड़ एक है। यहाँ हल्की मृदा एवं पथरीली भूमि के कारण क्षेत्र की उत्पादकता बहुत कम है। यहाँ 60 प्रतिशत क्षेत्र खेती योग्य है, जिसका केवल 25 प्रतिशत भू–भाग ही सिंचाई योग्य है यहाँ पर मृदा क्षरण उच्च एवं भूमि की उत्पादकता निम्न स्तर की है।

रबी में यहां मुख्यतः गेहू की फसल बोई जाती है। फरवरी के अंतिम सप्ताह या मार्च के प्रथम सप्ताह में तापक्रम अचानक बढ़ने लगता है जिससे रबी की फसल भी अपनी मौलिक परिपक्वता के पूर्व ही सूख जाती है जिससे उत्पादन खासा प्रभावित होता है इस प्रकार यहाँ के किसानों को रबी फसल का कोई वि ेश फायदा नहीं मिल पाता है।

बुंदेलखण्ड क्षेत्र में बेर के देसी पोधे या झाड़ियाँ खेतों की मेड़ों या बेकार पड़ी भूमि में प्राक्रतिक रूप से बहुतायत में उपलब्ध हैं, जो स्थानीय रूप से मिट्टी, हवा एवं जैविक वातावरण के अनुकूल होते हैं। परन्तु इनसे छोटे एवं निम्न गुणवत्ता के फल प्राप्त होते हैं जिनका उचित बाजार मूल्य नही मिल पाता है इसलिए इस क्षेत्र में बेर की व्यवसायिक खेती का चलन नहीं है। यहाँ प्राकृतिक संसाधन के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध देशी बेर पर कलिकायन द्वारा उन्नत किस्म में बदल कर आय के स्थायी स्त्रोत के रूप में अपनाया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित प्रक्रिया क्रमवार अपना कर कलिकायन कि क्रिया करें।

पौधों का चयन –ः देशी या जंगली बेर पर कलिकायन करने के लिए कम उम्र के पतले पौधों का चयन करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार के पौधों को अप्रैल–मई माह में पहले से काटने की आवश्यकता नहीं पड़ती एवं ऐसे पौधों पर जुलाई–अगस्त माह में सीधे उच्च प्रजाति की कलिका लगाने के पश्चात कलिका से 20 से.मी. ऊँचाई से शेष भाग को काट कर अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार छोटे पौधों का चयन कर अप्रैल–मई में पौधों को काटने में खर्च होने वाली उर्जा एवं व्यय से बचा जा सकता है।

इस प्रकार के छोटे पौधे उपलब्ध न होने पर अधिक उम्र के पौधों की बजाय अपेक्षाकृत कम उम्र के पौधों का चयन अप्रैल के महीनें में कर लेना चाहिए। क्योंकि कम उम्र के पौधों में नए कल्ले निकलने की सम्भावना अधिक रहती है इसके विपरीत अधिक पुराने पेड़ों को काटने के पश्चात कभी–कभी नए कल्ले नहीं निकलते हैं ऐसी स्थिति में पौधे खराब होने या मरने की सम्भावना बढ़ जाती है।

चयनित पौधों की कटाई –: यदि ऐसे पौधे उपलब्ध नहीं हो जिन पर सीधे कलिकायन किया जा सके तो चयनित मोटे पौधों को 15 अप्रैल से 15 मई तक जमीन से लगभग 30 से 50 से.मी. की ऊँचाई से काट देना चाहिये। पौधों को काटने के पश्चात, कटे भाग पर गाय का ताजा गोबर या किसी सम्पर्क फफूंदी नाशक का लेप लगा देना चाहिये पौधों में सड़न ना हो एवं कल्ले जल्दी निकल आये। पौधे को अधिकतम 50 से 200 से.मी. की ऊँचाई से काटा जा सकता है परन्तु पौधों को अधिक ऊँचाई से काटने पर भविष्य में तेज हवा या आंधी तूफान से कल्ले या नई शाखा के ठूंठ से फटकर अलग होने या क्षतिग्रस्त होन की सम्भावना बढ़ जाती है।

बेर का काटा गया देशी पौधा

कल्लों का चयन–: पुराने ठूंठ पर नये निकले कल्लों में से 58 मि.मी. व्यास के 2 से 3 स्वस्थ एवं मज़बूत कल्ले जो एक दूसरे से विपरीत दिशा में हो, उनका चयन करके अन्य कल्लों को हटा देना चाहिये।

उन्नत प्रजाति का चयन–: बनारसी कड़ाका, उमरान, गोला, सेब आदि में से किसी भी उन्नत प्रजाति का चयन किया जा सकता है।

कलिकायन के लिए तैयार नये कल्ले

कलिका ली जाने वाली शाखा का चयन–: निर्धारित गुणों वाली उन्नत प्रजाति का चयन करने के पश्चात मात्र पौधे पर उसकी सक्रिय वृद्धि अवस्था के समय जून–जुलाई में अच्छी फूली एवं परिपक्व कलियों वाली जिसकी कलियां अभी तक खुली नहीं हो ऐसी तरूण शाखा का चयन कलिका एकत्रित करने के लिए करना चाहिए। ऐसी शाखा मातृपौधे पर अतीकर्तन कर प्राप्त की जा सकती है। चयनित शाखा को मातृ पौधे से अलग करने के 8 दिन पूर्व इसकी सम्पूर्ण पत्तियों को हटा देना चाहिये ताकि कलियाँ भोज्य पदार्थ इकट्ठा कर फूल सके। अब चयनित शाखा को उपयोग में लेने के दिन या एक दिन पूर्व मातृपौधे से धार दार यन्त्र की सहायता से अलग कर गीले टाट में लपेट कर हवादार स्थान पर रखना चाहिये ताकि कलिका जीवित बनी रहे। कलिका का चयन हमेशा विश्वसनीय स्थान या नर्सरी से ही करना चाहिये।

कलिकायन–: सामान्य तौर पर बेर में कलिकायन की आई, टी या पेंच बडिंग विधि को अपनाया जाता है। कलिकायन की सफलता की दर पौधे की सक्रिय वृद्धि अवस्था में अत्याधिक रहती है क्योंकि इस समय पौधे में छाल के नीचे रस का प्रवाह अत्यधिक रहता है। जिससे जाइलम से नई शाखा आसानी से निकल सकती है। सामान्यतः 30–40^0 सेल्सियस तापक्रम एवं 50 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता पर कलिकायन अधिक सफल रहता है वहीं 36 प्रतिशत से कम आपेक्षित आद्रता एवं 18–20^0 सेल्सियस से कम तापक्रम पर कलिकायन निष्फल होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जुलाई–अगस्त के महीने में प्रत्येक पौधे पर चयनित शाखाओं में से कम से कम दो शाखाओं पर जो एक दूसरे से विपरीत दिशा में हो उन पर 15–20 सें.मी. की ऊँचाई पर बाहर की तरफ कलिकायन कर वांछित नए पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं। उत्तर–पश्चिम भारत में जुलाई–सितम्बर कलिकायन

स्फूटित कलिका

के लिए आदर्श समय रहता है। कलिकायन के लिए चीरा लगाते समय इस बात का वि ेश ध्यान रखें की पौधे की चमड़ी के अन्दर काठ पर कट न लगे। इसलिए कट हल्के हाथ से ही लगाना चाहिये।

कलिकायन के बाद शीर्ष कर्तन –: कलिकायन के तुरन्त बाद या 1015 दिन बाद जब कलिका स्थापित हो जाये तब कलिका वाले भाग से लगभग 20 से.मी. की ऊँचाई से ऊपरी शाखा को तेज धारदार यंत्र से काट देना चाहिये एवं पौधों को काटने के पश्चात कटे भाग पर गाय का ताजा गोबर या किसी सम्पर्क फफूंदी नाशक का लेप लगा देना चाहिये ताकि पौधों में सड़न ना हो।

कलिकायन के बाद का रखरखाव :

1 कलिकायन के 8–10 दिन बाद जब कलिका स्थापित हो जाए या उसमें प्रस्फुटन होने लगे तब ब्लेड की सहायता से प्लास्टिक की पन्नी को सावधानी पूर्वक हटा देना चाहिये।

2. कलिका के चलने के बाद अन्य शाखाएँ जिन पर कलिकायन नहीं किया गया हो उनको सावधानी पूर्वक तेज सिकेटियर से हटा देना चाहिये एवं लगातार निरीक्षण करते रहना चाहिये कि लगाई गयी कलिका के अलावा अन्य कोई भाग न चलने पाए ताकि नयी शाखा को अधिक से अधिक भोज्य पदार्थ मिल सके एवं वह अच्छी वृद्धि कर सके।

3. प्रारंभ में कलिका के कोमल होने के कारण कीट व्याधियों का प्रकोप होने की आशंका रहती है। अतः इस समय नई कोंपल को कीट व्याधियों से बचाने हेतु विशेष ध्यान देना चाहीए।

4. पौधों में कलिका निकलने के बाद वृद्धि के समय पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति के लिए प्रथम वर्ष जुलाई के अंतिम सप्ताह में 10–15 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद या केंचुआ खाद पौधे के तने से एक फुट की दूरी पर तने के चारों तरफ घेरे में डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिए।

5. दूसरे वर्ष 15–20 किग्रा., तीसरे वर्ष 20–25 किग्रा., चौथे वर्ष 25–30 किग्रा. तथा पांचवें वर्ष से 30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद या केंचुआ खाद प्रति वर्ष जून–जुलाई में पौधे के तने के चारों तरफ घेरे में डालकर मिट्टी मे मिला देना चाहिए।

बेर कलिकायन का कलेन्डर :

क्रम संख्या	गतिविधि	माह
1	पौधों का चुनाव एवं उनकी कटाई	अप्रैल–मई
2	कल्लों का चयन	जुलाई
3	चयनित कल्लों पर कलिकायन	जुलाई–अगस्त

इस प्रकार शीर्ष कार्य के माध्यम से बेर के देशी पेड़ों पर उन्नत प्रजाति का कलिकायन द्वारा पुनरोद्धार करना बुंदेलखण्ड क्षेत्र के कृषकों की सतत् आय का एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

शुष्क बागवानी फसलों में प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन का महत्व

रामकेश मीना, विजय राकेश रेड्डी, दीपक कुमार सरोलिया एवं आर. एस. सिंह
भाकृअनुप– केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

फल एवं सब्जियों में भरपूर मात्रा में विटामिन्स एवं खनिज लवण होते हैं। ये शरीर को विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करने में अमूल्य भूमिका निभाते हैं। फल स्वादिष्ट, सुरक्षावर्धक एवं तृप्तिदायक होते हैं। इनका मजेदार स्वाद, लुभावनी सुगंध एवं आकर्षक रंग हरेक व्यक्ति को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। भारत में फलों का प्रयोग आदिकाल से होता आया है। पौराणिक ग्रन्थों में से महाभारत एवं रामायण में भी विभिन्न प्रकार के फलों का वर्णन मिलता है। जब भगवान श्री रामचन्द्र, सीताफल तथा लक्ष्मण के साथ 14 वर्ष के बनवास गये थे तब वे फलों का ही प्रयोग कर जीवनयापन करते थे। फलियाँ, सब्जियाँ, दाल एवं अनाज ये सभी भोजनीय पदार्थ पौधों से ही प्राप्त होते है। अनाज एवं दाल एक प्रकार के पौधे के ही फल हैं। परन्तु फल के नाम से आमतौर पर प्रचलित भोज्य पदार्थ गुदेदार, रसयुक्त एवं स्वादिष्ट होते हैं। इनका विकास फूलों से होता है। फलों के भीतर कठोर या मुलायम प्रकार के एक बीज होते हैं। अतः फल को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है –

''फल पौधे का वह गूदेदार रसीला एवं मीठा भाग होता है, जिसमें उस पौधे के बीज विकसित होते हैं।'' हाल के वर्षों में हमारे देश में बागवानी फसलों का उत्पादन (306.80 मि.ट.) हुआ है जिसमें फल व सब्जियों का उत्पादन (270 मि.टन) है जो खाद्यान्न उत्पादन से भी अधिक है।

एक अनुमान के मुताबिक देश की बढ़ती हुई आबादी लगभग 135 करोड़ के लिए सन 2020 तक लगभग 80 मिलियन टन फलों की आवश्यकता होगी। बागवानी फसलें परम्परागत फसलों की तुलना में अधिक उपज, आय, पोषणता व आजिविका सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम है। अतः इन फसलों का उत्पादन बढ़ाना नितांत आवश्यक है। इसके साथ ही अधिक उत्पादन होने तथा वे मौसम में उपयोग हेतु प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन भी जरूरी है।

फलों का पोषण मूल्य–

फल का सेवन करने से आहार में खनिज, विटामिन्स, कार्बोहाइड्रेट्स (शक्रा), वसा, रेशा, प्रोटीन, लवण इत्यादि मिलता है जो अच्छे स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक है। फल पौष्टिकता से भरपूर तथा सुपाच्य होते है। इसलिए आहार माना जाता है।

(1) **प्रोटीन** – फलों में प्रोटीन की मात्रा अत्यन्त न्यून होती है। कुछ सूखे फल होते हैं जिनमें अधिक मात्रा में प्रोटीन होता है।

(2) **कार्बोहाड्रेट्स** – फलों में कार्बोज मुख्यतः शक्रा रुप में रहता है। फलों में शक्रा, ग्लूकोज, फ्रूक्टोज एवं सुक्रोज के रुप में रहता है, इसी कारण इसका स्वाद मीठा होता है। फलों में 2–20 प्रतिशत तक शक्रा होता है। इसकी अधिकता एवं कमी से फलों के मिठास में अन्तर आता है। कुछ फलों में पेक्टिन होता है। अमरुद, करौंदा, सेव आदि में पेक्टिन की मात्रा अधिक होती है। अतः इससे जैम, जैली फल उत्पाद बनाया जाता है।

(3) **विटामिन्स** – फल विटामिन्स प्राप्ति के उत्कृष्ट स्त्रोत हैं। ताजे रसीले फलों में विटामिन –'सी' की प्रचुरता होती है। आंवला में सर्वाधिक विटामिन 'सी' 650–900 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम फल गुदा से उपलब्ध होता है। अमरुद, नींबू, मौसम्मी एवं अन्य खट्टे फलों में विटामिन 'सी' उपलब्ध रहता है। परन्तु पकाने पर इनका ह्रास हो जाता है। फलों के छिलकों में विटामिन बी1 एवं बी2 पाया जाता है। पीले फल जैसे पपीता में विटामिन 'ए' के उत्तम स्त्रोत है। फलों का पीला रंग इनमें उपस्थित ''कैरोटीन'' के कारण होता है। खाने के बाद शरीर में जाकर ये विटामिन–'ए' में परिवर्तित हो जाते हैं। फलों का खट्टा स्वाद उनमें उपस्थित अम्लों के कारण होता है। खट्टे फलों में साइट्रिक अम्ल एवं ऑक्जेलिक अम्ल पाये जाते हैं। जैसे–जैसे फल पकता है, इसकी

मात्रा कम होती जाती है तथा शक्करा की मात्रा बढ़ती जाती है। अतः फलों में मिठास आ जाता है। फलों का खट्टापन उनमें उपस्थित साइट्रिक अम्ल एवं ऑक्जेलिक, मैलिक अम्ल की मात्रा की भिन्नता पर निर्भर करती है।

(4) खनिज लवण – फलों मे खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इसमें सोडियम, पोटेशियम, फास्फोरस, लोहा, कैल्शियम आदि खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते हैं। फलों में ऑक्जेलिक अम्ल रहता है, जो खनिज लवण से संयोग कर इनके ऑक्जेलेट बना देता है। ये खनिज लवण युक्त ऑक्जेलेट अघुलनशील होते हैं, जिनका शोषण शरीर में नहीं हो पाता है। अतः ये शरीर में बिना अवशोषित हुए ही बाहर निकल जाते हैं।

(5) रेशा – फलों में कुछ मात्रा में रेशा (फाइबर) भी होता है। इनका भोजनीय मूल कुछ भी नहीं होता है। परन्तु ये पाचन किया में योगदान देते हैं तथा शरीर के उत्तम स्वास्थ्य में सहायक होते हैं। ये कब्ज को दूर करने में सहायक होते हैं। इसीलिए रेशायुक्त फल व सब्जियों का अधिक सेवन करना चाहिए।

(6) अभोजनीय पदार्थ – फलों में पौष्टिक तत्वों के अतिरिक्त कुछ अभोजनीय पदार्थ, जैसे –छिलका, गुठली, बीज आदि होते हैं, जिन्हें नहीं खाया जाता है। विभिन्न फलों में इनकी मात्रा भिन्न–भिन्न होती है। कुछ फलों में 30–40 प्रतिशत तक अभोजनीय पदार्थ होते हैं। फलों के विभिन्न रंग इनमें उपस्थित वर्णकों के कारण होता है। क्लोरोफिल उन्हें हरा रंग प्रदान करता है। एन्थोसाएनिन वर्णक के कारण फलों का रंग लाल, जामुनी व नीला होता है। कैरोटीन के कारण इनका रंग पीला से लेकर गहरा केसरिया होता है।

फलों के छिलके जैसे नींबू, अनार, बीजपत्र, किन्नों, सीताफल का भी उपयोग विभिन्न उत्पाद बनाने में किया जाता है। इनसे पाउडर, पेस्ट, प्राकृतिक रंग, चारा, इत्यादि बनाये जा सकते हैं। कई प्रकार के फलों के बीज से तेल निकलता है जिनका औद्योगिक व आर्थिक महत्व है। जैसे पीलू फल के बीज से तेल सौन्दर्य सामग्री, खजूर फल की गुठली का उपयोग पशु आहार (पोल्ट्रीफीड), फिश फीड के रूप में होता है।

ब्राउनिंग – फलों को छिलकर तथा काटकर यदि थोड़ी देर तक उन्हें खुली हवा में छोड़ दिया जाए तो उनका रंग भूरा (ब्राउन) हो जाता है। ऐसा एन्जाइमेटिक प्रतिक्रिया के कारण होता है। फलों में फीनोलिक पदार्थ जो कि एक प्रकार का रसायन है, का ऑक्सीकरण फिनोल ऑक्सीडेज एन्जाइम की उपस्थिति में होता है जिसके फलस्वरुप फलों का रंग परिवर्तित हो जाता है। शक्कर तथा नींबू का रस इस ऑक्सीकरण प्रतिक्रिया को रोकता है। अतः फलों को काटने के पश्चात् यदि इसमें एक–दो बूंद नींबू का रस निचोड़ दिया जाए तो इनका रंग नही बदलता है।

फलों का स्वाद एवं सुगन्ध– फलों का स्वाद एवं सुगन्ध उनमें पाये जाने वाले किटोन एस्टर्स फिनोलिक यौगिक, शक्करा, अम्ल, एल्डीहाइड्स तथा अनिवार्य वाष्पशील तेल के कारण होता है। उपरोक्त पदार्थो की मात्रा एवं अनुपात में विभिन्नता के कारण फलों के स्वाद एवं सुगन्ध में अन्तर होता है। एक ही वृक्ष के एक ही डाली से प्राप्त फलों के स्वाद एवं सुगन्ध में इन्ही कारणों से अन्तर होता है।

फलों का संग्रहण एवं परिरक्षण –

वर्तमान में फलों का संग्रहण एवं परिरक्षण का प्रचलन काफी बढ़ गया हे। परिरक्षित भोज्य पदार्थ, जैसे – जैम, जैली, मुरब्बा, अचार आदि काफी लोकप्रिय हे। परिरक्षित भोज्य पदार्थो का स्वाद अनूठा, रंग आकर्षक, सुगन्ध मनमोहक एवं तृप्तिदायक होता है। ये आंखों को लुभाने वाली होती है, जिसे देखकर खाने के लिए मन मचल उठता है। आमाशय से आमाशयिक रस का स्त्रावण होने लगता है। ताजे फलों का प्रयोग करना सबसे उत्तम है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि ताजे फल सीमित समय तथा सीमित लोगों तक ही उपलब्ध हो पाते हैं। फल दो चार दिन या एक दो सप्ताह के बाद खराब होने व सड़ने लगते हैं। अतः इनकी पौष्टिकता एवं गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। पेड़ से फलों को तोड़ने के बाद से ही इनमें श्वसन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अतः फल सड़ने लगते हैं। इसलिये श्वसन क्रिया को कम करने हेतु इन्हें कम तापमान पर कोल्ड स्टोरेज में संग्रह (भण्डारण) करके रखना पड़ता है। कम तापमान में फलों की श्वसन क्रिया एवं चयापचय गति कम हो जाती है। अतः फल सड़ने से बच जाते हैं तथा लम्बे समय तक संग्रहित रहते हैं। फलों में कम मात्रा में ऑक्सीजन (2–2.5 प्रतिशत) तथा अधिक मात्रा में कार्बनडाईऑक्साइड (4.5–5.5 प्रतिशत) उपस्थित रहने से भी फलों के सड़ने की क्रिया धीमी एवं मंद हो जाती है तथा फल लम्बे समय तक सुरक्षित रुप से संग्रहित रहते हैं। फलों का जैम, जैली, स्कवैश, मार्मलेड, अचार, शर्बत, स्कवैश आदि रुपों में भी परिरक्षित करके वर्ष भर के लिये रखा जाता है। बच्चों को जैम एवं जैली बहुत अधिक प्रिय लगते हैं। साल भर फलों की प्राप्ति हेतु इनका संग्रहण,

परिरक्षण, संरक्षण एवं परिवहन आवश्यक होता है। परन्तु भारत जैसे विकासशील देश में यह सब सम्भव नहीं है। यहाँ समुचित शीत संग्रहण भण्डारण का अभाव है। समय से परिवहन नहीं हो पाता है। अतः फल एक मौसम में ही सड़ गलकर व्यर्थ हो जाते है। यदि थोड़ा–बहुत संग्रहण एवं परिवहन होता भी है वे केवल कुछ सीमित आय वर्ग के लोगों को ही उपलब्ध हो पाते है। क्योंकि ये काफी महंगे होते हैं। अतः मध्यम आय वर्गीय तथा निम्न आय वर्गीय लोगों की पहुँच से बाहर होते हैं। मौसम के समय फल सस्ते होते है। अतः सामान्य लोगों को मौसम में ही फलों की प्राप्ति हो पाती है। जिसका अच्छे स्वास्थ्य के लिए सेवन करना आवश्यक है।

फलों का उपयोग एवं मूल्य संवर्धन–

(1) फल को यों ही छिलकर या काटकर खाया जाता है। ताजे फलों को प्रयोग करना सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें उपस्थित सभी विटामिन्स एवं खनिज लवणों का उपयोग शरीर में हो जाता है।

(2) **फलों का रस** – फलों से रस निकालकर इसमें नमक, काला नमक, भूना जीरा या शक्कर मिलाकर प्रयोग किया जाता है। यह सुपाच्य, पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है। रोगियों को मौसम्मी, संतरा आदि का रस दिया जाता है।

(3) **सलाद के रुप में** – फलों की सलाद के रुप में भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु छीलकर काटने से इनका रंग भूरा या काला होने लगता है क्योंकि इसके भीतर एन्जाइम की ऑक्सीकरण प्रतिक्रिया होने लगती है। अतः इनके मौलिक रंग के संरक्षण हेतु नींबू का रस या शक्कर का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(4) **फलों को सुखाकर** – फलों को धूप में या कृत्रिम (हाट एयर ओवन या ड्रायर) विधि से सुखाकर इनका प्रयोग किया जाता है, जैसे– किशमिश, अंजीर, खजूर (छुआरा) आदि। सूखे फल को अधिक समय तक रखा जा सकता है।

(5) **सब्जी के रुप में** – कुछ फलों का उपयोग सब्जियों के रुप में भी किया जाता है, जैसे –कच्चा आम, पपीता, केला, अमरुद, कैक्टस आदि।

(6) **जैम, जैली, मार्मलेड, स्कवैश के रुप में** – फलों को दीर्घकाल तक जैम, जैली, मार्मलेड, अचार, स्कवैश, शर्बत आदि रुपों में परिरक्षित करके रखा जाता है। परन्तु इन परिरक्षित भोज्य पदार्थ का उपयोग मात्र 1–5 प्रतिशत लोग ही कर पाते हैं। इसका एक प्रमुख कारण है कि ये काफी महंगे होते हैं। मध्यम वर्गीय लोग भी इसका उपयोग अत्यन्त कम ही करते हैं। मजदूर तथा किसान वर्ग तो इनके उपयोग के बारे में भी सोच नहीं सकते हैं। इसका दूसरा मुख्य कारण है कि जैम, जैली, मुरब्बा आदि व्यावसायिक स्तर पर औद्योगिक संस्थानों में बनाया जाता हे।

(7) **पाउडर रुप में** – फलों को काटकर तथा गूदा को सुखाकर पाउडर रुप में तैयार करके अधिक समय तक संग्रहित किया जाता है। फिर आवश्यकतानुसार इसका उपयोग किया जाता है, जैसे अमचूर, बेर का सूखा फल, पाउडर, बेल का चूर्ण, अनारदाना, आलू बुखारे का पाउडर, सीताफल के गूदे का पाउडर आदि। चूर्ण या पाउडर का प्रयोग अनेक औषधि के रूप में होता है।

शुष्क बागवानी का आर्थिक महत्व– फलों की खेती प्रति ईकाई क्षेत्र से से अच्छी आय प्राप्त होती है तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। फलों का निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। फल एवं सब्जियों के मूल्य संवर्धन करने से अच्छी आय प्राप्त होती है।

आरटीएस

स्क्वैश

बेल पाउडर

मुखवास

संतुलित आहार में फलों का महत्व –

(1) फल तृप्तिदायक एवं सुरक्षावर्धक होते हैं। ये अपने विशिष्ट सुगन्ध, स्वाद, मिठास एवं मनमोहक रंग के कारण सभी को प्रिय लगते हैं। बालक, वृद्ध, प्रौढ़, स्त्री–पुरुष सभी फल खाना इन्हीं गुणों से पसन्द करते हैं। रोग प्रतिरोधक क्षमता, शक्तिवर्धक होने के कारण फलों का सेवन करना आवश्यक होता है।

(2) फल हमारी पाचन क्रिया को उत्तेजित करते है, फलों में उपस्थित अम्लीय रस हमारे पाचन अंगों में पहुँचकर पाचक रसों के उत्पादन में वृद्धि करते है। जैसे – अनानास प्रोटीन का पाचन करने वाले पाचक रसों को उत्तेजित कर प्रोटीन का पाचन बढ़ाता है। परन्तु बहुत अधिक कच्चे अथवा पक्के फल स्वास्थ्य के लिये हानिकर होते है, क्योंकि इनमें सूक्ष्मजीवों का प्रवेश हो जाता है तथा इससे अम्लीयता बढ़ जाती है।

(3) फल में कैल्शियम एवं लौह तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है। अतः अस्थियों, दांतों एवं रक्त के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फल रक्तअल्पता में बचाव करता है। चीकू एवं खजूर का सेवन से प्रचुर मात्रा में लौह प्राप्त होता है।

(4) फलों में रेशा पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहता है, जो आंतों की सफाई एवं स्वच्छता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि रेशों का कैलोरी मूल्य शून्य होता है फिर भी ये उत्तम स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक होते हैं।

(5) फलों में उपस्थित कैरोटीन शरीर में जाकर विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। जो आंखें को रोशनी प्रदान करता है तथा त्वचा को स्वस्थ बनाये रखता है।

(6) फलों में अल्प मात्रा में कार्बोज शक्करा (ग्लूकोज, फ्रुक्टोज एवं सुक्रोज) के रुप में उपस्थित रहता है जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। फल में मुख्यतः फ्रुक्टोज पाया जाता है।

(7) फलों मे विटामिनों की प्रचूर मात्रा होती है। विटामिन शरीर सुरक्षात्मक होते हैं तथा शरीर को विभिन्न रोगों से बचाते हैं।

(8) आंवला, अमरुद, मौसम्मी एवं संतरा में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है जो शरीर में रोग रोधक शक्ति विकसित करता है तथा दांतों, मसूड़ों एवं घावों को भरने में सहायक होता है। मसूड़ों के उत्तम स्वास्थ्य के लिये आहार में विटामिन 'सी' का होना नितान्त आवश्यक है।

(9) फलों में सोडियम, कैल्शियम एवं फास्फोरस के लवण होते हैं जो कार्बनिक अम्ल के रुप में रहते है। शरीर में इन अम्लों को ऑक्सीकरण हो जाता है तथा रक्त में केवल आधारीय अवशेष रह जाते हैं। यह रक्त की क्षारीयता को कम करते हैं। अतः फल रक्त के अम्ल–क्षार के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक होता है। रसीले खट्टे मीठे फलों में ऑक्जेलिक, साइट्रिक एवं मैलिक अम्ल पाये जाते हैं।

फलों के औषधीय महत्व के कारण अनेक रोगों के उपचार में भी प्रयुक्त होता है। इनके अलावा विभिन्न फलों का पूजा–पाठ, धार्मिक अनुष्ठान, व्रत–त्यौहार में भी महत्वपूर्ण स्थान है।

फलों का पाचन एवं अवशोषण – फल अपने आकर्षक रंग, मनमोहक सुगन्ध एवं मजेदार स्वाद के कारण सभी को अच्छा लगता है। यह सुरक्षावर्धक होता है, अर्थात् यह भूख बढ़ाता है। यह आमाशय में पाचक रसों के स्त्रावण को बढ़ाता है, ये आंत्र नाल में पाचन के लिये उपयुक्त एक प्रकार के जीवाणु को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा पचाने में सहायक होता है। फलों का अवशोषण शीघ्रता से छोटी आंत की दीवारों से हो जाता है। फलों में रेशेदार पदार्थ होते हैं जो आंतों में सफाई एवं स्वच्छता में अमूल्य भूमिका निभाते हैं। रेशे आंतों की क्रमानुकुंचन गति को बढ़ाते है जिसमें भोजन आगे की ओर खिसकता है। रेशों में जल अवशोषित करने की अद्भूत एवं विलक्षण क्षमता होती है। इस कारण यह मलाशय में अपच भोजन में आकर मिल जाता है तथा मल को पतला बनाता है। अतः मल विसर्जन की प्रक्रिया सुगमता से सम्पन्न हो जाती है। रेशे कब्ज को दूर करने में सहयोग देते है। परन्तु अत्यधिक कच्चा अथवा पका फल का सुगमता से पाचन नहीं हो पाता है। ये पाचन तंत्र में कई गड़बड़ियों पैदा करते हैं। जिनसे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है।

इस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में आहार के रूप में फलों का विशेष महत्व है। इनका उत्पादन मांग के अनुरूप होने से भी को संतुलित मात्रा में फल उपलब्ध हो सकेगा। शुष्क क्षेत्रीय फसलों का अनेक मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

फलों की तुड़ाई उपरान्त निस्तारण

विजय राकेश रेड्डी, रामकेश मीना, दीपक कुमार सरोलिया एवं आर. एस. सिंह
भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

किसी भी उद्यानकर्त्ता को अधिक लाभ कमाने के लिए आवश्यक है कि वह अपनी उपज की गुणवत्ता एवं उपलब्धता को बाजार में लम्बे समय तक बनाए रखने के लिऐ उसका उचित निस्तारण करे, जिससे की उसे अपनी उपज का सही मुल्य प्राप्त हो इस प्रकार उपज निस्तारण से न केवल उसकी आय बढ़ेगी। बल्कि समाज एंव बाजार में उसकी साख बढ़ेगी। इसलिए सही तरीके से फल निस्तरण के लिए आवश्यक है कि किसान को तुड़ाई उपरान्त होने वाली निस्तारण प्रक्रियाएं जैसे, फलों की उचित विधि द्वारा तुड़ाई, फलों का श्रेणीकरण, फलों की पैकिंग, फलों का भण्डारण, फलों का परिवहन एवं फलों के क्रय–विक्रय केन्द्रों के बारे में समुचित जानकारी होना आवश्यक हैं।

(अ) फलों की तुड़ाई से लेकर उपभोक्ता तक पहुचनें के मध्य निम्न निस्तारण प्रक्रियाएं हैं:–

1. फलों की उचित विधियों द्वारा तुड़ाई
2. फलों का श्रेणीकरण
3. फलों की पैकिंग
4. फलों का उचित भण्डारण
5. फल परिवहन का उचित प्रबंध
6. फलों का क्रय–विक्रय

1. फलों की उचित विधियों द्वारा तुड़ाई:–

फलों की तुड़ाई बाजार की दूरी एवं फलों के स्वभाव पर निर्भर करती है। यदि उधान से बाजार की दूरी अधिक हो तो फलों की तुड़ाई पकने से 3–4 दिन पहले करनी चहिए। और यदि फलों को स्थानीय बाजार में भेजना हो तो तुड़ाई पकने के बाद करनी चहिए। फलों की तुड़ाई उनके स्वभाव पर भी निर्भर करती है जैसे की क्लाइमेट्रीक फलों को पकने से पहले तोड़कर उन्हें कृत्रिम विधि द्वारा पकाया जाता है। जैसे– आम, पपीता, केला इत्यादी। जब की नॉनक्लाइमेट्रीक फलों को पकने के बाद ही पेड़ से तोड़ा जाता है। जैसे – अंगूर, नारंगी, जामून, बेर इत्यादि।

तुड़ाई के समय ध्यान रखने वाली सावधानियां :–

1. तुड़ाई के दौरान फलों पर चोट या खरोंच नही लगनी चाहिए।
2. फलों को डंटल सहित तोड़ना चाहिऐ।
3. तुड़ाई के समय फलों को जमीन पर गिरने से बचाना चाहिए।
4. मुलायम फलों के गुच्छे को कैंची से काटे जैसे – अंगूर।
5. तुड़ाई के समय पेड पर ध्यानपुर्वक चढ़ना चाहिए तथा हाथों से फलों को तोडना चाहिए, फलों को लकड़ी के डंडे से नहीं तोड़ना चहिए।

(ब) फलों का श्रेणीकरण :–

फलों को उनके रंग, रूप एवं उनके आकार के अनुसार पृथक–पृथक करना श्रेणीकरण कहलाता है। इससे फलों की भण्डारण क्षमता बढ़ने के साथ–साथ किसान को अधिक बाजार मूल्य भी प्राप्त होता है।

श्रेणीकरण के लाभ :–

1. फलों का परिवहन आसानी से किया जा सकता है।
2. भाव तय करने में आसानी रहती है।
3. खराब फलों को बाहर निकालने से फल जल्दी खराब नही होते।
4. किसान को उपज का उचित मूल्य प्राप्त होता है।

(स) फलों की पैकिंग :–

फलों की दूर बाजार एवं विदेशों में भेजने के लिए फलों को टोकरियों, लकड़ी के बक्सों, प्लास्टिक की टोकरियों, कागज या कार्डबोर्ड के डब्बों में रखना पैकिंग कहलाता है।

पैकिंग से लाभ :–

1. फलों का परिवहन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

2. फलों की गुणवत्ता लम्बे समय तक स्थिर बनी रहती है।
3. फलों का विक्रय मूल्य अधिक प्राप्त होता है।

फलों के पैकिंग की विधियां :—

1. फलों को कागज या कार्डबोर्ड के डिब्बों में भरकर पैक करना।
2. जूट के बौरो में पैक करना।
3. प्लास्टिक की टोकरियों में पैक करना।
4. लकड़ी या बाँस की टोकरीयों में पैक करना।

बेर फलों की डिब्बाबंदी

(द) फलों का भण्डारण :—

फलों के विक्रय में सबसे बड़ी समस्या बाजार मूल्य कि है जब बाजार में फलों की आवक बढ़ जाती है तो उनके मुल्यों में गिरावट आ जाती है। यदि इस समय फलों को भण्डारित कर लिया जाए तो किसान के लिए यह लाभदायक रहेगा क्योंकि उत्पादक को बेमौसम फल बेचने पर किसानों को फलों का बाजार मूल्य अधिक मिलेगा। अतः किसानों को फलों को भण्डारित कर उन्हें बेमौसम बेचना चाहिए।

फल भण्डारण की विधियाँ :—

1. नियंत्रित वातावरणीय विधि :—

इस विधि के अर्न्तगत फलों को उन पात्रों या डिब्बों मे रखकर भण्डारित किया जाता है जिनमें ऑक्सीजन की मात्रा को वातावरण की तुलना में कम एवं कार्बन डाई आक्साईड कि मात्रा को बढ़ाया जाता है जिससे फलों की श्वसन दर कम होने से फलों के पकने की गति धीमी पड़ जाती है तथा इनकी भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है। इस प्रकार के भण्डारण में खर्च अधिक आता है तथा यह बड़े स्तर पर भण्डारण के लिए ही उपयुक्त है। यह विधि ऐसे फल जिनको अधिक समय तक भण्डारित करना हो तथा जिनको बेमौसम में अधिक कीमत पर बेचा जा सकता है, के लिए उपयुक्त है। हाल ही में अदानी औधोगिक समूह द्वारा हिमाचल प्रदेश में सेव के भण्डारण के लिए इस प्रकार के भण्डार गृह बनाए गए है।

2. हाइपोबेरिक विधि :—

इस विधि में फलों को एक पात्र में भरकर, निर्वात पम्प की सहायता से उस पात्र की वायु निकाल देते है इससे फलों को श्वसन के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पाता है। अतः उनकी श्वसन दर कम होने के साथ–साथ उनकी भण्डारण क्षमता में वृद्धि होती है। यह विधि हरे पत्तेदार सब्जियों के लिए प्रयुक्त की जाती है। यह भी बहुत अधिक महंगी विधि है।

3. शून्य उर्जा शीत कक्ष विधि :—

इस विधि से फलों का भण्डारित करने के लिए उधान में ही ईटों एवं सीमेंट से एक दोहरी दिवार वाली टंकीनुमा आकृति तैयार की जाती है। टंकी की दोहरी दिवार के बीच में गीली रेत भर देते है तथा टंकी के मध्य में फलों को रखकर ऊपर से घास की टांटी से ढक देते है। इस प्रकार टंकी के अन्दर का तापक्रम कम रहता है। इस विधि से फलों को 8–10 दिन तक बिना खराब हुए भण्डारित रख सकते हैं।

(य) प्रशीतन विधि द्वारा फलों का भण्डारण:—

इस विधि द्वारा फलों को निम्न तापक्रम पर अधिक समय के लिए रख सकते है, तापक्रम, नमी एवं भण्डारण का समय फलों के अनुसार तालिका में दर्शाया गया है।

क्रं. सं.	फल का नाम	भण्डारण के उपयुक्त तापक्रम (°सेल्सीयस)	औसतन नमी की मात्रा (प्रतिशत)	भण्डारण विधि
1	अमरूद	8–10	–85	2–3 सप्ताह
2	आम	7–8	–85	5–7 सप्ताह
3	पपीता	9–10	80–	1–2 सप्ताह
4	अनार	0–2	80	3–6 सप्ताह

क्रं. सं.	फल का नाम	भण्डारण के उपयुक्त तापक्रम (°सेल्सीयस)	औसतन नमी की मात्रा (प्रतिशत)	भण्डारण विधि
5	अंगूर	0–2	80	6–8 सप्ताह
6	नींबू	7–10	85	3–6 सप्ताह
7	माल्टा	5–6	85	3–4 महीने
8	मौसम्बी	7–8	85	3–4 महीने
9	खजूर (ताजे)	6–8	85	2 सप्ताह
10	खजूर (सूखे)	6–8	75	1 वर्ष
11	चीकू	3–4	85	6–8 सप्ताह
12	केला (कच्चा)	12–13	80	1–2 सप्ताह
13	केला (पका)	13–14	85	2–3 सप्ताह
14	सेव	2–4	85	5–7 महीने

खजूर फलों की तुड़ाई से लेकर बाजार भेजने तक की प्रक्रिया

(र) फलों का परिवहन :–

उधान से बाजार तक फलों का ले जाने के लिए पर्याप्त यातायात के साधनों का होना आवश्यक है जिससे फलों को समय पर बाजार में बेचकर उनको खराब होने से बचाया जा सके।

फलों को बाजारों में भेजने के लिए निम्नलिखित साधनों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे:–

1. **स्थानीय बाजारों के लिए** : साइकिल, रिक्शा, ट्रेक्टर–ट्रॅाली व जीप।
2. **मध्यम दूरी के बाजारों के लिए** : रेलगाडी, मोटर ट्रक, टेम्पो, जीप आदि।

3. **अधिक दूरी के बाजारों के लिए** :– वायुयान, जहाज, रेलगाडी व प्रशीतन लारीयाँ।

(ल) **फलों का क्रय–विक्रय** :– फलों के विक्रय की निम्न विधिया है।

1. **फलों को उपभोक्ता के हाथ बेचना** :– इस विधि द्वारा फलों को घर–घर, सड़क के किनारे के बाजार, छोटे बाजार, आदि में सीधे उपभोक्ता को बेचते है इससे फलों की कीमत थोक विक्रेताओं से अधिक मिलती है।
2. **फुटकर विक्रेताओं को बेचना** :– इस विधि द्वारा फलों को मण्डियों, फार्म एवं नीलामी बाजार में बेचे जाते है।
3. **थोक विक्रेताओं को बेचना** :– इस विधि में फलों को कमीशन एजेण्टस के माध्यम से थोक विक्रेताओं को बेचे जाते है।
4. **ठेकेदारों को फलों को बेचना** :– इस विधि में फलों को उत्पादक ठेकेदारों को बेचता है। बेचने का यह तरीका केवल एक फलत का होता है।
5. **सहकारी समितियों को बेचना** :– जहां पर फल क्रय–विक्रय सहकारी समितियाँ होती है वहा फलों को इन समितियों में बेचना चाहिऐ इस विधि में उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को ही लाभ होता है।

फलों का परिरक्षण निम्न विधियों द्वारा किया जाता है:

1. निर्जलीकरण द्वारा : किसी भी खाद्य पदार्थ के समस्त जीवाणुओं को नष्ट कर देने की क्रिया को निर्जलीकरण कहते हैं। इसके लिए खाद्य पदार्थों को बहुत अधिक गर्म करना पड़ता है, जिससे उनके विटामिन, रंग, स्वाद आदि नष्ट हो जाते हैं। इसलिए खाद्य पदार्थों को केवल इतना ही गर्म करते हैं कि इनमें उपस्थित जीवाणु निष्क्रिय हो जाएं। इस विधि को 'संसाधन' कहते हैं। डिब्बाबंद फलों को इसी सिद्धान्त के द्वारा संरक्षित किया जाता है।
2. गर्म पानी का उपयोग: उबलते पानी में संसाधित किया जात है क्योंकि ये खटासयुक्त होते हैं। इनके जीवाणु पानी मे उबलने के तापमान (100° सेल्सियस) पर निष्क्रिय हो जाते हैं। विभिन्न फलों के संसाधन का समय उनकी संरचना के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। डिब्बे के आकार के अनुसार भी संसाधित करने का समय अलग–अलग होता है। उदाहरणत: बड़े आकार के डिब्बों के संसाधन में अधिक समय तथा छोटे आकार के डिब्बे के लिए कम समय की आवश्यकता पड़ती है।
3. चीनी द्वारा: यदि किसी पदार्थ में चीनी की मात्रा 66 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो वह पदार्थ स्थाई रूप से सुरक्षित हो जाता है। जैसे जैम, जेली, मार्मलेड, मुरब्बा, कैन्डी, सीरप आदि प्रसंस्कृत उत्पाद इसी सिद्धांत पर सुरक्षित किए जाते हैं।
4. नमक द्वारा: नमक जीवाणुओं के लिए परासरण द्वारा काम करने के साथ–साथ उनके लिए विष का काम भी करता है। इसके अतिरिक्त नमक की अधिकता से जीवाणुओं की कोशिकाओं का विदारण भी हो जाता है। 15 प्रतिशत या इससे अधिक नमक द्वारा फलों का स्थाई परिरक्षण किया जाता है। विभिन्न फलों से बने अचार इसी सिद्धान्त पर सुरक्षित रहते हैं, क्योंकि जिस फल में नमक मिलाया जाता है उसे वह आंशिक रूप से निर्जलीकृत कर देता है। यह फलों से नमी सोख लेता है तथा नमी के अभाव में सूक्ष्मजीव वृद्धि नहीं कर पाते हैं। नमक आक्सीजन की घुलनशीलता को भी कम कर देता है जिससे सूक्ष्मजीवों की वृद्धि रूक जाती है।
4. एसिटिक अम्ल द्वारा : दो प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल की उपस्थिति में खाद्य पदार्थों का स्थाई परिरक्षण हो जाता है। सिरके में लगभग 4–5 प्रतिशत ऐसिटिक अम्ल होता है। इसलिए इसके द्वारा कई अचार संरक्षित रहते हैं।
5. रसायनों द्वारा : रसायनों के सीमित प्रयोग से कुछ खाद्य पदार्थों का स्थाई परिरक्षण हो जाता है, परन्तु इन रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इन्हें सही मात्रा में ही डाला जाए। भारतीय फल पदार्थ आदेश (1955) के अनुसार हमारे देश में निम्नलिखित दो रासायनिक पदार्थों को फलों के परिरक्षण हेतु प्रयोग किया जाता है: 1. पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट या सोडियम मेटाबाईसल्फाइट एवं 2. सोडियम बेंजोएट उपर्युक्त दोनों रासायनिक पदार्थ केवल खटासयुक्त खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में ही प्रभावशाली होते हैं। इन्हें पानी में अच्छी तरह घोलकर उत्पाद में मिलाना चाहिए। पोटेशियम मेटाबाईसल्फाइट को पानी में घोलने पर सल्फर डाईआक्साइड गैस और सोडियम बेंजोएट को पानी में घोलने पर बेंजाइक अम्ल बनते हैं। ये दोनों, उत्पाद में सूक्ष्मजीवों की वृद्धि व प्रसारण को रोकते हैं जिससे उत्पादों को कई दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।
6. खमीर द्वारा (किण्वन) : खमीर बनाना एक ऐसी क्रिया होती है जिसमें जीवाणुओं तथा एन्जाइमों की क्रिया

से खाद्य पदार्थों के कार्बोहाइड्रेटस नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया से निर्मित पदार्थों से भी खाद्य पदार्थों का स्थाई संरक्षण हो जाता है। किण्वन तीन प्रकार से होता हैः

क. एल्कोहलीय किण्वनः वह क्रिया है जिसमें यीस्ट की कार्बोहाइड्रेटस पर क्रिया से एल्कोहल तथा कार्बन–डइआक्साइड गैस बनती है। एल्कोहल की अधिक मात्रा में जीवाणुओं की वृद्धि रूक जाती है। उत्पाद में 18 प्रतिशत एल्कोहल होने पर सारे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

ख. एसिटिक किण्वनः एसिटिक अम्ल जीवाणु की क्रिया द्वारा एल्कोहल से एसिटिक अम्ल तैयार होता है जो जीवाणुनाशी होता है। दो प्रतिशत एसिटिक अम्ल में अधिकांश खाद्य पदार्थ स्थाई रूप से सुरक्षित रह जाते हैं। इसका प्रयोग कैचप, अचार तथा चटनी बनाने में किया जाता है। सिरका फलों के रस का खमीर द्वारा बनाया जाता है। इसमें एसिटिक अम्ल की मात्रा 4–5 प्रतिशत होती है।

ग. लेक्टिक किण्वनः इस क्रिया में खाद्य पदार्थों के कार्बोहाइड्रेटस लेक्टिक अम्लीय जीवाणुओं की क्रिया से लेक्टिक अम्ल में बदल जाते हैं। यही लेक्टिक अम्ल जीवाणुओं की क्रिया को कम करता है। कई प्रकार के अचार लेक्टिक अम्ल में सुरक्षित रहते हैं।

7. सुखाकर (निर्जलीकरण) : जीवाणुओं के पनपने के लिए पानी की आवश्यकता होती है। यदि उन्हें पानी न मिले तो इनका पनपना बन्द हो जाता है। खाद्य पदार्थों को धूप या मशीन द्वारा सुखा देने से इनमें उपस्थित पानी उड़ जाता है तथा कुल घुलनशील पदार्थों की मात्रा बढ़कर 70–72 प्रतिशत हो जाती है। बहुत से फलों को इसी सिद्धांत पर सुखाकर सुरक्षित रखा जाता है। सुखाने के बाद इन्हें हवाबन्द डिब्बों में रखना अति आवश्यक होता है, अन्यथा वे वायुमण्डल से नमी सोख लेते हैं तथा न पर फफूंदी लग जाती है। किशमिश, मुनक्का, छुआरे, अंजीर, अमचूर आदि विभिन्न फलों के सूखे उत्पाद निर्जलीकरण के सिद्धान्त पर सुरक्षित रखे जाते हैं।

"बाधाएं आती है आएं, घिरे प्रलय की घोर घटाएं,
पावों के नीचे अंगारे, सिर पर बरसे यदि ज्वालाएं,
निज हाथों में हंसते-हंसते, आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।"

-अटल बिहारी वाजपेयी

कमरख प्रसंस्करण और मूल्यसंवर्धन

कमला महाजनी, सुमित्रा मीणा एवं नीतू मीणा
कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी (राजस्थान)

कमरख एक बहुत ही फायदेमंद फ्रूट है। कमरख को एंटी कैंसर फ्रूट भी कहा जाता है। कमरख स्टार की तरह दिखाई देता है इसीलिए इसे स्टार फ्रूट भी कहा जाता है। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। कमरख खाने में जितना स्वाद होता है उतने ही इसके फायदे होते है। कई प्रकार के स्वास्थ्य लाभ दिलाने वाले इस फल में बहुत से पोषक तत्व होते हैं। स्टार फल में कैलोरी बहुत ही कम मात्रा में होती है लेकिन इसमें फाइबर अच्छी मात्रा में होता है। इसके अलावा करमख फल में विटामिन सी, विटामिन ए, विटामिन बी के साथ ही फास्फोरस, जिंक, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम और आयरन की अच्छी मात्रा होती है। इस फल में एंटीऑक्सीडेंट पॉलीफेनोलिक यौगिकों उच्च मात्रा होती है। कमरख एक विदेशी उष्णकटिबंधीय फल है जो ज्यादातर दक्षिण पूर्व एशिया में होता है। यह फल स्वाद में खट्टा विटामिन सी से भरपूर होता है। ज्यादातर पकने के बाद यह थोडा मीठा होने लगता है। सर्दियो में कई लोगों को त्वचा–सम्बन्धी विकार होते है तो इसका सेवन करने से परेशानी दूर हो जाती है। खट्टेपन से भरपूर यह फल मोटापा, दिल की बीमारी, आँखों की परेशानियों, मुहासे और बालों की वृद्धि में सहायक है। छोटी से छोटी बीमारी से लेकर बड़े से बड़े बीमारी को यह चुटकी में समाप्त कर देता है।

हृदय रोग में सहायक

जो व्यक्ति दिल की बीमारियों से परेशान है उनके लिए कमरख बहुत ही लाभकारी होता है। इस स्टार फल मे विटामिन बी 12 यानि फौलिक एसिड उच्च मात्रा में होता है जो दिल की बिमारियों और दिल के दौरे जैसी भयानक रोगों से बचने में मदद करता है।

आँखों के रोग में सहायक

अगर आँख में कोई समस्या हो तो यह कमरख फल का सेवन बहुत ही लाभदायक होता है। आयुर्वेद में इसका इस्तेमाल कई औषधि में किया जाता हैं। शरीर को मेगीनीशियम, या विटामिन बी 6 की जरूरत है तो आप इस फल का सेवन कर सकते हैं।

भूख बढ़ाने में सहायक

अगर आपको भूख नहीं लगती है, या आपका मन कुछ भी खाने को नही करता है तो आप रोजाना सुबह एक गिलास कमरख का जूस लें उसमें एक चम्मच चीनी मिलाकर पी जॉए। 4 से 5 दिन इसका उपयोग करने के बाद आपकी भूख बढ़ जाएगी।

मूल्य संवर्धित उत्पाद

कमरख का अचार

सामग्री – कमरख – 250 ग्राम, सरसों का तेल – 100 ग्राम, हींग – 2–3 पिंच, हल्दी पाउडर – 2 छोटी चम्मच, लाल मिर्च पाउडर – 1 छोटी चम्मच, पीली सरसों – एक बडा चम्मच (मोटी पिसी हुई), नमक स्वादानुसार (2 छोटी चम्मच)

बनाने की विधि :–

- कमरख को अच्छी तरह धो लीजिये, पानी सुखाइये और लम्बाई में काट लीजिये
- एक कढ़ाई में आधा तेल डाल कर गरम किजिये, तेल गरम होने के बाद गैस बन्द कर दीजिये, गरम तेल में सबसे पहले हींग इसके बाद हल्दी पाउडर डाल दीजिये, अब कटे हुये कमरख, नमक, लाल मिर्च और पीली सरसों भी डाल कर अच्छी तरह मिला दीजिये।
- कमरख का अचार तैयार है, ठंडा करके कांच या चीनी मिट्टी के कन्टेनर में भर दीजिये, आप इस अचार को अभी भी खा सकते है, 3–4 दिन तक अचार उपर नीचे चला दें, अब अचार के कमरख नरम हो गये है, बचा हुआ तेल अचार में डाल दें, अधिक दिनों तक अचार को अच्छा रखने के लिए अचार को तेल में डूबा रहना आवश्यक है, 6 महीने

तक जब भी आपकी इच्छा हो अचार निकालिये और खाइये।

कमरख की चटनी :–

सामग्री – कमरख – 2 नग, नमक – 1 छोटा चम्मच, हरी मिर्च – 4 नग, लहसुन की कली – 6 नग, हरा धनिया बारीक कटी – 1/2 कप।

कमरख की चटनी बनाने की विधि :–

कमरख को धो के काट लें यदि बीज हो तो निकाल दे।

- अब मिक्सी में बिना पानी के महीन पीस ले।
- भरवॉ पराठे या दाल के साथ सर्व करें।
- आप इस चटनी के आइस क्यूब बना कर रख सकते है।
- आवश्यकता पडने पर इस्तेमाल कर सकते है।

कमरख की लोंजी :–

सामग्री – कमरख 200 ग्राम (4 मध्यम आकार की), तेल – 1 टेबल स्पून, जीरा– आधा छोटी चम्मच, मेथी दाने– आधा छोटी चम्मच, हींग – 1 पिंच, हल्दी पाउडर – एक चौथाई छोटी चम्मच, धनिया पाउडर – 1 छोटी चम्मच, सोफ पाउडर – 1 छोटी चम्मच, नमक – स्वादानुसार (2/3 छोटी चम्मच), चीनी – 3 टेबल स्पून, लाल मिर्च पाउडर – एक चौथाई छोटी चम्मच से कम, गरम मसाला – एक चौथाई छोटी चम्मच।

बनाने की विधि :–

- कमरख को धोइये और काट लीजिये।
- कडाई में तेल डालकर गरम किजिए, गरम तेल में जीरा, मैथी भुनने पर हल्दी पाउडर, धनिया पाउडर डालिये, मसाला हल्का सा भूनने के बाद कटे हुये कमरख डालिये, नमक, लाल मिर्च डाल कर मिलाइये और ढक्कर 3–4 मिनिट के लिये धीमी आग पर पकने दीजिये।
- ढक्क्न खोलिए, कमरख थोडे नरम हो गए है, एक कप पानी, चीनी और गरम मसाला डाल दीजियें, लोंजी में उबाल आने के बाद 7–8 मिनिट तक धीमी आग पर उबलने दीजिये।
- कमरख की लौंजी बन गई है, कमरख की मीठी लौंजी पराठे, चपाती और चावल के साथ परोसिये और खाइये।
- कमरख की लौंजी को आप 5 दिन तक रख कर खा सकते है, लौंजी को फ्रिज में रखकर तो 10 दिन तक खाया जा सकता है।

कमरख का मुरब्बा :–

सामग्री : कमरख – 500 ग्राम, चीनी – 1 किलो, नमक – 5 ग्राम, पानी – आवश्यकतानुसार।

विधि :

- पकी हुई पीले रंग की कमरख लेकर छीलें। फिर उन्हें कांटे से अच्छी प्रकार गोदकर एक बर्तन में रख ले। उसमें नमक डालकर अच्छी तरह हिलाएं। इसमें कमरख खट्टा पानी छोड देगी।
- इसके बाद साफ पानी से धोकर थोडी धूप लगाए।
- अब एक तार की चाशनी तैयार करके कमरख उसमें डाल दें। चार–पांच उबाल आने पर कमरख गल जाएगी। तत्पश्चात ठण्डा करके मर्तबान में भरकर रख दें। बस मुरब्बा तैयार है।

बीजोपचार से उत्पादन एवं आय में वृद्धि

डॉ. अनिता मीणा[1], डॉ नीतू मीणा[2], डॉ कमला महाजनी[2]

[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी (राजस्थान)

बीज, कृषि उत्पाद और उत्पादन में निरंतर वृद्धि के लिए एक बुनियादी और महत्वपूर्ण इनपुट है क्योंकि नब्बे प्रतिशत खाद्य फसलें बीज से उगाई जाती हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र में बीज की भूमिका का प्रमुख महत्व है जहां कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या और सकल घरेलू उत्पाद (सकल घरेलू उत्पाद) काफी महत्वपूर्ण है। बीज जनित और शुरुआती मौसम के रोग और कीड़े समय पर प्रबंधन न करने पर विनाशकारी परिणाम पैदा करते हैं। वर्तमान कृषि पर जोर कम भूमि, पानी और मानव शक्ति के साथ अधिक उत्पादन करने के लिए है। स्वच्छता, फसल चक्रण, मिश्रित फसल, बुवाई की तिथि का समायोजन, गिरने, गर्मियों की जुताई, हरी खाद खाद जैसी उम्र के अनुकूल पर्यावरणीय रोग प्रबंधन प्रथा पौधे से निपटने के लिए रोगजनकों ने पहले ही अपनी स्वीकार्यता खो दी है और एकीकृत कीट प्रबंधन के एक घटक के रूप में पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। पर्ण अनुप्रयोग के माध्यम से रासायनिक नियंत्रण की अपनी सीमा होती है जैसे उच्चस्तरीयता, चयनात्मकता, लक्ष्य जीवों पर प्रभाव, कीट प्रतिरोध का विकास, कीटों का पुनरुत्थान, भोजन और चारा का प्रदूषण, स्वास्थ्य खतरा, पौधों और जानवरों के प्रति विषाक्तता, पर्यावरण प्रदूषण आदि। पादप तकनीकी इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जबरदस्त उन्नति के बावजूद प्रतिरोधी किस्मों के विकास और स्थायित्व की गति धीमी और अविश्वसनीय थी।

दुनिया की बढ़ती आबादी के साथ इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, इस तरह के प्रबंधन प्रथाओं /साधनों को हटाने के लिए एक बढ़ती रुचि रही है, जो अकेले या अन्य प्रथाओं के साथ संयोजन में इनोकुलम क्षमता में कमी का एक बहुत अच्छा डिग्री ला सकते हैं और एक ही समय में सुनिश्चित करते हैं उत्पादन, लागत प्रभावशीलता और स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता और 'बीज उपचार' इन उपकरणों में से एक है। शिशु की देखभाल जैसे बीज उपचार माँ के साथ होने के नाते और यह एक मूल ड्रेसिंग से लेकर कोटिंग और पेलेटिंग तक होता है। बीज उपचार कुछ निश्चित बीज के संपक्र को संदर्भित करता है।

कारण/अवस्था औसत हानि (प्रतिशत)

1. कटाई उपरांत	10 प्रतिशत
2 बीमारी	13 प्रतिशत
3. खरपतवार	14 प्रतिशत
4. कीट	5 प्रतिशत

कृषि क्षेत्र की उत्पादकता बनाये रखने तथा उसकी निरंतर वृद्धि में बीज का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए उत्तम बीज का होना अति अवश्यक होता है। उत्तम बीजों के चुनाव के बाद उनका उचित बीजोपचार जरूरी होता है, क्योंकि बहुत से रोग बीजों से ही फैलते हैं। अतः रोगजनकों, कीटों एवं असामान्य परिस्थितियों से बीज को बचाने के लिए बीजोपचार एक महत्वपूर्ण उपाय है। एक अनुमान से पता चला है कि देश में बोए गये अधिकतर बीज अनुपचारित हैं जब कि विकसित देशों में शत–प्रतिशत बीज उपचारित होता है।

फसल उत्पादन के विभिन्न चरणों में होने वाली हानि (प्रतिशत)

अंतः फसल के विभिन्न अवस्थाओं में प्रबंधन द्वारा इस हानि को कम/नगण्य किया जा सकता है।

बीज उपचार के लाभ – अनुसंधान द्वारा पाया गया है कि बीजोपचार के लाभ उत्तम पौधों, अच्छी गुणवत्ता, अधिक पैदावार और रोगों तथा कीट नियंत्रण में लगी पूँजी अच्छी आय के रूप में दिखाई देते हैं, परन्तु आज ऐसे किसानो की संख्या बहुत कम है।

बीज जनित रोगों का नियंत्रण – छोटे दाने की फसलों, सब्जियों व कपास के अधिकांश बीज रोगों से संक्रमित होते हैं, इनके लिए बीज उपचार बहुत प्रभावी तरीका है।

1. **मृदा जनित रोगों पर नियंत्रण** – मृदा में कवक, जीवाणु व सूत्रकृमि से बीज व तरूण पौधों को बचाने के लिए बीजों को कवकनाशी रसायनों से उपचारित किया जाता है, जिससे बीज मृदा में सुरक्षित रहता है।
2. **अंकुरण में सुधार** – बीजों को उचित कवकनाशी से उपचारित करने से उनकी सतह कवकों के आक्रमण सेसुरक्षित रहती हैं, जिससे उनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है। यदि बीज पर कवकों का प्रभाव बहुत

अधिक होता है तो भंडारण के दौरान भी उपचारित सतह के कारण उनकी अंकुरण क्षमता बनी रहती है।

3. **कीटों से सुरक्षा** – भंडार में रखने से पूर्व बीज को किसी उपयुक्त कीटनाशी से उपचारित कर देने से वह भंडारण के दौरान सुरक्षित रहता है।

4. **मृदा कीटों का नियंत्रण** – कीटनाशी का संयुक्त उपचार करने से बुवाई के बाद बीज मृदा में सुरक्षित रहता है और बीज अवस्था में उसका विकास होता है।

बीजोपचार की विधियाँ

(क.) नमक के घोल से उपचार – पानी में नमक का 2 प्रतिशत घोल तैयार करें, इसके लिए 20 ग्राम नमक को एक लीटर पानी में मिलाएँ। इसमें बीजों को डालकर हिलाएँ। हल्के एवं रोगी बीज इस घोल में तैरने लगेगें। इन्हें छानकर अलग कर दें और पेंदे में बैठे बीजों को साफ पानी से धोकर सुखा लें, फिर फफूंदनाशक, कीटनाशक एवं जीवाणु कल्चर से उपचारित करके बोयें।

(ख.) ताप (ऊष्मा) का उपचार – कुछ रोगों के जीवाणु बीज के अन्दर रहते हैं, इनकी रोकथाम के लिए बीजों को मई–जून के माह में जब दिन का तापमान 40 से 50 डि.सेहोता है तब बीजों को 6 से 7 घण्टे तक पक्के फर्श पर धूप में सुखा दें। इससे गेहूँ में कंडुवा रोग नहीं आता है।

(ग.) फफूंदनाशक दवाओं से उपचार – बीजों को फफूंदनाशक दवाओं से उपचारित करने के लिए इन्हें पाउडर या तरल अवस्था में उपयोग कर सकते हैं। इन रसायनों के रक्षणीयता के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा गया है

1. **रोगनाशक** – ये रसायन बीजोपचार के बाद बीज को रोगमुक्त बना देते हैं। परन्तु बुवाई के बाद में रसायन अधिक समय तक सक्रिय नहीं रह पाता है।

2. **रक्षक** – इस प्रकार के रसायन बीज की सतह पर चिपक कर बुवाई के बाद भी पौधों की रोगों से रक्षा करते हैं। अधिकतर बीजोपचार वाले रसायन या तो कार्बनिक पदार्थ होते हैं या अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। जैसे– सल्फेट, कॉपर कार्बोनेट आदि।

फफूंदनाशक दवाओं से बीजोपचार की विधियाँः

1. **सूखी विधि** – इस विधि में रसायनो के पाउडर का उपयोग किया जाता है। जैसे– एग्रोसेन. जी. एन., सेरेसन, विटाबैक्स, कॉपर सल्फेट, एसीटान, वाविस्टिन इत्यादि से 2–2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करते हैं।

2. **गीली विधि** : इस विधि से धुलनशील फफूंदनाशक रसायनों को बीज के अन्दर पहुँचाया जाता है। भिन्न–2 रोगों के लिए अलग–अलग सांद्रता के घोल में डालकर उपचारित करके बोया जाता है।

जीवाणु कल्चर से उपचार – विभिन्न जीवाणु कल्चर से बीजोपचार कर पौधों के लिए मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाया जाता है। समान्यतः उपयोग में आने वाले जीवाणु कल्चर निम्नलिखित हैं ;

(क) राइजोबियम जीवाणु– इन जीवाणुओं का दलहनी फसलों के प्राकृतिक सहजीवी सम्बन्ध होता है। ये दलहनी फसलों के जड़ों में ग्रन्थियाँ बनाते हैं तथा नाइट्रोजन (नत्रजन) स्थिर करते हैं। राइजोवियम – दलहन सहजीवता से 100–200 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टर प्रति वर्ष होती है।

(ख) एजोटोवैक्टर जीवाणु – ये जीवाणु गैर दलहनी फसलों जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि के लिए उपयुक्त है। इसमें 20–30 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टर तक स्थिर कर सकते हैं।

(ग) फास्फोरस विलयकारी जीवाणु – ये जीवाणु मृदा में उपस्थित अविलेय, स्थिर तथा अप्राप्त फास्फोरस की विलेयता को बढ़ाकर उसे पौधों को उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं। इसका उपयोग लगभग सभी फसलों में हो

जीवाणु कल्चर की विधि– जीवाणु कल्चर के बीजोपचार के अच्छे परिणाम के लिए सही विधि का महत्वपूर्ण योगदान है। जीवाणु खाद (200 ग्राम) को गुड़ के 10 प्रतिशत घोल (एक लीटर पानी में 100 ग्राम गुड़ में मिलाया जाता है) और इस के घोल को एक एकड़ बीज की मात्रा पर छिड़कर मिलाया जाता है, ताकि बीजों पर वाहक की परत बन जायें। इन बीजों को छाया में सुखाकर तुरन्त बुवाई करनी चाहिए। उपचारित बीजों को रसायनिक उर्वरकों तथा कृषि रसायनों के सम्पक्र से बचाना चाहिए।

निष्कर्ष– बीज उपचार एक महत्वपूर्ण विधि है जो फसलों को रोगों, कीटों और खरपतवार से सुरक्षित रखता है। जीवाणु कल्चर के बीजोपचार से सूक्ष्म और मुख्य तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है और उपज में वृद्धि होती है। अतः बीजोपचार द्वारा उपज में वृद्धि कर किसानों की आय में समुचित बढ़ोतरी की जा सकती है।

ड्रिप सिचांई संयन्त्र की उचित देखभाल व रखरखाव

[1]सी. एल. मीना, [2]आर. सी. साँवल, [3]दयानन्द एवं [2]कु. रेखा रैगर
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर
[2]स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर (झुंझुनू)

बूदं बूदं प्रणाली सिचांई की एक सुनियोजित तकनीक है जो कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रो में उपयोग में लायी जा रही है। यह पद्वति दूसरी सिचांई पद्धतियों के मुकाबले में विभिन्न फसलों के लिए लाभदायक सिद्व हुई है। जल में उपस्थित अशुद्धियों के कारण प्रणाली में आंशिक या पूर्ण अवरोध जल वितरण दक्षता को प्रभावित करता है जिससे जल का वितरण पूरे खेत में समान रूप से नही हो पाता है। फलस्वरूप किसान को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। इसलिए ड्रिप पद्वति की सफलता संयन्त्र की उचित देखभाल व रखरखाव पर निर्भर करती है।

खजूर में बूंद–बूंद सिंचाई

सिचांई संयन्त्र की देखभालः

ड्रिप सिचांई संयन्त्र (ऑनलाइन/इनलाइन) सुचारू रूप से चले और उसका उपयोग सालों तक हो सके, इसके लिए संयन्त्र की उचित देखभाल आवश्यक है। इसके लिए एक समय सारिणी बनाकर इसको निम्नानुसार भागों में बॉट लें–

अ. नित्य देखभालः

1. हर दिन पम्प चालू करने के बाद, संयन्त्र का दबाव स्थिर होने पर सैंड फिल्टर को बॅकवाशिंग करना चाहिए तथा हायड्रोसाइक्लॉन और स्क्रीन फिल्टर के ड्रेन वॉल्व खोलकर फ्लश करना चाहिए। आरंभिक सफाई के बाद हर 5–6 घंटे या पानी की गुणवता के अनुसार समय समय पर फिल्टर्स साफ करने चाहिए। बैकवॉश पद्वति में पानी के प्रवाह के विपरीत दिशा से सैंड फिल्टर में पानी छोडा जाता है। इससे रेत में फंसी गंदगी विपरीत प्रवाह के साथ उपर आकर बैकवॉश वॉल्व द्वारा बाहर फेंकी जाती है। बैकवॉश नही करने से जरूरी दबाव से पानी नही मिल पाता है।

सैंड फिल्टर बैकवॉश निम्न पद्धति के क्रमशः करना चाहिए।

- बैक वॉल्व खोलिये।
- आउटलेट वॉल्व बंद कीजिये।
- बायपास वॉल्व खोलिये।
- इनलेट वॉल्व बंद कीजिये।
- बैकवॉश पूर्ण होने के बाद संयन्त्र पूर्ववत स्थिति में लाने के लियेः
- इनलैट वॉल्व खोलिये।
- बायपास वॉल्व बंद कीजिये।
- आउटलेट वॉल्व खोलिये।
- बैकवॉश वॉल्व बंद कीजिये।

2. फिल्टर की सफाई होने के बाद हेडर असेम्बली के बायपास वॉल्व की सहायता से उचित दाब नियंत्रित करना चाहिए। उपर्युक्त दबाव पर चलने वाले संयन्त्र से पानी सभी जगह समान मात्रा में मिलता है। इसमें दबाव से नली और ड्रिपर में कचरा फसने या पानी का प्रवाह कम होने का खतरा टाल सकते है।
3. खेतों में निरीक्षण कर कही टूट फुट या लीकेज होने पर तुरतं ठीक कराऍं। पाईप मुडा हुआ या दबा हुआ हो तो तुरंत सीधा करे।
4. ड्रिप संयन्त्र के सभी ड्रिपर्स से पानी ठीक तरह से गिरता है या नही, इसका ध्यान रखना चाहिए।
5. ड्रिप सिंचाई पूर्ण होने के बाद जमीन का गीलापन सभी जगह एक जैसा है या नही, यह भी देखना चाहिए। गन्ने और सब्जी जैसी फसलों मे गीला पट्टा

एक जैसा है या नही देखना चाहिए। अक्सर जमीन ठीक से तैयार नही होने पर गीलापन एक जैसा नही होता। गीलापन ज्ञात करने के लिये ऑगर का उपयोग करना चाहिए।

6. ड्रिपर सही जगह लगा है, यह निश्चित करें। ड्रिप सिंचाई में ड्रिपर के गीले क्षेत्र में जड़ का विकास तेजी से होता है। ड्रिपर की जगह बार बार बदलने से जडों को पर्याप्त पानी नही मिलता और इसका असर फसल की बढोतरी पर होता है। क्षारयुक्त जमीन से क्षार ड्रिपर के पानी में घुलकर जड़ के क्षेत्र से बाहर फेंके जाते है। ड्रिपर की जगह बार–बार बदलने से जडों की पानी खींचने की क्षमता कम हो सकती है।
7. लैटरल/इनलाइन का अंतिम छोर खोलकर पानी को 1, 2 मिनट यहां से बाहर निकलने दें। हर रोज एक भाग का लैटरल/इनलाइन इसी तरह साफ कर सकते है। लैटरल की सफाई करते समय शुरूआत में पाँच–पाँच लैटरल/इनलाइन की एंडकैप खोलिए जिससे प्रवाहदर तेज होकर लैटरल ठीक प्रकार से साफ हो सकें। लैटरल साफ करते समय किसी एक लैटरल को फ्लश करने से पहले सफेद कपडा लपेटिए और उससे लैटरल का पानी छन कर बाहर जाने दें। कपडे पर जमी गंदगी का निरीक्षण कर ड्रिप संयन्त्र में कौन सी समस्या आ सकती है उसका निदान किया जा सकता है। जैसे कपडे पर काई के कण दिखने से आप जान सकते है कि आपके संयन्त्र में काई है। आप तुरंत क्लोरीन प्रक्रिया कर सकते है अथवा सैंड फिल्टर लगा सकते है।
8. सबमेन का फ्लश वॉल्व खोलकर अंदर का कचरा साफ करने के बाद ही दूसरा सिंचाई प्रभाग चालू करें। ध्यान रखें कि संयन्त्र में आने वाला कचरा हमेशा पाईप लाइन के अंतिम भाग में जमा होता है। उसे नही निकालने से सडकर ड्रिपर में जा सकता है। इसके लिये सबमेन नियमित फ्लश करना जरूरी है।

ब. अर्ध मासिक (पाक्षिक) देखभालः

उपर दर्शाये 1 से 8 तक के निर्देशों का पालन करने के बाद प्रत्येक पंद्रह दिनों में निम्नलिखित देखभाल करनी चाहिए।

1. **सैंड फिल्टरः** पानी में मौजूद क्षार के कारण अक्सर रेत की उपरी सतह पत्थर के समान कठोर हो जाती है। केवल बैकवॉश से उसकी सफाई नही होती। इसके लिये हर पंद्रह दिन मे रेत को हाथ से साफ कर बैकवॉस करना जरूरी होता है। सैंड फिल्टर का ढक्कन खोलकर बैकवॉश चालू करने के बाद फिल्टर के अंदर हाथ से रेत को अच्छे से तोडना चाहिए। फिल्टर से आने वाला पानी ढक्कन से बाहर निकलने दें। हाथ से रेत साफ करते समय अंदर के काले रंग के फिल्टर एलिमेंटस को धक्का नही लगना चाहिए। इससे रेत के स्क्रीन फिल्टर में जाने की आशंका रहती है। इस दौरान बायपास वॉल्व द्वारा पानी का प्रवाह इस प्रकार नियंत्रित करना चाहिए कि रेत ढक्कन से बाहर नही निकल सके। सैंड फिल्टर में आधा भाग रेत होना चाहिए। रेत की मात्रा कम होने पर पुनः नयी रेत फिल्टर पर अंकित लेबल (निशान) तक भरना चाहिए। सैंड फिल्टर की रेत नदी– नाले की रेत न होकर विशिष्ट पद्धति से बनी निश्चित आकार की नुकीली रेत है। इस रेत से पानी रिसते समय कचरा रेत में अटक जाता है। साधारण रेत से यह प्रक्रिया नहीं होती। इसलिये सैड फिल्टर में कभी भी नदी –नाले की रेत का का प्रयोग न करें।
2. **स्क्रीन फिल्टर** : सैड फिल्टर की तरह हर पंद्रह दिन में स्क्रीन फिल्टर का ढक्कन खोलकर अंदर के फिल्टर एलिमेंट साफ करना जरूरी है। सैड फिल्टर द्वारा नही छनने वाला बारीक कचरा स्क्रीन फिल्टर की जाली में अटकता है। धीरे धीरे इस कचरे के जमा होने से जाली पर एक परत बन जाती है। इससे जाली के कार्य में रूकावट पैदा होती है। इसलिये जाली को पानी के प्रवाह में हाथ से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। इसके लिये तार के ब्रश का उपयोग नही करना चाहिए। जाली साफ करने से पहले दोनों तरफ के रबर सील निकाल कर, साफ करने के प चात फिर से जाली के उपर ठीक से फिट करना चाहिए। अन्यथा पानी के दबाव से बिना छना पानी आगे निकल सकता है।

क. मासिक देखभाल

पानी के माध्यम से क्षार, काई (शैवाल) आदि ड्रिप संयन्त्र में जाने से ड्रिपर अथवा लैटरल बंद हो सकती है। पानी के क्षार से ड्रिप सिस्टम प्रभावित होने पर अम्ल प्रक्रिया करना आवश्यक होता है। काई और जीवजंतुओं के लिये क्लोरीन प्रक्रिया करना आवश्यक है। अम्ल व क्लोरीन प्रक्रिया दोनों बारी बारी से करना बेहतर होगा। दो प्रक्रियाओं के बीच का अंतर पानी की जांच के आधार पर निश्चित करना चाहिए या फिर हर महिने रासायनिक प्रक्रिया करें।

रासायनिक प्रक्रिया कैसे करें?

रासायनिक प्रक्रिया में अम्ल व क्लोरीन प्रक्रिया की जाती है। इसके लिये व्हेंचुरी असेंब्ली, फर्टिलाइजर टैंक या फर्टिगेशन पम्प को उपयोग में लाया जाता है।

अम्ल प्रक्रिया किस प्रकार करना चाहिए?

इसके लिये निम्नलिखत अम्लों में से किसी भी एक अम्ल का उपयोग कर सकते हैं।

1. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल
2. सल्फयूरिक अम्ल
3. नाइट्रिक अम्ल
4. फॉस्फोरिक अम्ल

अम्ल प्रक्रिया के अंतर्गत संयन्त्र के अम्लमिश्रित पानी का पीएच 4 होना चाहिए। पीएच नापने के लिये पीएच पेपर उपयोग में लाया जाता है। पीएच पेपर को अम्लमिश्रित पानी में भिगोने पर उसका रंग रंगपटी के ताम्र रंग से (पीएच–4) मिलना चाहिए। जिस पानी की अम्ल प्रक्रिया करनी है, उसका पीएच अधिक होने पर, उसे चार तक लाने के लिये पानी में अम्ल की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

अम्ल प्रक्रिया निम्नानुसार करनी चाहिए:

1. प्लास्टिक के बर्तन में 1 लिटर पानी लीजिए।
2. पानी में डॉपर की सहायता से 1–1 मि.ली. अम्ल डालकर पानी का पीएच नापते जाइए।
3. पीएच चार होने तक यह प्रक्रिया जारी रखें।
4. पीएच चार तक लाने के लिये कितना अम्ल उपयोग में लाया गया, यह ज्ञात कीजिए।
5. अम्ल प्रक्रिया ड्रिप संयन्त्र में करनी है, इसका ध्यान रखें। संयन्त्र के जिस प्रभाग में अम्ल प्रक्रिया करनी है, वहां पम्प चालू करने के बाद कितने समया में पानी भर जायेगा इसकी जानकारी लें। उतने समय में ही अम्ल प्रक्रिया पूरी करना चाहिए।
6. जिस साधन से संयन्त्र में अम्ल डालना है, उसकी पानी खींचने की गति सेट करना चाहिए। यह गति नीचे दिये सूयत्र के आधार पर निकाली जा सकती है। सक्शन रेट (एसआर) संयन्त्र का प्रति घंटा प्रवाह दर (घ.मी.) 1 लिटर पानी में पीएच चार लाने के लिये उपयोग में लाया गया अम्ल (मिली)। संयन्त्र का प्रवाह दर ठीक से पता न होने पर फिल्टर पर अंकित प्रवाह दर का उपयोग करना चाहिए।
7. अमल की मात्रा निकालने के लिये उपर दर्शाएनुसार प्रति घंटा सक्शन रेट को 60 से विभाजित कर क्र. 5 में बतायी विधिनुसार जो समय लगता है, उसे गुणा करना चाहिये।
8. अम्ल प्रक्रिया आंरभ करते ही, सबसे नजदीकी ड्रिपर के पास जाकर, उससे बाहर निकलने वाले पानी का पीएच चेक करना चाहिए। पीएच– 4 से ज्यादा होने पर व्हेंचुरी मैनफोल्ड का वॉल्व बंद कर सक्शन रेट बढाना चाहिए। पीएच– 4 से कम होने पर व्हेंचुरी मैनफोल्ड का वॉल्व थोडा सा और खोलना चाहिए।
9. इसी प्रकार वॉल्व कम ज्यादा कर पीएच– 4 तक अम्ल मिश्रित पानी ड्रिप संयन्त्र में निर्धारित समय में पहुचने के बाद उस भाग के सबमेन का वॉल्व बंद करें अथवा पंप बंद करें। संयन्त्र में मौजूद क्षार को अम्ल मिश्रित पानी में घुलने में कम से कम 6 घंटे लगते है।
10. उसके बाद लैटरल के अंतिम छोर को खोलिये। सबमेन फलश वॉल्व खोलकर पम्प चालू कीजिये जिससे अम्लमिश्रित पानी में घुले हुये क्षार संयन्त्र से बाहर निकल सके।

क्लोरीन प्रक्रिया कैसे करें ?

क्लोरीन प्रक्रिया हेतु,

1. कैलशियम हायपोक्लोराइट (ब्लीचिंग पावडर) घनरूप क्लोरीन
2. सोडियम हायपोक्लोराइट (द्रवरूप क्लोरीन)
3. क्लोरीन गैस (वायुरूप क्लोरीन) का उपयोग कर सकते है।

कैलशियम हायपोक्लोराइट सभी जगह आसानी से उपलब्ध होता है इसलिये प्रायः इसको उपयोग में लाया जाता है। ब्लीचिंग पावडर खरीदते समय यह सुनिश्चित करें कि उसमें मिलावट नहीं है। ब्लीचिंग पावडर में मुक्त क्लोरीन की मात्रा ज्ञात कर लेना चाहिए। साधारणतः यह 50 प्रतिशत तक होती है। यह क्लोरीन कीटाणुओं एवं काई का नाश करता है। क्लोरीन की मात्रा जानने के लिये क्लोरीन पेपर का उपयोग करना चाहिए। नियमित क्लोरीन प्रक्रिया करते समय क्लोरीन का प्रमाण 10 से 20 पीपीएम होना चाहिए। पानी अगर अम्लधर्मी (पीएच 7 से कम) है तो क्लोरीन प्रक्रिया तेज होती है।

अम्ल व क्लोरीन प्रक्रिया करते समय नीचे दिये गये निर्देशों का ध्यान रखें।

1. तीव्र अम्ल का शरीर के किसी भी भाग पर स्पर्श होना खतरनाक हो सकता है। इसलिये अम्ल का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करें। अम्ल इस्तेमाल करते समय अम्ल प्रतिरोधक दस्तानों का प्रयोग करें।
2. क्लोरिन के ज्यादा मात्रा में पानी में घुले होने के कारण वह पानी पीना हानिकारक है। क्लोरिन के रसायनों को ठडी जगहों पर अथवा छाया में रखें।
3. अम्ल को पानी में डालें न कि पानी को अम्ल में।
4. कभी भी अम्ल व क्लोरिन प्रक्रिया एक साथ न करें अन्यथा क्लोरिन गैस बाहर निकल सकती है जो कि एक विषैली गैस है।
5. अम्ल प्रक्रिया के समय यदि गलती से अम्ल शरीर के किसी भाग पर गिर जाए तो उस पर ढेर सारा पानी डालें व डॉक्टर से सलाह लें।
6. अम्ल प्रक्रिया/क्लोरिन प्रक्रिया करने से पहले सैंड फिल्टर को बैकवॉश कर लें जिससे सैड फिल्टर में अटका हुआ कचरा संयन्त्र में नही जाएगा।
7. इस बात का ख्याल रखें कि अम्ल व क्लोरिन प्रक्रिया के समय संयन्त्र का पानी पशु व आदमी न पीयें।
8. क्लोरिन प्रक्रिया के समय क्लोरिन पानी से भरी टंकी/बाल्टी पर झुके नही। क्लोरिन गैस को सांस द्वारा शरीर में न जाने दें।
9. अम्ल व क्लोरिन प्रक्रिया खत्म होने पर फिल्टर की जाली व फर्टिलाइजर टैंक आदि साफ पानी से धो लें।

ड. अर्धवार्षिक देखभालः

हर छः महीनों में ड्रिप सिंचाई संयन्त्र के पम्प की यथा योग्य देखभाल करें। पम्प के व्यवस्थित कार्य से संयन्त्र को आवश्यक प्रवाह दर व दबाव मिलता है। पम्प को बाहर निकाल कर उसमें ऑईल/ग्रीस लगाएं।

इ. अतिरिक्त देखभालः

क्या हमने नीचे दिए गये निर्देशों पर ध्यान दिया है ?

1. ड्रिप सिंचाई संयन्त्र के विभिन्न भागों को ठीक तरह से फिट किया है तथा वे सुचारू रूप से कार्यरत है, यह सुनिश्चित करें।
2. प्रेशर गेज का उपयोग संयन्त्र के दबाव और फिल्टर इनलेट व आउटलेट में दबाव का अतंर नापने के लिये होता है। फिल्टर के ऊपर प्रेशर गेज पर इनलेट व आउटलेट का दबाव नापने के लिये थ्री– वे वॉल्व का उपयोग कर इनलेट व आउटलेट के दबाव में अतंर देखें। इसके अतिरिक्त प्रेशर गेज बंद कर दबाव रहित रखें जिससे प्रेशर गेज अधिक समय कार्य कर सकता है। प्रेशर गेज को प्लास्टिक की थैली लगाकर रखें जिससे बारिश का पानी गेज में नही जा पाए।
3. दोनों प्रेशर गेज के बीच दबाव का अतंर 0.5 किलो ग्राम प्रति स्क्वेयर सें.मी. से ज्यादा होने पर सैंड फिल्टर को बैकवॉश करें।
4. आवश्यकता के अनुसार निश्चित भाग अथवा सेक्शन के वॉल्व खुले रखें, नक्शे के साथ प्राप्त तकनीकी मार्गदर्शिका देखें।
5. साधारणतः सैंड फिल्टर इनलेट प्रेशर गेज पर 2–1.5 किलो प्रति स्केवयर सें.मी. व सबमेन का शुरूआत में 1.0–1.20 किलो प्रति स्क्वेयर सें.मी. प्रेशर जरूरी है। इससे ड्रिपर्स से डिजाइन अनुसार डिस्चार्ज मिलता है।
6. पम्प के फुटवॉल्व (पानी के) की सीट खराब होने पर किसान गोबर व कीचड का उपयोग करते है। किंतु ऐसी गंदगी को फिल्टर में जाने से पहले ही बायपास से निकाल देना चाहिए। कई बार गोबर के कारण सैंड फिल्टर में बालू की परत बन जाती है। जिस

कारण छनन प्रक्रिया व्यवस्थित नहीं होती है।

7. ड्रिप संयन्त्र में बायपास वॉल्व होना आवश्यक है। यदि नही है तो बायपास वॉल्व की व्यवस्था करवा लें।
8. ड्रिप सिंचाई संयन्त्र के प्रत्येक ड्रिपर से समान जल प्रवाह होना चाहिए। इसके लिये प्रति घंटे निकलने वाले पानी को नापना चाहिए। ड्रिपर्स में गंदगी के कारण बंद होने पर पानी कम मात्रा में और विभिन्न स्थानों से असमान रूप से निकलता है। ऐसे में ड्रिपर्स को खोलकर पानी से साफ करें अथवा रासायनिक प्रक्रिया करें। यदि लैटरल में लीकेज हो या वह मुडी हुई हो तब भी कम दबाव के कारण कम पानी मिलता है।
9. सैंड फिल्टर व स्क्रिन फिल्टर की नियमित सफाई करने से उसकी पानी छानने की क्षमता बराबर बनी रहती है।
10. सैंड फिल्टर के आधे भाग में हमेशा बालू होनी चाहिए। बालू कम होने पर समय समय पर नई बालू डालते रहना चाहिए। बालू नदी नाले की नही, बल्कि खास तौर से फिल्टर के लिए बनी बालू का इस्तेमाल करें।
11. ड्रिपर्स को लैटरल में से निकाले बिना ही धीरे से खोलकर साफ करना चाहिए। यदि ड्रिपर को लैटरल से सीधे नहीं निकालते हुए तिरछा कर और जल्दबाजी में निकाला जाए तो लैटरल का छेद बडा हो जाता है जो कि लिकेज का कारण बनता है।
12. ड्रिपर्स व इनलाइन से होने वाले गीलेपन का निरीक्षण करें। गीलापन ज्यादा हो तो उसे ठीक करने के उपाय करें। जैसे– सबमेन, लैटरल/इनलाइन को फलश करना,रासायनिक प्रक्रिया करना,इत्यादि
13. ड्रिप सिंचाई संयन्त्र के बंद पडे रहने पर उसमे कीडे, मकौडे, मकडी घुसने की तथा जाल बुनने की आशंका रहती हैं। परिणाम स्वरूप जल प्रवाह कम होता है। इसलिये ड्रिपर्स की नियमित रूप से सफाई करें।
14. यदि कोई ड्रिपर पानी की तेज धार उडाये तो समझे कि उसकी रबर की गोल चकरी ड्रिपर साफ करते वक्त गलती से गिर गई है और उसे फिर से लगा दें।
15. यदि किसी कारणवश लैटरल कट जाती है, तो वहॉ सीधा छेद कर उस पर पॉली जॉयर जोड दें जिससे लीकेज बंद हो जाए।
16. लैटरल में छेद होने पर गुफ प्लग लगाकर लीकेज रोकें।
17. कृषि कार्यो, गिलहरी, चूहा, मोर जैसे प्राणियों अथवा किसी तकनीकी कारणों से चोट पहुचने से बचाने के लिये लैटरल को जमीन में 3–4 इंच नीचे लगाएं। सिर्फ ड्रिपर्स व उसके आसपास के भाग खुले होने चाहिए अन्यथा मिट्टी की वजह से ड्रिपर्स के छेद बंद हो जाते है। गिलहरी पानी की तलाश में लैटरल कुतर कर संयन्त्र को नुकसान पहुंचाती हैं। खेत में जगह जगह छोटे बर्तन में गिलहरी के लिए पानी की व्यवस्था करें। जिससे संयन्त्र को नुकसान नहीं पहुंचे। खेत में बड़े पेड़ों में प्लास्टिक बांधें, जिससे गिलहरी पेड़ पर न चढ़ सकें। पेड़ों के तनों पर चिकने पत्रे का उपयोग भी कर सकते हैं।

खेतों के लिए चूहे हानिकारक हैं। वह न केवल ड्रिप सिंचाई संयन्त्र बल्कि अनाज, बीज इत्यादि को भी नुकसान पहुंचाते हैं। चूहों के नाश के लिए नीचे दिए गए कुछ निर्देशों का पालन करें।

1. खेत में साप को नही मारें। सांप हमारा मित्र है जो चुहों की संख्या को नियंत्रित करने में मदद करता हैं।
2. चूहों को मारने के लिये रैट कैम्पेनिंग कर सकते हैं। इसके अंतर्गत आस पास के सभी किसानों को एक जुट होकर चूहों का तुरंत नाश करना चाहिए। सर्वप्रथम किसान, अपने खेत के सभी बिलों को मिट्टी से भर दें व वहॉ निशान बना दें। दूसरे दिन सभी बिलों का निरीक्षण करें जो बिल खुले हो मतलब वहां चूहा है। उन्हें फिर से बंद करें तथा आस पास चूहा मारक दवा डालें या खाने के पदार्थ में मिलाकर बिलों के पास रख दें। यह कार्य सभी किसानों को एक समय में करना होगा जिससे सभी चूहों का एक समय में ही नाश हो, नही तो दूसरे खेत से चूहे आकर नुकसान करेंगे व साथ ही उनकी संख्या बढेगी।
3. लैटरल के आस पास हमेशा नमी (गीलापन) बनाये रखें। चूहे ऐसी जगहों पर जाने से घबराते हैं जिससे लैटरल सही सुरक्षित रहेगा। ड्रिपर्स पास–पास होने पर ही गीली सतह तैयार होगी। यदि दो ड्रिपर के बीच ज्यादा अंतर हो तो उनके बीच की लैटरल को जमीन के अंदर 3–4 इंच की गहराई तक रख सकते हैं जिससे लैटरल चूहों की पहुंच से दूर होंगे।

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में राई-सरसों की खेती का महत्व

मोहन लाल दौतानियाँ एवं प्रमोद कुमार राय
भाकृअनुप.—सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर—321 303, भरतपुर

भारत विविधताओं का देश है इस विभिन्नता की झलक पहनावे, खान—पान से लेकर जलवायु मृदा एवं फसल में भी देखने को मिलती है। भारत का पश्चिमी भाग जो कि ु क एवं अर्धशु क जलवायु के कारण जाना जाता है इसमें राजस्थान का रेगिस्तान, कच्छ का रण, पंजाब, हरियाणा एवं गुजरात का कृि ा क्षेत्र सम्मिलित है। इन क्षेत्रों में तापमान का अधिक होना, व ा का कम होना, मृदा कार्बन का स्तर कम होना तथा जल वा पीकरण की दर अधिक होने के कारण फसलों में सिंचाई कम समय अन्तराल पर देने की अनुशंसा की जाती है इसी के साथ—साथ भूमि जल में क्षारीय कणों की अधिकता के कारण फसल पर प्रतिकूल प्रभाव एवं मृदा की गुणवत्ता में भी ह्रास देखा गया है। ु क व अर्द्धशु क क्षेत्रों में निम्नलिखित मुख्य सीमिततायें हैं।

लहलहाता सरसों खेत

मृदा गुणवत्ता :— अगर हम ु क एवं अर्द्धशु क जलवायु वाले कृि ा क्षेत्र की बात करें तो मृदा प्रायः लवणीय व क्षारीय हैं। इन मृदाओं में लवण कण कोशिकाओं के द्वारा मृदा की ऊपरी परत पर आ जाते हैं जिससे मृदा का रंग सफेद हो जाता है एवं फसल बढ़वार पर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। मृदाओं के रासायनिक गुणों के आधार पर इन्हें लवणीय या क्षारीय मृदाओं में विभक्त कर सकते हैं। यदि मृदा का पी.एच. 8 से कम व विद्युत चालकता 4 डेसीसाइमन्स/मी से अधिक है तो मृदा लवणीय होगी और इनमें मृदा कार्बन की उचित मात्रा पाई जाती है। इन मृदाओं का ास्य प्रबंधन करके (अगेती बुवाई, लवण प्रतिरोधी फसलें, अंकुरण के समय नमी, गोबर की खाद का प्रयोग) अधिक उत्पादन ले सकते हैं। लेकिन अगर मृदा का पी.एच. 8 से अधिक एवं विद्युत चालकता 4 से कम पाई जाती है तो इन मृदाओं में रासायनिक गुणों के आधार पर जिप्सम की उपयुक्त मात्रा खेत में डालने की आवश्यकता है। साथ ही साथ लवणीय मृदाओं में अनुशंसित ास्य क्रियाओं के कारण भी पैदावार में बढ़ोत्तरी पाई गई है।

जल उपलब्धता :— इन क्षेत्रों में मृदा की भौतिक गुणों में कमी पाई जाती है। मृदा में उपस्थित क्ले मृदा कणों का प्रतिशत सामान्यतः कम होता है तथा लवणों की अधिक मात्रा मृदा स्वास्थ्य को कमजोर करते हैं। अच्छे भूमि जल की उपलब्धता कम होने और कम गुणवत्ता होने के कारण लवणीय कणों का जड़ क्षेत्रों में बर्हिगमन संभव नहीं हो पाता है जिसके कारण यह मृदाओं में लवण कण की मात्रा एक निश्चित चक्र में परिवर्तित होती रहती है। अतः इसके लिए सिंचाई जल का उपयोग या फिर लवण की ऊपरी परत को खुरच कर फेंक देना चाहिए जो अधिक मेहनती व खर्चीला है। इन क्षेत्रों में जल की कमी को पूरा करने के लिए अर्ध ाहरी क्षेत्रों में किसान सीवेज पानी का उपयोग करता है जिससे अधिक मात्रा में कार्बन तथा सार्थक मात्रा में पादप पो ाक तत्व होते हैं जिससे पैदावार में वृद्धि देखी गई है लेकिन सीवेज नालों में औद्योगिक इकाइयों का अपशि ट जल मिलने के कारण इनमें भारी धातुओं की अधिक मात्रा पाई जाती है। भारी धातुओं के कारण फसल में कमजोर अंकुरण, कम वृद्धि के साथ साथ पैदावार में कमी देखी गई है। इसके अलावा भारी धातु कण मृदा में मृदा कार्बन मिनरेलाइजेशन, पादप पो ाक तत्व उपलब्धता, सूक्ष्म जीवों की संख्या व विविधता में कमी ु क व अर्द्धशु क क्षेत्रों में फसल पैदावार में कमी करती है। अतः इस प्रकार के जल का उपयोग करने से पहले सीवेज जल को भली—भांति उपचारित कर लें। इनमें उपलब्ध नमक की मात्रा व भारी धातु की सान्द्रता

को विभिन्न सीवेज उपचारित विधियों द्वारा दूर कर लेना चाहिए।

अधिक तापमान :– फसल उत्पादन को अधिक और कम दोनों ही तापमान अत्यधिक प्रभावित करते हैं। फसल के क्रान्तिक दशाओं में उपयुक्तता तापमान फसल की पैदावार व मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाता है। लेकिन ु क क्षेत्रों में अधिक तापमान व कम आर्द्रता फसल उपयुक्ता को सीमित करते हैं इन क्षेत्रों में तापमान सहनशील प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए। रेतीली मृदाओं में दिन व रात के तापमान में और भी अधिक अन्तर होता है जिसके कारण फसल वृद्वि व फसल पो क तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है।

राई–सरसों का राष्ट्रीय स्तर पर योगदानः– राई–सरसों फसल रा ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्रा ट्रीय स्तर पर भी अपना अमूल्य योगदान रखती है। इन फसलों का क्षेत्रफल दिन–प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। खाद्य तेलों की आपूर्ति में इनकी अहम् भूमिका है। क्योंकि सोयाबीन, मूंगफली, तिल इत्यादि फसलों के विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पाद बना कर प्रयोग में लाये जाते है और बहुत कम पैदावार का खाद्य तेलों के रूप में उपयोग में लाया जाता है लेकिन सरसों की फसल मुख्यतया खाद्य तेलों के लिए ही उपयोग में लाई जाती है। अतः इसके क्षेत्रफल को बढ़ाने के लिए रा ट्रीय स्तर पर भारत सरकार भी जोर दे रही है। भारत की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है तथा देश का एक बड़ा भू–भाग राई–सरसों उत्पादन में अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। इन राज्यों में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा एवं गुजरात शामिल हैं जिनमें कुल क्षेत्रफल का 80 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन का 84 प्रतिशत भाग आता है। विभिन्न प्रकार की उन्नत किस्में तथा अधिक उत्पादन के लिए विभिन्न उन्नत तकनीकों का विगत व ों में अनुसंधान हुआ तथा किसानों के कृि ा क्षेत्रों पर इन प्रजातियों एवं उन्नत तकनीकों का प्रदर्शन

किसानों की आय को बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हो रहा है। रा ट्रीय स्तर पर राई–सरसों की पैदावार को बढ़ाने में सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर कटिबद्ध है जो देश के विभिन्न स्थानों पर राई–सरसों समन्वित कार्यक्रम के तहत मृदा व जलवायु के अनुसार किस्मों का विकास करता है तथा पादप पो ाक तत्व उपयोग दक्षता, जल उपयोग दक्षता, समन्वित रोग व कीट प्रबन्धन, पादप प्रजनन द्वारा विभिन्नता पैदा करना इत्यादि ाामिल है। इन तकनीकों को किसानों तक पहुचाने के लिए संस्थान समय–समय पर किसान–वैज्ञानिक संवाद, प्रक्षेत्र दिवस, किसान एवं प्रसार कर्मियों का प्रशिक्षण, सरसों विज्ञान मेला एवं प्रदर्षनी आयोजित करता रहता है।

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में राई–सरसों उत्पादन की संभावनाः– उपरोक्त में वर्णित विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियॉ, जल की कमी, अधिक तापमान, मृदा स्वास्थ्य का कमजोर होना इत्यादि को ध्यान में रखते हुए हम राई–सरसों की खेती को इन क्षेत्रों में बढ़ावा दे सकते हैं। राई–सरसों एक वाणिज्यिक फसल है तथा इसकी फसल उत्पादन का मूल्य भी बाजार में अच्छा मिलता है निम्नलिखित संभावनाओं के कारण इसका उत्पादन इन क्षेत्रों में बढाया जा सकता है।

- राई–सरसों एक रबी फसल है तथा इस दौरान तापमान भी अत्यधिक नहीं होता है। बीज अंकुरण के समय फसल को तापमान अधिक प्रभावित करता है अतः बीजाई का समय ु क व अर्द्धशु क क्षेत्रों के अनुसार समायोजन करके उत्पादन ले सकते हैं।
- राई–सरसों की फसल रासायनिक–भौतिक सीमितता वाली मृदाओं में भी मृदा व फसल प्रबंधन करके अच्छी फसल ली जा सकती है यह फसल विपरीत जलवायु व कम मृदा स्वास्थ्य के प्रति सहि णु है तथा अन्य फसलों की तुलना में प्रतिकूल वायुमण्डलीय दशाओं का इसके उत्पादन पर कम प्रभाव पड़ता है।
- मृदा परीक्षण से आप पता कर सकते हो कि आपकी मृदा लवणीय है या क्षारीय। अगर लवणीय है तो आप विभिन्न ा य क्रियाओं; और क्षारीय है तो जिप्सम का उपयोग कर सकते है। लवणीय मृदाओं में कार्बन की उचित मात्रा पाई जाने की अधिक संभावना होती हैं इसके अतिरिक्त खरीफ के समय हरी खाद/गोबर की खाद को प्रयोग में लावें जिससे आगामी रबी में राई–सरसों फसल का अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।
- राई–सरसों फसल कम सिंचाई वाली फसल है किसान भाई व ाि जल का संग्रहण करके एक सिंचाई

से भी फसल उत्पादन ले सकते हैं। इसके अलावा नहरी क्षेत्रों में तो इस फसल का उत्पादन बहुत ही अच्छे तरीके से ले सकते हैं।

- पानी की कमी की दशाओं में किसान सीवेज जल का उपयोग भी कर सकता है लेकिन ध्यान रहे यह अपशि ट भली भांति उपचारित होना चाहिये। इसके साथ–साथ यह भी ध्यान रखें की मृदा का परीक्षण भी समय–समय पर करवाते रहें। राई–सरसों ऐसी फसल है जिसमें की मृदा में उपस्थित भारी धातु की मात्रा फसल से पैदा होने वाले तेल में नहीं पहुंचती है। इसके अलावा यह फसल मृदा में उपस्थित विभिन्न हानिकारक धातुओं को भी अवशोि ात करके मृदा स्वास्थ्य को बढाती है। राई–सरसों की फसल का उपयोग फाइटोरिमेडियेशन (पादप उपचार) विधियों में भी किया जाता है।

उपरोक्त दशाओं को देखते हुए हम ु क व अर्द्धशु क क्षेत्रों में राई–सरसों के उत्पादन पर विचार करके इसको धरातल पर उतार सकते हैं। इस फसल की लागत कम है तथा बाजार मूल्य अन्य फसलों की तुलना में अधिक है इसके अलावा यदि विपरीत जलवायु में भी उचित सस्य व मृदा प्रबन्धन करें तो यह फसल अच्छा उत्पादन देती है जिससे कि किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा देश की आर्थिक विकास की गति भी इन क्षेत्रों में बढ़ेगी।

"एक डोर में सबको जो है बांधती
वह हिन्दी है,
हर भाषा को सगी बहन मानती
वह हिन्दी है।
भरी-पूरी हो सभी बोलियां
यह कामना हिन्दी है,
गहरी हो पहचान आपसी
यही साधना हिन्दी है,
सौत विदेशी रहे न रानी
यही भावना हिन्दी है।"

-गिरजा कुमार माथुर

कृषि वानिकी: हरे चारे का सशक्त विकल्प

बलबीर सिंह खद्दा, कनक लता, राज कुमार, एस. खजुरिया और ए. के. राय
भाकृअनुप.–(केशुबासं) कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल
गोधरा–बडौदा हाईवे, वेजलपुर (गोधरा) –389340 (गुजरात)

दुनिया में भारत के पास सबसे अधिक पशुधन है, जो प्रति वर्ष 4–8 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। इतनी बड़ी पशुधन आबादी को खिलाने के लिए चारे की आवश्यकता भी बढ़ रही है। पशुधन क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त और पौष्टिक आहार और चारे की नियमित आपूर्ति आवश्यक है। भारत में अनुमानित 26 मिलियन टन चारे की सलाना आवश्यकता है। बढ़ती जरुरतों एवं घटती कृषि योग्य जमीन के चलते चारा उत्पादन की उपेक्षा होती जा रही है, जिससे पशु कुपोषण तथा कम उत्पादकता के शिकार हो रहे हैं। पशुपालन में खर्च होने वाले कुल व्यय का लगभग 65–70 प्रतिशत अकेले पशु आहार पर ही होता है। उपलब्ध साधनों से पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक चारा सस्ती दरों पर उपलब्ध कराना पशुपालन व्यवसाय की सफलता के लिए आवश्यक है। अधिक उत्पादन क्षमता वाले पशुओं का चयन कर उन्हें पर्याप्त पौष्टिक चारा उपलब्ध कराकर पशु उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि सम्भव है। वर्तमान में देश को 35.6 प्रतिशत हरे चारे 10. 95 प्रतिशत सूखे चारे और 44 प्रतिशत सघन दाने के अवयवों की आवश्यकता है। हरे और सूखे चारे की मांग 2050 तक 1012 और 631 मिलियन टन तक पहुंच जाएगी। इस घाटे को पूरा करने के लिए तथा पशुधन की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए चारे की आपूर्ति सालाना 1– 69 प्रतिशत की दर से बढ़ सकती है। हरे चारे की कमी वाले क्षेत्रों में पशुओं की हरे चारे की मांग को पूरा करने के लिए वृक्षों की पत्तियों का चारा एक अच्छा विकल्प हो सकता है। पेड़ों का महत्व मानव तथा पशुओं के लिए किसी से छिपा नहीं है। वृक्ष ईंधन, लकड़ी, कागज, फल, छाया के साथ बंजर भूमि के सुधार तथा जल व मृदा संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है। शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के पेड़ तथा झाडियां पाई जाती हैं जो पशुओं के पोषण में विशेष महत्व रखते हैं। शुष्क क्षेत्रों में उगने वाले वृक्ष जैसे खेजड़ी, सहजन, बेर, देशी बबूल, सुबबुल, नीम, पीपल, शहतुत, गुलर, बरगद, व अरडु की पत्तियों को चारे के रूप में उपयोग में ला सकते हैं। पेड़ों की पत्तियों में 8–33 प्रतिशत कच्चे प्रोटीन 1–19 प्रतिशत ईथर के अक्र, 11–50 प्रतिशत कच्चे फाइबर 33. 66 प्रतिशत नाइट्रोजन मुक्त अक्र 22–57 प्रतिशत तटस्थ डिटर्जेंट फाइबर 0.2–3.0 प्रतिशत कैल्शियम तथा 0.1–3. 0 प्रतिशत फास्फोरस पाया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में अगर चारे वाले वृक्ष घास के साथ लगाये जायें तो पेड़ों से प्राप्त हरी पत्तियों को सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाने से आवश्यक प्रोटीन तथा अन्य सभी पोषक तत्वों की पूर्ति हो जाती है। सूखे चारे का पाचन भी सही प्रकार से हो जाता है। पेड़ पौधों व झाड़ियों से प्राप्त होने वाली पत्तियों का उपयोग सामान्यतः गाय भैंस भेड़, बकरी, तथा ऊँट के आहार में किया जा सकता है। शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में हरे चारे के रूप में उपयोग किये जाने वाले वृक्ष निम्न हैं –

खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*)– यह रेगिस्तान का कल्पवृक्ष कहलाता है। इसके सूखे पत्तों को लूंम/लूंग तथा हरी फलियों को सांगरी कहते हैं जिनको भेड़, बकरी, ऊँट, गाय व भैंस बड़े चाव से खाते हैं। खेजड़ी की छंगाई साल में दो बार मई – जून तथा नवम्बर – दिसम्बर में करके पशुओं के लिये चारा एकत्र कर सकते हैं। छंगाई के बाद दिसम्बर– जनवरी में निकलने वाली पत्तियों को पशु के चरने के लिए काम मे नहीं लेना चाहिए क्योंकि उस समय उसमें टैनिन अम्ल की मात्रा अधिक होती है। जिसके कारण पत्तियों का स्वाद कड़वा हो जाता है। इसमें 15 प्रतिशत पाचक प्रोटीन 15–20 प्रतिशत कच्चा रेशा 1.92 प्रतिशत कैल्शियम 0.18 प्रतिशत फास्फोरस 17.8 प्रतिशत भस्म तथा 40.7 प्रतिशत कुल पाचक तत्व पाये जाते हैं। इसकी फलियों में 8–12 प्रतिशत शक्रा पाई जाती है।

सहजन (*मोरिंगा ओलीफेरा*) – यह पशुओं के लिए उत्तम हरा चारा है। इसकी फलियां भी उपयोग में लाई जाती हैं। इसकी पत्तियों में 30.29 प्रतिशत कच्चा प्रोटीन के साथ 19 प्रकार के अमीनों अम्ल व 17 प्रकार के वसा अम्ल पाये जाते हैं। इसमे 6.5 प्रतिशत वसा, 15.20 प्रतिशत अपरिपक्व रेशा तथा 61 प्रतिशत कुल पाच्य तत्व पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों में 3.65 प्रतिशत कैल्शियम, 0.3 प्रतिशत फास्फोरस, 0.5 प्रतिशत मैग्निशियम, 1.5 प्रतिशत

पोटैशियम, 0.16 प्रतिशत सोडियम 0.63 प्रतिशत सल्फर, 8.25 प्रतिशत कोपर, 4.9 प्रतिशत लोहा तथा प्रचुर मात्रा में विटामिन्स पाये जाते हैं। सहजन सभी पशुओं के लिये पूर्ण आहार माना जाता है। मोरिंगा की पत्तियों और हरे तनों को बारिक कुट्टी काटकर पशु को पूरक आहार के रूप में खिलाने से दूध का उत्पादन 43–65 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। इससे मवेशियों के दैनिक वजन में 32 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। एक हेक्टर क्षेत्र में मोरिंगा से प्रति वर्ष औसतन 4.2 से 8.3 टन शुष्क पदार्थ प्राप्त हो जाता है।

बेर (*जिजिफस जुजुबा*):– बेर शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले मुख्य फल वृक्षों में से एक है। इसके सूखे पत्तों को झाड़ कर पशुओं के चारे के रूप में काम में लेते है। बेर की सूखी पत्तियों को पाला कहते हैं। इसकी हरी तथा कच्ची टहनियों को भी बारीक काट कर पशुओं को खिलाया जा सकता है। इसमें प्रोटीन और अन्य पोषक तत्त्व उचित मात्रा में विद्यमान रहते हैं। बेर की पत्तियों में 18.6 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन, 15–18 प्रतिशत कच्चा रेशा तथा 55–60 प्रतिशत कुल पाचक तत्व पाये जाते हैं।

शहतूत (*मोरस अल्वा*):– शहतूत बकरियों के लिये बहुत ही अच्छा चारा है। इसकी हरी पत्तियों को गाय व भैंस भी बड़े चाव से खाती हैं। इसमें कच्ची प्रोटीन, कच्चा रेशा तथा कुल पाच्य पदार्थ की मात्रा क्रमशः 15–25, 9.0 व 59.6 प्रतिशत तक पायी जाती हैं। इसकी पत्तियों से एक हेक्टर में प्रति वर्ष 8–9 टन शुष्क पदार्थ प्राप्त हो जाता है।

नीम (*ऐजायडीरक्टा इंडिका*): – नीम की पत्तियां कडवी होने के कारण गाय भैंस कम खाना पसन्द करती हैं लेकिन भेड़, बकरी, ऊँट बड़े ही चाव से खाते हैं। नीम की पत्तियों में शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता पैदा करने वाले तत्व भरपुर मात्रा पाये जाते हैंस जिनके खाने से कई रोग बीमारियां स्वतः ही ठीक हो जाती हैं। इसको खिलाने से बकरियों तथा छोटे बछड़ों के पेट में कृमी पड़ने की सम्भावना बहुत ही कम रहती है क्योंकि इसकी पत्तियों में कंडेंस्ड टैनिन पाया जाता है जो कृमीनाशक के रूप में ऊपयोग होता है। नीम की छंगाई नवम्बर – दिसम्वर में की जाती है। एक व्यस्क पेड़ से वर्ष भर में 50–70 किलोग्राम हरी पत्तियां प्राप्त हो जाती हैं इसमें क्च्चा रेशा 11.4 –12 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.24, कैल्सियम 1.39, पाचक प्रोटीन 8.3 प्रतिशत तथा कुल पाचक तत्व 53 प्रतिशत तक पाये जाते हैं।

अरडू (*ऐलियन्थस एक्सिलेसा*): – अरडु शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्र का मूल पौधा हैस यह दोमट / बलुई दोमट मिट्टी में बहुत अच्छा उगता है। यह पौधा 20 से 25 मीटर ऊँचाई तक भी बढ़ सकता है। यह तेजी से वृद्धि करने वाला एवं कुछ ही वर्षों में पशुओं के लिए इसकी हरी पत्तियां प्राप्त हो जाती हैं। सिंचित क्षेत्रों में यह पौधा बहुत तेजी से बढ़ता है तथा 4–5 वर्ष में यह 4 मीटर तक ऊँचाई प्राप्त कर लेता है। वैसे यह पौधा जंगल में अपने आप ही बीज से उग जाता है, लेकिन सुचारू रूप से लगाने के लिए पहले नर्सरी में पौधा तैयार कर लेना चाहिए। पौध लगाने के लिए खेत के चारों ओर 5–6 मी. की दूरी पर जुलाई में पौध का रोपण कर देना चाहिए। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से दो बार छंगाई नवम्बर–दिसम्बर तथा मार्च–अप्रैल में करें जिससे 5–6 क्विंटल हरी पत्तियां प्रति वर्ष मिल जाती हैं। इसकी पत्तियां पशु आहार के लिए उत्तम होती हैं जिसे पशु बड़े ही चाव से खाते हैं। पत्तियों में प्रोटीन, कच्चा रेशा, खनिज– लवण तथा वसा क्रमशः 20.00,12.60, 12.00 तथा 3.50 प्रतिशत पाये जाते हैं।

सुबबुल (*ल्युसीना ल्युकोसिफैला*): – यह एक दलहनी तथा बहुत ही पौष्टिक हरा चारा है। यह गर्म तथा शुष्क मौसम में भी बहुत तेजी से बढता है। इसको हर मौसम में 50–60 दिनों के अन्तर से वर्ष में 5–6 बार काटकर पशुओं को खिलाया जा सकता है। इससे प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर लगभग 60 टन तक हरी पत्तियां प्राप्त की जा सकती हैं। इसकी पत्तियों में विटामिन "ए" तथा "बी" अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों में 27.5 प्रतिशत प्रोटीन, 11 प्रतिशत कच्चा रेशा तथा 57 प्रतिशत कुल पाचक तत्व पाये जाते हैं। सुबबुल की पत्तियों में माईमोसिन नामक हानिकारक पदार्थ भी पाया जाता है। इसकी पत्तियों को पशु के कुल आहार का 18–20 प्रतिशत तक ही खिलाया जाना चाहिये।

गुलर (*फाईकस रेसीमोसा*): – गुलर के फल एवं पत्तियों को जुगाली करने वाले पशु बड़े ही चाव से खाते हैं। बकरियों के लिये यह बहुत ही अच्छा चारा है। इसको खिलाने से बकरियों तथा छोटे बछडों के पेट में कृमि पडने की सम्भावना बहुत ही कम रहती है क्योंकि इसकी पत्तियों में कंडेंस्ड टैनिन पाया जाता है जो कृमिनाशक के रूप मे ऊपयोग होता है। इसमें कच्ची प्रोटीन, अपरिपक्व रेशा, खनिज दृलवण तथा कुल पाच्य पदार्थ की मात्रा क्रमशः 15.2, 14.6, 18.4 व 53.8 प्रतिशत तक पायी जाती है।

बरगद (*फाईकस वेनगालेनसिस*): – इसकी पत्तियों को गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट आदि सभी पशु बड़े ही चाव से खाते हैं। इसकी पत्तियों को खिलाने से

दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि होती है। इसमें कच्ची प्रोटीन, अपरिपक्व रेशा, खनिज–लवण तथा कुल पाच्य पदार्थ की मात्रा क्रमशः 7.9, 13.9, 17.9 तथा 44.6 प्रतिशत तक पायी जाती हैं।

बबूल (*अकेसिया अरेविका*): – देशी बबूल की पत्तियां, पतली शाखाएं एवं फली तीनों ही पशुओं को खिलाने के काम आते हैं। अकाल की परिस्थिति में देशी बबूल की पत्तियां हरे चारे की पूर्ति का अच्छा विकल्प है। इसकी फलियां खिलाने से पशु के दूध में वसा की मात्रा बढती है। इसमें कच्चा प्रोटीन 15 प्रतिशत, कच्ची रेशा 20.1 प्रतिशत, कुल पाच्य तत्व 62.3 प्रतिशत तक पाये जाते हैं।

पीपल (*फाईकस रेलिजिओसा*):– पीपल को बकरियां बड़े चाव से खाती हैं। पत्तियों को काटकर खिलाने से बड़े पशु भी चाव से खाते है। इन पत्तियों में कच्चा प्रोटीन 9.66 प्रतिशत, अपरिपक्व रेशा 27 प्रतिशत, कुल पाच्य तत्व 39.22 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.22 प्रतिशत, कैल्शियम 4.10 प्रतिशत तक पाया जाता है।

इस प्रकार किसान भाई बहन उपरोक्त वृक्षों की पत्तियों को पशु आहार के रूप में प्रयोग कर चारे की कमी तथा लागत को कम कर सकते हैं जो ना केवल पशुधन को उचित पोषण प्रदान करेगा बल्कि उत्पादकता बढाकर अधिक आय प्राप्त करने का साधन भी बन सकता है।

पीपल

बबूल

बेर

नीम

शुष्क एवं मैदानी क्षेत्रों में आलू की प्रमुख बीमारियाँ एवं समेकित बीमारी प्रबंधन

सुशील कुमार माहेश्वरी, राम्याश्री देवी, एम. के. जाटव एवं पी. एल. सरोज
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

भारत में आलू उगाई जाने वाली एक महत्त्वपूर्ण फसल है। आलू का प्रयोग लगभग सभी परिवारों में किसी न किसी रूप में किया जाता है। आलू कम समय में पैदा होने वाली फसल है। इसमें स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन विटामिन सी व खनिज लवण काफी मात्रा में होने के कारण इसे कुपोषण की समस्या के समाधान का एक अच्छा साधन माना जाता है। 2017–18 के दौरान (अनुमानित) भारत में आलू का कुल क्षेत्रफल 2176 हजार हे. और उत्पादन 49344 हजार टन है। आलू की खेती हमारे संस्थान के सहयोग से पिछले दो साल से बीकानेर जिले के आस–पास के क्षेत्रों में की जा रही है। हालांकि, आलू की खेती के लिए सर्दियों में पाला पड़ना बहुत नुकसानदायक हो सकता है। आलू की फसल को पछेती झुलसा रोग से सबसे ज्यादा नुकसान होता है। किसान भाई फसलचक्र को नहीं अपनाते है जिससे साग–सब्जियों में रोगों का प्रकोप बहुतायत से मिलता है। आलू की फसल में खरपतवारों, कीटों व रोगों से 42 फीसदी की हानि होती है। शुष्क एवं मैदानी क्षेत्रों में आलू की प्रमुख बीमारियों को पहचान कर उनका समय पर निदान होना अति आवश्यक है। आलू की फसल में कवक से होने वाले रोगों (झुलसा रोग, पत्ती धब्बा रोग एवं उकठा रोग आदि) का समेकित बीमारी प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

1) पछेती अंगमारी रोग

आलू का पछेती अंगमारी रोग बहुत ही विनाशकारी है। सन् 1898 –1900 के दौरान पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में पछेती झूलसा रोग का प्रकोप देखा गया। वर्ष 1945 में आयरलैंड में भयंकर अकाल पड़ा था, यह अकाल इसी रोग के द्वारा हुआ था जिसके कारण आलू की पूरी फसल तबाह हो गयी थी। लेकिन 1956–58 तक यह रोग देश के सम्पूर्ण क्षेत्रों में फैल गया। पहले इस रोग का प्रकोप प्रायः जनवरी के अन्तिम सप्ताह में होता था, परन्तु अब यह रोग दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में भी आ जाता है। बिहार में यह रोग 60 प्रतिशत तक एवं उत्तर प्रदेश में 40 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचाता है।

लक्षण

यह रोग उत्तर प्रदेश के मैदानी तथा पहाड़ी दोनों इलाकों में आलू की पत्तियों, शाखाओं व कंदों पर हमला करता है। जब वातावरण में नमी व रोशनी कम होती है तब इस का प्रकोप पत्तियों से शुरू होता है। इस रोग में 5 दिनों के अंदर पौधों की हरी पत्तियाँ नष्ट हो जाती है। पत्तियों की निचली सतहों पर सफेद रंग के गोले बन जाते हैं, जो बाद में भूरे व काले हो जाते हैं। पत्तियों के बीमार होने से आलू के कंदों का आकार छोटा हो जाता है और उत्पादन में कमी आ जाती है।

रोग कारक : यह रोग *फाइटोपथोरा इनफेसटान्स* नामक कवक के कारण फैलता है।

रोग का स्रोत

इस रोग का फफूंद एक साल से दूसरे साल तक प्रभावित आलू के कन्दों में जिन्हें शीतगृह में रखा गया है जीवित रहता है। ये रोग प्रभावित आलू से ही रोग का मुख्य स्त्रोत बन जाता है। इन प्रभावित कन्दों बीज को खेत में बुआई करने के पश्चात् इन कन्दों पर फफूंद क्रियाशील हो जाती है। मिट्टी के तापमान तथा नमी की मात्रा के अनुसार फफूंद की संख्या बढ़ती है और जड़ एवं तनों को ग्रसित करते हुए पौधों के निचली पत्तियां तक पहुँच जाती है। रोग विकास के दौरान ग्रसित पौधों की पत्तियों पर लाखों की संख्या में फफूँद पैदा होते है। ये फफूँद सिंचाई के पानी से बह जाती है।

फफूँद पौधों की पत्तियों के सर्म्पक में आने पर तथा अनुकूल मौसम प्राप्त होने के कारण तेजी से फैलती है और दूसरे स्वस्थ्य पौधों को भी ग्रसित कर देता है। आमतौर पर अधिक नमी (आर्द्रता) एवं कम तापमान पिछेती झूलसा आने में मदद करता है। रोग के विकास में बादल भी सहायक होता है।

प्रकोप का कारण

क. रोग से ग्रसित कन्द बीजों का प्रयोग।

ख. मौसम का प्रभाव–अधिक नमी (≥85 प्रतिशत

आर्द्रता), कम तापमान (7.72 डिग्री सेल्सियस), बदली का छाया रहना तथा रूक–रूक कर कम वर्षा होना अधिक अनुकुल होता है।

ग. संवेदनशील किस्मों का चयन।

घ. समय पर उपयुक्त एवं प्रभावी फफूँदनाशकों का छिड़काव नहीं करना।

च. लगातार एक ही खेत में आलू की फसल लगाना।

छ. अगर रात ठण्डी एवं आर्द्र हो और दिन गर्म एवं आर्द्र हो तो इस रोग को आने की संभावना अधिक रहती है।

ज. बड़े पौधों में पानी अधिक देने पर रात के तापमान में आर्द्रता और भी अधिक बढ़ जाती है जो इस रोग के फफूँद को पनपने के लिए अनुकुल परिस्थिति उत्पन्न कर देती है और अगर कहीं मौसम भी अनुकुल हो जाय तो यह रोग महामारी के रूप में फैल जाता है। सिंचाई बहुत अधिक और बहुत कम भी सिंचाई इस रोग के फैलाव में सहायक होती है।

समेकित रोग प्रबंधन

- खेत में रोगी पौधों के कचरे व खरपतवारों को इकट्ठा कर के जला देना चाहिए।
- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
- भंडारण से पूर्व कटे हुए व चोट लगे हुए कंद को छाँट दें।
- जिस खेत में रोग का प्रभाव न पड़ा हो उस खेत के बीज का प्रयोग करें।
- बीज कन्द मिट्टी से बाहर न रहे इसके लिए आलू की बुआई के समय मिट्टी चढ़ाते वक्त ऊंची मेंड़े बनाए।
- रोग प्रतिरोधक प्रजातियां जैसे – कुफरी अलंकार, कुफरी ज्योति, कुफरी बादशाह, कुफरी ज्योति, कुफरी सतलज, कुफरी आनन्द, कुफरी गिरिराज, कुफरी कंचन, कुफरी कुन्दन (हाइब्रीड) आदि को उगाना चाहिए।
- आलू की पत्तियों पर कवक का प्रकोप रोकने के लिए फोलेटान (1 ग्रा./ली. पानी में घोल कर) का छिड़काव करना चाहिए।
- 10 लीटर देसी गाय का गोमूत्र में 2 किलो अकौआ की पत्ती, 2 किलो नीम की पत्ती तथा 2 किलो बेसरम पौधे की पत्ती मिलाकर 10–15 दिन तक सड़ाकर इस मूत्र को आधा शेष बचने तक उबाले, फिर इसके 1 लीटर मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर पम्प द्वारा प्रति एकड़ छिड़काव करें।
- मेटालेक्सिल नामक फफूंदीनाशक की 10 ग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में घोल कर उस में बीजों को आधे घंटे डुबाकर उपचारित करने के बाद छाया में सूखा कर बुबाई करनी चाहिए।
- आलू की फसल में क्लोरोथेलोनिल या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (20 ग्राम दवा को 10 लीटर पानी) का 2 से 3 छिड़काव करने चाहिए।

सावधानी–यह रोग पत्तियों की निचली सतह से फैलती है। अतः छिड़काव इस प्रकार करें कि पत्तियों की निचली सतह अवश्य भीग जाये।

2) अगेती अंगमारी रोग

यह रोग आलू की फसल को सब से ज्यादा नुकसान पहुँचाता है। उत्तरी भारत में इस रोग का आक्रमण शरद ऋतु की फसल पर नवम्बर में और बसंत कालीन फसल में फरवरी में होता है। यह रोग कंद निर्माण से पहले ही लग सकता है।

लक्षण : इस रोग के लक्षण पछेती अंगमारी से पहले यानी फसल बोने के 3–4 हफ्ते बाद पौधों की निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे व दूर दूर बिखरे हुए कोणीय आकार के चकत्तों या धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में कवक की गहरी हरी नली वृद्धि से ढक जाते हैं। ये धब्बे तेजी से बढ़ते हैं और ऊपरी पत्तियों पर भी बन जाते हैं। आकार में बढ़ने के साथ साथ ये धब्बे भूरे व काले रंग के हो जाते हैं। रोग का जबरदस्त प्रकोप होने पर पत्तियाँ सिकुड़ कर जमीन पर गिर जाती हैं और पौधों के तनों पर भूरे काले निशान बन जाते हैं। रोग का असर आलू के कंदों पर भी पड़ता है जिससे कंद छोटे रह जाते हैं।

रोग कारक : यह रोग आल्टनेरिया सोलेनाई नामक कवक द्वारा होता है।

समेकित रोग प्रबंधन

- आलू की खुदाई के बाद खेत में छूटे रोगी पौधों के कचरे को इकट्ठा कर के जला देना चाहिए।
- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
- आलू के साथ मक्का, धान, लोबिया, गेहूँ का फसल–चक्र अपनायें।
- आलू के खेतों के नजदीक तम्बाकू–टमाटर कुल (सोलेनेसी परिवार) की फसलों जैसे टमाटर, बैगन, तम्बाकू, मिर्च आदि न लगायें, क्योंकि ये इन रोग कारकों के परपोशी फसलें है।

- फसल को उवर्रकों, विशेषकर पोटाश के साथ नाइट्रोजन की संतुलित मात्रा दें। इन रोगों के प्रकोप से बचाने के लिए 45 दिनों की फसल पर 1.0 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करे।
- रोग प्रतिरोधक किस्म जैसे –कुफरी जीवन व कुफरी सिंदूरी को उगाना चाहिए।
- 10 लीटर देसी गाय का गोमूत्र में 2 किलो अकौआ की पत्ती, 2 किलो नीम की पत्ती तथा 2 किलो बेसरम पौधे की पत्ती मिलाकर 10–15 दिन तक सड़ाकर इस मूत्र को आधा शेष बचने तक उबाले, फिर इसके 1 लीटर मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर पम्प द्वारा प्रति एकड़ छिड़काव करे।
- फसल में बीमारी का प्रकोप दिखाई देने पर फाइटोलान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए।

3) काली रुसी/काली खुरण्ड नामक रोग) ब्लैक स्कर्फ या केंकर रोग)

यह रोग आलू के कन्दों पर लगता है और देश के सभी मैदानी या अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश के फरूखाबाद क्षेत्रों में इसका अधिक प्रकोप होता है।

लक्षण: रोग का आक्रमण मैदानी क्षेत्र में होता है। इस फफूंदी का प्रकोप बुवाई के बाद आरम्भ होता है। रोगी कंदों पर चाकलेटी रंग के उठे हुए धब्बो का निर्माण हो जाता है जो धोने से साफ नहीं होते है और कंदों के सूख जाने का डर रहता है।

रोग कारक : यह रोग *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* नामक फफूंदी के कारण होता है

प्रकोप का कारण :

अ) रोगग्रस्त कन्द बीज का उपयोग।

ब) पोटाश उर्वरक की कमी।

समेकित रोग प्रबंधन

- खेत में छूटे रोगी पौधों के कचरे को इकट्ठा कर के जला देना चाहिए।
- 2 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- 10 लीटर देसी गाय का गोमूत्र में 2 किलो अकौआ की पत्ती, 2 किलो नीम की पत्ती तथा 2 किलो बेसरम पौधे की पत्ती मिलाकर 10–15 दिन तक सड़ाकर इस मूत्र को आधा शेष बचने तक उबाले, फिर इसके 1.0 लीटर मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर पम्प द्वारा प्रति एकड़ छिड़काव करें।
- जड़ सड़न रोग के लिए अरंडी की खली खेतों में प्रयोग करने से बीमारी को कम किया जा सकता है।

4) चारकोल रॉट नामक बीमारी (काला गलन) :

इसका फफूँद मिट्टी में पाया जाता है। मिट्टी का तापमान बढ़ने के साथ यह बीमारी ज्यादा होती है।

लक्षण : तना की सतह राख के रंग की हो जाती है। कंद से सटे तना का भाग काला हो जाता है। जड़ का रंग भूरा होकर सड़ जाता है और उसके बाद यह बीमारी कन्दों को ग्रसित करती है और धीरे–धीरे पूरे आलू को सड़ा देती है।

रोग कारक – यह रोग *मेक्रोफोमीना फेसियोलीना* नामक फफूँद से उत्पन्न होता है।

समेकित नियंत्रण :

- फसल को जल्दी खोदकर निकाल लेना चाहिए।
- किसी कारण से फसल को देर से खोदना पड़े तो खेत में सिंचाई कर दें ताकि मिट्टी का तापमान बढ़ने न पायें।

5) खुरदरा/गॉठ रोग (वार्ट रोग)

इस रोग में कंद, तना एवं नयी शाखाओं पर गाँठ बन जाता है। कभी–कभी पूरा कंद ही विकृति आकृति का दिखता है, जिससे बाजार में आलू का भाव बहुत कम मिल पाता है।

रोग कारक : यह रोग *सिनकाइट्रीयम इण्डोबायोटिकम* नामक फफूँद से होता है।

समेकित नियंत्रण

- गाँठ से प्रभावित कन्द की बुआई नहीं करना चाहिए।
- प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करना चाहिए।
- गाँठ प्रतिरोधक प्रजाति को लगाना चाहिए।

आलू के कंदों का समुचित प्रबन्धन : यदि कोई आलू का कन्द जमीन के उपर दिखाई दे तो उसे मिट्टी से तुरंत ढक दें। खुदाई के बाद भी यदि आलू का कंद प्रकाश के सम्पक्र में आएगा तब भी कंद में हरापन आ जाएगा, इसलिए आलू के भंडारण में भी सूर्य की रोशनी कदापि नहीं पड़नी चाहिए।

वर्तमान कृषि परिवेश में जैव कीटनाशकों (बायोपेस्टीसाईड) की आवश्यकता

प्रज्ञा सिंह[1], ओमपाल सिंह[2] एवं वेंकटेश्वर जल्लारफ[3]
[1]उद्यान शास्त्र विभाग, [2]पादप कार्यिकी विभाग,
जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) 482004 [3]अटारी, जबलपुर (म.प्र.) 482004
'संवादी लेखिका का ईमेल: spragya455@gmail.com

जैव–कीटनाशक पारिभाषिक शब्द उन यौगिकों को परिभाषित करता है जो की व्यापक रासायनिक कीटनाशकों के बजाय विशिष्ट जैविक प्रभाव के माध्यम से कृषि कीटों का प्रबंधन करने के लिए उपयोग किये जाते है। देश में हरित क्रांति के बाद कृषि उत्पादन और उत्पादकता में निरंतर वृद्धि हुई है, लेकिन पिछले कुछ सालों में देखने में यह आ रहा है कि इसमें अब ठहराव आ गया है। फसलों में लगने वाले कीट, रोग और खरपतवार के नियंत्रण के लिए रासायनिक दवाओं से फसल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। कीट नियंत्रण के लिए 1990 के दशक से, सिंथेटिक कीटनाशकों का बहुत अधिक उपयोग किया गया है, जिससे खाद्य उत्पादन में वृद्धि तो हुआ है परन्तु इन रासायनिक कीटनाशकों अंधाधुंध उपयोग के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जैसे–मिट्टी की स्वास्थ्य, पानी की गुणवत्ता, उत्पादन पर, कीटनाशक प्रतिरोध, रोगनाशक प्रतिरोध, पौधों में आनुवंशिक भिन्नता, भोजन में जहरीले अवशेष, कीट पुनरुत्थान, द्वितीयक कीट का अधिक प्रकोप आदि. इन प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए जैव कीटनाशकों (बायो पेस्टिसाइड) का उपयोग करने की आवश्यकता है।

समन्वित कीट नियंत्रण के महत्वपूर्ण करने योग्य कार्यः–

- फसल कटाई के बाद व गर्मियों में गहरी जुताई करें।
- अनुकुल फसल चक्र अपनाएं।
- जैविक संघटकों (बायोएजेन्ट्स) से बीजोपचार करें।
- रोग एवं कीट प्रतिरोधक किस्मों का चुनाव करें।
- यांत्रिक विधि द्वारा लटों व कीटों को पकड़कर नष्ट करें।
- पौधों के रोग एंव कीट ग्रसित भाग को नष्ट करें।
- फसल को खरपतवारों से मुक्त रखें।
- फसल के अवशेषों को नष्ट करें।
- फसल में विभागीय सिफारिश अनुसार प्रकाशपाश, फेरोमेन ट्रेप लगायें। ट्रेप में फंसी वयस्क तितलियों को प्रतिदिन गड्ढ़ा में नष्ट करें।
- फसलों में मित्र कीट एवं परजीवी कीटों को छोड़ें।
- कीटों की संख्या आर्थिक स्तर से अधिक होने पर ही कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- नीम आधारित कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- आवश्यकता पर आधारित, न्याय संगत तथा सुरक्षित कीटनाशकों का छिड़काव करें।
- किसी भी कीट के नियंत्रण हेतु एक से अधिक कीटनाशकों का छिड़काव करें अर्थात् प्रत्येक छिड़काव में अलग अलग कीटनाशक प्रयोग में लेवें।
- किसी भी कीटनाशक का उपयोग दोबारा न करें। ऐसे किसी भी कीट नाशक का छिड़काव न करें जो फसल की वानस्पतिक वृद्धि करता है।
- जहां तक सम्भव हो सिन्थेटिक पायरेथ्राइड्स का छिड़काव/भुरकाव हेतु सही उपकरण ही काम में लेवें।

बायोपेस्टीसाइड्स का उपयोग एवं इसके लाभ का विवरण निम्नानुसार है।

ट्राईकोडर्माः– ट्राईकोडर्मा एक मित्र फफूंद है जो फसलों में जड़गलन, उखटा, तनागलन एवं कॉलर रोट आदि रोग पैदा करने वाले परजीवी फफूंद की वृद्धि रोककर उन्हें धीरे–धीरे नष्ट करता है। इससे फसलों के बीजों को उपचारित करने पर उक्त बीमारियों से फसल को बचाया जा सकता है। यह प्रदूषण रहित तथा पशुओं एवं मनुष्यों के लिये सुरक्षित जैविक फफूंदनाशी है। यह कम खर्चीला तथा लाभकारी है। जहां पर रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा रासायनिक नियंत्रण अप्रभावी हो जावें, ऐसे में ट्राइकोडर्मा द्वारा जैविक उपचार करना संभव होता है।

ब्रोमोडायलिन :– चूहें खेतों में खड़ी फसल को काटकर व पकी हुई फसल के दानों को खाकर नुकसान करते हैं। चूहों की रोकथाम ब्रोमोडायलिन (0.005 प्रतिशत) डेढ किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग कर फसलों को चूहों से बचाया जा सकता है।

लाइट ट्रेपः– प्रौढ भृंग एवं मौथ प्रकाश की ओर आकर्षित होकर लाइट ट्रेप के नीचे बंधे बैग में एकत्रित हो जाते है, जिन्हें नष्ट कर दिया जाता है। लाइट ट्रेप के नीचे चौड़े पात्र में केरोसीन युक्त पानी भरकर रखें, जिससे प्रकाशपाश की ओर आकर्षित होकर गिरने वाले भृंग व मौथ मर जाते हैं। यह एक सरल व सुगम विधि है, जिसमें पर्यावरण को बिना नुकसान पहुंचाये कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है। यहां ध्यान रखे कि हानिकारक कीटों के साथ मित्रकीट आकर्षित होकर नष्ट होने लगे तो प्रकाशपाश बन्द कर देना चाहिये। इस विधि से भृगों एवं मौथ को नष्ट करने के साथ–साथ सधनता का आकलन कर अन्य नियंत्रण उपाय अपनाये जा सकते हैं।

फेरोमोन ट्रेप एवं ल्योरः– मादा कीट के जननांग से निकलने वाली गंध के समान बनायी गयी कृत्रिम गंध रसायनों को फेरोमोन कहते है। नर कीड़ों को आकर्षित करने के लिए इन फेरोमोन रसायनों को रबर के टुकड़ों में लगाया जाता है यह सूंडी के नर वयस्कों को आकर्षित करने के काम आते है। ट्रेप के नीचे बंधी थैली/बैग में एकत्रित हुए नर वयस्कों को प्रतिदिन नष्ट कर जमीन में गाड़ दिया जाता हैं। यह विधि पर्यावरण को बिना नुकसान पहुंचाये लगाये गये ल्योर से सम्बधिंत नर वयस्कों को आकर्षित करता है इस विधि से न केवल हानिकारक कीट वयस्कों को समाप्त किया जा सकता है वरन् प्रतिदिन उनकी उपस्थिति का आंकलन कर सघनता की जांच से कीट के प्रकोप का ई.टी.एल. स्तर जांचा जा सकता है।

एन.पी.वीः– एन.पी.वी एक प्रकार का विषाणु है जो कि जाति विशेष के हानिकारक कीटों का सफलता पूर्वक नियंत्रण करता है। यह पूर्णयता सुरक्षित जैविक कारक है। जिसका वातावरण पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है एवं अन्य परजीवी, परभक्षी , पक्षी एवं मानव जाति पर कोई विपरीत असर नही पड़ता है। यह विषाणु मुख्यतया प्रोटीन के बने होते है, जिनमें डी.एन.ए. की संरचना बना होती है। जबकि हानिकारक कीट की लट इस विषाणु को खाती है तो यह इसकी आहार नली में चला जाता है जहां उदर के मध्य भाग में क्षारीय माध्यम में इसका प्रोटीन को आवरण नष्ट हो जाता है एवं वायरस की संरचनाऐं मुक्त हो जाती है जो विभिन्न अंगो की कोशिकाओं में पहुंचकर

विद्युत चलित प्रकाशपाश

सौर चलित प्रकाशपाश

फेरोमोन ट्रेप

ट्राईकोग्रामा

बहुत तेजी से गुणन करती है। शुरू में लट खाना कम कर देती है एवं 4–8 दिन में मर जाती है। मरी हुई लटें प्रायः लटकी हुई पाई जाती है। इन लटों का रंग प्रायः हल्का पीला होता है। एवं फूली हुई होती है जिनमें से जरा सा हिलाने पर द्रव बाहर निकलता है। इस प्रकार एन.पी.वी. लटों को नष्ट करता है। एन.पी.वी. घोल का छिड़काव सायकाल के समय करना चाहिये। क्योंकि दिन में सूर्य के प्रकाश में पराबैगंनी किरणों के द्वारा इसका तेजी से विखण्डन होता है।

अजाडिरेक्टिनः– कीट नियंत्रण के लिये नीम से बने कीटनाशक का प्रयोग करके पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जा सकता है। नीम के तेल में पाये जाने वाले अजाडिरेक्टिन तत्व का विभिन्न सांद्रता में फसलों पर प्रयोग अन्य सिन्थ्रेटिक पौध–सरंक्षण रसायनों के विकल्प के रूप में प्रयोग कर फसलों में लगने वाले कीटों से बचा जा सकता है। यह विष रहित होने के साथ–साथ सभी हानिकारक कीटों के प्रति प्रभावशाली नियंत्रक है।

ट्राईकोग्रामाः– ट्राईकोगामा परजीवी एक छोटा सा कीट है जो मक्का फसल में तना छेदक आदि के कीटों के अण्डों में अपने अण्डे देकर अपना जीणनचक्र पूरा करता है। आकार में यह इतना छोटा होता है कि एक आलपिन के सिरे पर 8–10 वयस्क ट्राइकोग्रामा एक साथ बैठ सकते है। इस कीट का जीवन चक्र अण्डे की अवस्था से प्यूपा की अवस्था तक अपने परपोषी जीव के अण्डे में पूरा होता है एवं वयस्क अवस्था में बाहर निकलकर पुनः अपना जीवन चक्र प्रारम्भ करने हेतु अण्डों की तलाश शुरू कर देता है इसलिये इसे अण्ड परजीवी कहते है।

गर्मी के मौसम में इसका जीवन चक्र 8–10 दिन में और सर्दी में 9–12 दिन में पूर्ण होता है। खेत में ट्राईकोकार्डस इसकी वयस्क निकलने की तिथि से एक दिन पूर्व ही लगाने चाहिये वरना परभक्षियों द्वारा इनका भक्षण करने की संभावना रहती है। लगाने से पूर्व ट्राईकोकार्डस की स्ट्रिप को अलग कर देना चाहिये। ट्राइकोग्रामा एक अण्ड–परजीवी होने के कारण हानिकारक परपोषी जीव के अण्डों में अपना जीवन चक्र पूरा कनता है। अतः पर्यावरण को बिना नुकसान पहुचाए हानिकारक कीटों के अण्डों को नष्ट कर देता है।

बी.टी. (*बेसिलस थुरेन्जेन्सिस*)ः– बेसिलस थुरेन्जेन्सिस का प्रयोग लेपीडोप्टेरा कीटों (लटों) कें नियंत्रण के लिये किया जाता है। यह एन.पी.वी. की भांति पर्यावरण को बिना नुकसान पहुचाए हानिकारक लटों को नष्ट करता है।

बायोपेस्टीसाइड्स का उपयोग करने के फायदेः–

1. आमतौर पर पारंपरिक कीटनाशकों की तुलना में जैव कीटनाशक कम विषैले होते हैं।
2. जैव कीटनाशक आमतौर पर लक्ष्य कीट और निकट संबंधी जीवों को प्रभावित करते हैं। ये अत्यंत विशिष्ट प्रकार के होते हैं तथा विशिष्ट पोषकों को ही प्रभावित करते है। अतः केवल हानिकारक कीट ही प्रभावित होते है तथा लाभदायक कीट अप्रभावित रहते हैं।
3. कीटों में जैव कीटनाशक के प्रति प्रतिरोधिता विकसित नहीं होती है।
4. खाद्य चारे तथा रेशों में कोई हानिकारक अवशेष नहीं रहते हैं।
5. बायोपेस्टीसाइड की बहुत कम मात्रा प्रभावी होता है और ये जल्दी से विघटित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कम जोखिम होता है और पारंपरिक कीटनाशकों के कारण होने वाली प्रदूषण की समस्याओं से काफी हद तक बचा जाता है।
6. रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में इनका मूल्य कम होता है।

> “भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है। हिन्दी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।”
>
> **- नरेन्द्र दामोदर दास मोदी, भारत के प्रधानमंत्री**

शीतलहर एवं पाले से फलवृक्षों तथा सब्जियों को बचायें

[1]आर. सी. साँवल [2]दयानन्द, [3]रुप चन्द बलाई[3] एवं [3]सी. एल. मीना
[1]स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान), [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर,
[3]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

राजस्थान राज्य में दिसम्बर व जनवरी महीनों में पाले का प्रभाव होता है। सर्दी के मौसम में पाले से सभी फसलों, फलदार पौधो तथा सब्जियों को थोड़ा या अधिक नुकसान तो होता ही है। टमाटर, मिर्च, बैंगन आदि सब्जियों, पपीता एवं केले के फलवृक्षों तथा मटर, चना, सरसों, जीरा, धनियॉं, सौंफ, अफीम आदि फसलों में पाले से सबसे अधिक नुकसान की संभावना रहती है। पाले एवं शीतलहर से फलवृक्षों तथा फसलों पर नुकसान का प्रतिशत 90 प्रतिशत तक हो सकता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि पाला पड़ते समय फसल की कौन सी अवस्था है तथा पाला एवं शीतलहर कितने समय तक कितनी सधनता से रहती है।

पाला पड़ने के लक्षण तथा अनुमान :– जब शीतऋतु में तापमान 0 डिग्री सेल्सियस से नीचे गिर जाता है दोपहर बाद अचानक हवा का बहाव बन्द हो जाये तथा आसमान साफ रहे तो यह उस रात पाला पड़ने के संकेत है। पाला रात में विशेषतया 12 से 4 बजे के बीच में पड़ता है।

पाले के नुकसान :– पाले के कारण फलवृक्षों, सब्जियों तथा फसलों के तनों, पत्तियों व फूलों तथा फलों में उपस्थित द्रव बर्फ के रूप में जम जाता है। सूर्य की रोशनी से जब यह द्रव (बर्फ) पिघलना शुरू होती है तो पौधों के इन भागों की कोशिकाऍं फट कर नष्ट हो जाती है। जिससे पौधों की पत्तियां झुलसी हुई दिखाई देती है। फूल व फल झड़ जाते हैं, अधपके फल व कलियां सिकुड़ जाते हैं तथा उनमें झुर्रिया पड़ जाती है।

पाले से टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, केला, पपीता इत्यादि को ज्यादा नुकसान पहुँचता है।

शीतलहर एवं पाले से उद्यानिकी फसलों के सुरक्षा के उपाय:–

1. पाला पड़ने की संभावना हो तो खेत की उत्तरी–पश्चिमी दिशा में खेतों के किनारे, फलवृक्षो के बीच–बीच में कई जगहों पर कूड़ा–कचरा सुखी घास एकत्रित करके 10 से 20 फीट के अन्तर पर अर्धरात्रि में जलाकर धुँआ करना चाहिए ताकि वातावरण मे गर्मी आ जाये। अधिक धुँए के लिए इन पदार्थो के साथ इंजन के जले हुए तेल (क्रुड ऑयल) का प्रयोग भी कर सकते है।
2. फलदार वृक्षों पौधशालाओं (नर्सरी) के पौधों एवं सीमित क्षैत्र वाले बगीचो, नगदी सब्जी वाली फसलों को टाट, पोलीथिन अथवा भूसे से ढक देवें अथवा उत्तर–पश्चिम दिशा की तरफ वायुरोधी टांटीयॉं बांधे। इससे खेत के अन्दर गर्मी बनी रहेगी।
3. पाला पड़ने की संभावना होने पर फलवृक्षों तथा सब्जियों में सिंचाई करना चाहिए इससे खेत का तापक्रम कम नही हो पाता है साथ ही पानी की गुप्त ऊर्जा के कारण नमीयुक्त जमीन मे काफी देर तक गर्मी रहती है। इस प्रकार पर्याप्त नमी रहने से पाले से नुकसान की संभावना कम रहती है।
4. फलवृक्षों तथा सब्जियों कों रसायनों का छिड़काव करके भी इन्हें शीतलहर एवं पाले के नुकसान से बचाया जा सकता है। इसमें सबसे सस्ता, कारगर एवं आसानी से उपलब्ध गन्धक का तेजाब है। पाला पड़ने की संभावना हो उन दिनों की शुरूआत में ही फलवृक्षों व सब्जियों पर व्यापारिक गंधक के तेजाब के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए। इसके लिए एक लीटर गंधक तेजाब को 1000 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव कर सकते है। इसके लिए केवल प्लास्टिक स्प्रेयर का ही प्रयोग करना चाहिए। छिड़काव करते समय ध्यान रखें कि पूरे पौधों पर घोल की फुहार अच्छी तरह लगे। एक छिड़काव का असर पौधों को 10 से 15 दिन तक पाले के प्रभाव से बचा सकता है। इस अवधि के बाद भी पाले की संभावना बनी रहे तो 15 दिन

के अन्तराल पर छिड़काव दोहराए। गंधक के तेजाब से पौधों की कोशिकाओं में सल्फाहाईड्रिल समूह की मात्रा बढ़ जाती है इससे प्रोटीन में डाई–सल्फाइड बॉड बन जाते हैं। इसके कारण तापमान कम होने पर भी प्रोटीन श्रृंखला का विखण्डन नही होता है जिससे पाले का फसल पर दुष्प्रभाव नही होता है।

5. दीर्घकालीन/स्थायी उपाय के रूप में फलवृक्षों, फसलों व सब्जियों को पाले के कुप्रभाव से बचाने के लिए खेत की उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर तथा बीच–बीच में उचित स्थानों पर वायु–अवरोधक पेड़ लगाने चाहिए। इसके लिए शीशम, शहतूत, बबूल, खेजड़ी, अरडू, जामून तथा नीम इत्यादि वायुरोधी वृक्ष तथा झाड़ियों के रूप में मेहन्दी, करौन्दा के पौधे लगा सकते है। वायुरोधी वृक्षों से बगीचों को शीतलहर एवं पाले से बचाने के साथ–साथ गर्मी, तेज आंधी एवं लू से भी सुरक्षा मिलती है।

इस प्रकार किसान भाई अपनी सुविधानुसार उपलब्ध साधन के अनुसार पाला पड़ने की संभावना होने पर समय रहते किसी भी उपाय को अपनाकर अपनी फसलों को पाले से बचा सकते हैं।

"भाषा हमारे माथे की बिंदिया है जो जन-जन में समरसता और संवाद में सहजता का आर्विभाव कराती है तथा सभी को एक सूत्र में बांधती है। भाषा उस नदी के समान है जो शीतल, मधुर जल से मानव मात्र को आप्लावित करती है, सुखों-दुखों में साथ निभाने का हौसला बढ़ाती है। विश्व के एकीकरण तथा विश्व को एक सूत्र में आबद्ध करने में भाषा से अधिक कोई भी तत्व बलवती नहीं हो सकता।"

-लोकमान्य तिलक

"ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।"

-राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'

मरुस्थलीय जीवन में मतीरा का सामाजिक-आर्थिक महत्व

शिवराम मीना, मुकेश कुमार जाटव और रूप चंद बलाई
भाकृअनुप—केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

परिचय

मरुस्थलीय के अधिकांश भागों में 20—50 सेन्टीमीटर तक वार्षिक वर्षा होती है जो भी अनिश्चित तथा अविषम होती है। बाडमेर तथा जैसलमेर जैसे जिलो में तो औसतन वार्षिक वर्षा केवल 10 सेन्टीमीटर तक ही होती है। गर्मी के मौसम में यहॉ पर कई स्थानों का तापक्रम 19 सेन्टीग्रेण्ड तक तथा सर्दियो के मोसम में न्यूनतम तापमान (—) 3 सेन्टीग्रेण्ड तक चला जाता है। इस भाग में पानी का अभाव है। भूमि जल बहुत अधिक गहराव लवणीय है जो फसलीकरण व पीने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। इस क्षेत्र में बलुई मिट्टी है। यहाँ के अधिकतम भू—भाग पर रेते के टीले ही टीले दिखाई पड़ते हैं। तेज हवाओं के कारण ये रेत के टीले उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं और उपजाऊ भूमि को भी खराब कर देते हैं। इन उपरोक्त असामन्य और विपरित परिस्थितियों में कोई भी फसल उगाना या खेती करना बहुत ही कठीन कार्य है। लेकिन प्रकृति के अपने कुछ नियम होते हैं और जहाँ कि जैसी परिस्थितियां/वातावरण होता है, वहाँ पर प्रकृति कुछ ना कुछ ऐसे संसाधन उत्पन्न करती है जो वहाँ के जीवनयापन में मददगार होते हैं।

मरुक्षेत्र में मतीरा का सफल उत्पादन यहाँ के जन जीवन के लिए प्रकृति का वरदान ही माना जायेगा। क्योंकि यहां की कठोर व रूक्ष परिस्थितियों में दूसरी फसलों को उगाना बहुत कठीन कार्य है। मतीरा का उत्पादन यहां सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह इस जन जीवन के जीवन निर्वाह में प्रमुख भूमिका निभाता है। मतीरा का फल यहां के निवासियों के लिए अमृत फल के समान एक बहु उपयोगी फल है। लोग इसको ताजा फल, सब्जी, सूखे व अकाल में पीने के पानी के मुख्य स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं पारिस्थिकीय दृष्टि से मतीरा उत्पादन का इस क्षेत्र में बहुत महत्व है। इस क्षेत्र के लिए मतीरा के महत्व व उपयोगिता निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं :—

(अ) पोषण का स्त्रोतः मरुक्षेत्र के निवासी मतीरे को विभिन्न रूप में खाने—पीने के काम मे लेते हैं। यह बहुत ही पौष्टिक व स्वास्थवर्धक होता है।

ताजा फल के रूप में: मतीरे के फल को लोग ताजा फल के रूप में खाते हैं। पके हुए फलों में 95—96 प्रतिशत जल, 3.2—3.3 प्रतिशत कार्बोहाइडेट, 0.2 प्रतिशत वसा तथा आवश्यक मात्रा में खनिज पदार्थ होते हैं, जिनमे पोटेशियम प्रमुख हैं। भूख—व प्यास को मिटाने, शरीर में पानी की कमी तथा गर्मी को दूर करने के लिए इसे ताजा फल के रूप में प्रातः खाली पेट खाते हैं।

सब्जी के रूप में : मतीरे की फसल की बुवाई के करीब 40—50 दिन बाद, उनकी बेलो पर 80—100 ग्राम वजन वाले छोटे छोटे कच्चे फल हो जाते है इनको स्थानीय भाषा में लोईयॉ बोलते है, को तोड़ लेते हैं और उन्हे सब्जी बनाने के काम में लेते हैं। इन लोइयों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, रेशा, केल्शियम, व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लोइये, शुष्क क्षेत्रों की प्रमुख सब्जियों में से एक है। अधपके मतीरे के गूदे को सलाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

मतीरा शरबतः मतीरा के पके हुए फल में 95—96 प्रतिशत पानी पाया जाता है। फल के गूदे को हाथों से रोंधने पर उसका रस बन जाता है। अब इसको छान कर आवश्यकता अनुसार चीनी, कालीमिर्च, कालानमक, सौंफ, कालाजीरा, आदि मिलाकर व स्वादानुसार नींबू मिलाकर

पीया जाता है। इस प्रकार से बना शरबत पौष्टिक तो होता ही है, साथ में ही गर्मी में लू लगने से भी बचाता है।

परिरक्षित रस के रूप में: शुष्क क्षेत्रों में मतीरा का फल ही एक ऐसा फल है जिसको किसान अपनी पारम्परिक विधियों के द्वारा लम्बे समय तक सुरक्षित रख सकते हैं। जैसा कि आप जानते है मरुस्थलीय क्षेत्रो में वर्षा व पानी दोनों का ही अभाव बना रहता है। सूखे व अकाल की स्थिति हमेशा ही बनी रहती है। इन परिस्थितियों में, विशेषकर दूर दराज के क्षेत्रो में, पीने के पानी की भंयकर किल्लत आ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में परिरक्षित मतीरों का पानी ही लोगों के लिए जीवन रेख बन जाता है। ग्रामीण लोग अपने अनुभवों के आधार पर वर्षा का अनुमान लगा लेते हैं कि इस बार पीने के पानी की कमी आ सकती है तो वर्तमान मतीरे की फसल के अच्छे–अच्छे फलों को छांटकर उन्हें किसी सुरक्षित स्थान पर भूमि में बड़ा गड्ढा बना कर उसमें उनका भण्डारण कर देते हैं। गड्ढे पर रेतीली मिट्टी डालकर थोड़ा पानी डाल देते हैं जिससे कि गड्ढे में नमी बनी रहे है और भण्डारित मतीरे के फल सूखे नही। अधिक तापमान व गर्म हवाओं के प्रकोप से बचाने के लिए भण्डारण गड्ढे के उपर खींप या घास–फूस का झोंपड़ा बना देते हैं। इस तरह मतीरे के फलों में उपस्थित रस को पानी के रूप में 5–6 महीनों तक सुरक्षित रखा जाता है और आवश्यकता अनुसार अत्यधिक गर्मी में पानी की कमी के दौरान प्रयोग में लिया जाता है।

पौष्टिक बीज: मतीरा का उत्पादन केवल ताजा फल खाने, सब्जी बनाने तथा रस पीने के लिए ही नहीं किया जाता वरन् इसकी खेती बीजों के उत्पादन के लिए भी की जाती है। मतीरे के बीजों में 10–12 प्रतिशत प्रोटीन एवं अमीनो एसिड पाया जाता है। परिपक्व फलों को एकत्रित कर उनके पके हुए बीजों को निकलाकर सुखा देते हैं। सूखने के बाद, साबूत बीजों को भूनकर, मिर्च मसाला मिलाकर खाया जाता है। किसानों का मानना है कि इसके बीज शक्तिवर्धक, स्वास्थवर्धक, पाचक और बुद्धि को तेज करने वाले होते हैं। मतीरे के बीजों को गरीबों के काजू भी कहा जाता है।

शीतल पेय के रूप में: स्थानीय लोग मतीरे के बीजों से गर्मी के मौसम में रस निकालकर पीते हैं, जिसको 'ठण्डाई' कहा जाता है। यह बहुत ही पौष्टिक और शरीर को ठण्डक पहुँचाने वाली होती है। इसके लिए परिपक्व बीजों एकत्रित करके उन्हें धूप में अच्छी तरह सूखा लेते हैं। सूखे बीजों का छिलका उतारकर उनकी गिरी निकाल लेते हैं। मतीरे बीज की गीरी (बीज पत्रो) को सोंफ, कालीमिर्च, गुलाब के फूल की पंखुड़ियों, काकड़ी के बीज गीरी आदि के साथ मिलाकर पीस लेते हैं। इस मिश्रण में आवश्यकता के अनुसार ठण्डा दूध व चीनी मिलाकर कपड़े या छलने से छानकर पीया जाता है। शादी विवाह, त्यौहारों व अन्य शुभ अवसरों पर इस प्रकार का पेय बहुत बनाया जाता है।

(ब) आय का साधन: मरुस्थलीय क्षेत्रों में मतीरे का उत्पादन घरेलू उपयोग के साथ–साथ नगद फसल के रूप में भी किया जाता है। किसान मतीरे की खेती मुख्य रूप से खरीफ के मौसम में ही करते हैं। परन्तु नहरी क्षेत्रों या जिन किसानों के पास सिंचाई के साधन हैं, वे मतीरे की खेती गर्मी के मौसम में भी करते हैं। मतीरे के विभिन्न उत्पादों से किसानों को अच्छी आय हो जाती है। मतीरे की खेती से निम्नानुसार आय अर्जित की जा सकती है:–

परिपक्व फलों से: किसान पके हुए मतीरा फलों को स्थानीय बाजारों, मण्डियों में ले जाकर बेचता है जिससे उन्हें अच्छी आय हो जाती है। मतीरे के फलों का भाव, उसके वजन, आकार, गुणवता उत्पादन, अवसर/मौसम, आदि पर निर्भर कता है। मतीरे का एक फल 2 से 8 रूपये तक का बिक जाता है। अधिकांश किसान मतीरों को तराजू से तौलकर नही बेचते। वे मतीरों को नग (संख्यां) के हिसाब से बेचते हैं इससे अच्छा धन लाभ कमाते हैं।

कच्चे फलों (लोइयों) से: मतीरो की बुवाई के करीब 40–50 दिन बाद बेलों पर 80–100 ग्राम भार वाले छोटे फल लग जाते हैं जिन्हें लोईया कहा जाता है। लोईया बहुत कच्चे होते हैं। इनको सब्जी बनाने में प्रयोग लिया जाता है। आजकर लोईयों की माँग अन्य क्षेत्रों में बढ़ती जा रही है। मतीरा के लोईये स्थानिय बाजारों/मण्डियों में 4 से 5 रूपये प्रति किलो के भाव से आसानी से बिक जाते हैं।

बीजों से: मतीरे की खेती का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य बीजोत्पादन भी है। किसान अपने खेतों पर उपजे मतीरा के बीजों सुखा कर स्थानीय बाजारों में रू. 20 से 25 प्रति किग्रा के भाव से विक्रय करते हैं।

पशुचारा सामग्री से : शुष्क क्षेत्रों में चारे के अभाव में मतीरा उत्पाद के अवशेष जैसे बेल–पत्ते, फल के छिलके, बीज की खली पशुओं को खिलाने के काम में लेते है। जिन किसानों के मतीरा का उत्पादन अधिक होता है और पशुधन नहीं रखते हैं, वे मतीरे की खेती के अवशेषों के चारे के रूप में, बेचकर आय अर्जित करते हैं।

मतीरा तेल से: मतीरे के बीजों (बीज पत्रों) में 35–40 प्रतिशत वसा होती है। इसमें से खुशबु युक्त छल्का पीला रेशे निकलता है जो बहुत ही स्वादिष्ट और गुणकारी होता है। कुछ किसान इसके तेल को निकलवाकर बेचते हैं। जिससे उन्हें अतिरिक्त आय हो जाती है।

सांराशः उपर्युक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि जहां पर फसल उगाना बड़ा ही कठिन कार्य है, वहां मतीरा की खेती बहुत कम लागत के साथ आराम हो जाती है। यह पोषण के साथ–साथ आय का एक अच्छा स्त्रोत है। मतीरा फल का धार्मिक और औषधीय महत्व भी है। इसकी खेती पारिस्थतिकीय कारकों के संरक्षण व विकास में भी अग्रणीय भूमि का निभाती है। इसलिए मतीरे की खेती को शुष्क क्षेत्रों में और बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मतीरे की सूखा प्रतिरोधी, अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों का विकास किया जाना चाहिए। किसानों की मतीरा की खेती के पारम्परिक ज्ञान को प्रयोग में लेते हुए, अधिक फायदेमन्द व आधुनिक तकनिकियों का विकास करके मतीरे की खेती के प्रति किसानों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

मतीरा बेल और इनसेट में मतीरा फल

कृषि विज्ञान में केरियर के अवसर

प्रेम प्रकाश पारीक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत में कृषि कई वर्षों से की जा रही है। कृषि के क्षेत्र से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लगभग 64 प्रतिशत लोग जुड़े हुए हैं। कृषि केवल पारम्परिक किसनों के लिए ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र से आजकल युवा भी अपना करियर बना सकते हैं। इस क्षेत्र में रोजगार के लिए आप नए व आधुनिक तरीके से फसलों की खेती करके कृषि उत्पादों की मार्केटिंग करके भी अपना बेहतर भविष्य बना के अच्छी सैलरी कमा सकते हैं।

कृषि विज्ञान, विज्ञान की ही एक प्रमुख विधा है, जिसमें कृषि उत्पादन, खाद्य पदार्थों की आपूर्ति, खेती की गुणवत्ता सुधारने, क्षमता बढ़ाने आदि के बारे में बताया जाता है। इसका सीधा सम्बन्ध जीव विज्ञान से है। इसमें जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित के सिद्धान्तों को शामिल करते हुए कृषि क्षेत्र की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया जाता है। उत्पादन तकनीक को बेहतर बनाने के लिए अनुसंधान एवं विकास को इसके पाठ्‌क्रम में शामिल किया गया है। इसकी कई शाखाएँ जैसे पादप विज्ञान, खाद्य विज्ञान, पशु विज्ञान व मृदा विज्ञान आदि है, जिनमें विशेषज्ञ बनकर इस क्षेत्र आगे बढ़ा जा सकता है।

कृषि विज्ञान में केरियर बनाने के इच्छुक छात्रों को वनस्पति विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं गणित की जानकारी होना बहुत जरूरी है। ऐसे कई अधिस्नातक, स्नात्तकोत्तर, डिप्लोमा व विद्यावाचस्पति कोर्स हैं, जो कृषि विज्ञान की उपाधि प्रदान करते हैं। इसके स्नातक कोर्स (बीएससी कृषि) में प्रवेश के लिए कृषि या विज्ञान विषय में 50 प्रतिशत अंकों के साथ 10+2 पास होना जरूरी है। कोर्स की अवधि चार वर्ष है। दो वर्षीय मास्टर प्रोग्राम के लिए बीएससी अथवा बीटेक की डिग्री आवश्यक है। मास्टर डिग्री (एमएससी/एमटेक) के बाद पीएचडी की राह आसान हो जाती है। कई ऐसे संस्थान हैं, जो पीजी डिप्लोमा कोर्स कराते हैं। कृषि विज्ञान में निम्नलिखित कोर्स किए जा सकते हैं –

1. कृषि (ऑनर्स) में स्नातक
2. कृषि में स्नात्कोत्तर
3. कृषि अभियांत्रिकी में स्नातक और स्नात्कोत्तर
4. कृषि (बायोटेक्नोलॉजी) में स्नातक और स्नात्कोत्तर
5. कृषि (बायोकेमिस्ट्री/इकोनॉमिक्स) में स्नातक और स्नात्कोत्तर
6. कृषि जल प्रबंधन में एमटेक
7. सभी कृषि विषयों में पीएचडी उपाधि कोर्स
8. कृषि व्यवसाय प्रबंधन में स्नातक, स्नात्कोत्तर और पीजी डिप्लोमा
9. कृषि विपणन प्रबंधन में पीजी डिप्लोमा
10. कृषि जल प्रबंधन में पीजी डिप्लोमा

कृषि विज्ञान के क्षेत्र में प्रोफेशनल्स की वेतन उनकी योग्यता, संस्थान और कार्य अनुभव पर निर्भर करती है। सरकारी क्षेत्र में कदम रखने वाले ग्रेजुएट प्रोफेशनल्स को प्रारम्भ में 20–25 हजार रुपए प्रतिमाह मिलते हैं। कुछ साल के अनुभव के बाद यह राशि 40–50 हजार रुपए प्रतिमाह हो जाती है, जबकि प्राइवेट सेक्टर में प्रोफेशनल्स की स्किल्स के हिसाब से वेतन दिया जाता है। यदि आप अपना फर्म या सलाहकार सेवाकेन्द्र खोलते हैं तो आमदनी की रूपरेखा फर्म के आकार एवं स्वरूप पर निर्भर करती है। टीचिंग व रिसर्च के क्षेत्र में भी पर्याप्त वेतन मिलता है। कृषि विज्ञान में डिग्री / डिप्लोमा कोर्स करने के पश्चात निम्नलिखित पदों पर नियुक्ति प्राप्त हो सकती है –

1. कृषि वैज्ञानिक
2. कृषि विस्तार अधिकारी
3. ग्रामीण विकास अधिकारी
4. प्रक्षेत्र अधिकारी
5. कृषि क्रेडिट अधिकारी
6. कृषि प्रोबेशनरी अधिकारी
7. पादप संरक्षण अधिकारी
8. बीज उत्पादन अधिकारी
9. एग्रीकल्चर असिस्टेंट/टेक्निकल असिस्टेंट
10. पादप कीट/रोग अधिकारी

इसके सभी कोर्सों में प्रवेश एक प्रक्रिया के बाद मिलता

है। प्रवेश परीक्षाएँ सम्बन्धित संस्थान, विश्वविद्यालय अथवा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर), नई दिल्ली द्वारा कराई जाती है। कुछ चुनिंदा संस्थान आईसीएआर के अंक को आधार बनाकर प्रवेश देते हैं। भाकृअनुप स्नात्तकोत्तरों के लिए फेलोशिप भी प्रदान करता है।

कृषि वैज्ञानिक चयन बोर्ड, भारत सरकार के द्वारा कृषि वैज्ञानिक बनने के लिए छात्रों के पास विज्ञान की अच्छी समझ होनी चाहिए। उसे फसलों, मिट्टी के प्रकार, प्रमुख रसायनों के बारे में जानकारी होनी चाहिए। साथ ही उसके पास ताक्रिक दिमाग, धैर्य, शोध का गुण, घंटों काम करने का जज्बा, लिखने–बोलना का कौशल, वाकचातुर्य, प्रस्तुतीकरण क्षमता आदि गुणों का होना जरूरी है। आजकल इस क्षेत्र में भी जैवविज्ञान, रसायन, प्रसंस्करण करने व डाटा आदि निकालने में कम्प्यूटर का प्रयोग होने लगा है, इसलिए कम्प्यूटर का ज्ञान होना भी बहुत आवश्यक है।

वैश्विक समस्या का रूप ले रहे खाद्यान्न संकट ने इस क्षेत्र को शोध संस्थाओं की प्राथमिकता का केन्द्र बना दिया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद सहित देश की सभी कृषि शोध संस्थाएँ कृषि उत्पादकता बढ़ाने वाली तकनीकें और फसलों की ज्यादा उपज देने वाली प्रजातियाँ विकसित करने में जुटी हैं। निजी क्षेत्र की कई कम्पनियाँ कृषि उत्पादों का ज्यादा समय तक उपभोग सुनिश्चित करने के लिए बड़े पैमाने पर खाद्य प्रसंस्करण आरंभ कर चुकी हैं। डिब्बाबंद जूस, आइसक्रीम, दुग्ध उत्पाद और चिप्स जैसे उत्पाद मूल्य संवर्धित उत्पादों के उदाहरण हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृषि विज्ञान में केरियर बनाने के लिए वर्तमान समय में बहुत सारे अच्छे विकल्प हैं।

कृषि शिक्षा दिवस के आयोजन पर संस्थान में विद्यार्थियों को कृषि शिक्षा द्वारा केरियर बनाने के बारे बताया गया

स्वच्छ भारत अभियान

सुश्री अवंतिका मीना
स्टाफ क्वार्टर, भाकृअनुप–केशुबासं, बीछवाल, बीकानेर

स्वच्छता को अपने आचरण में इस तरह बसा लो कि वो आपकी एक आदत बन जाए। यदि कोई व्यक्ति स्वच्छ नहीं है तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता है।–महात्मा गांधी।

प्रस्तावना–: स्वच्छता हमारे घर, मोहल्ला एवं सड़क के लिए ही जरूरी नहीं है, अपितु देश और राष्ट्र की आवश्यकता है। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक गांव, गली एवं सड़कों तक शोचालय का निर्माण कराना है। इस अभियान की शुरूआत भारत के 15 वें प्रधानमंत्री आदरणीय श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 2 अक्टूबर, 2014 को नई दिल्ली की वाल्मीकी बस्ती से की गयी। इस अभियान को भारत मिशन एवं स्वच्छता अभियान नाम दिया गया।

हमारे पूजनीय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता से पहले स्वच्छता को ईश्वर भक्ति के बराबर मानकर स्वच्छता की शिक्षा का ज्ञान भारतीय नागरिकों को प्रदान किया था।

स्वच्छता अभियान के उद्देश्य

1. खुले में शौच बंद करवाना।
2. व्यक्तिगत, सामुहिक शौचालयों का निर्माण करवाना।
3. गांवों को साफ रखना।
4. साफ–सफाई के जरिए लोगों में जागरूकता पैदा करना।

स्वच्छ भारत अभियान में शामिल मंत्रालय

1. शहरी विकास मंत्रालय
2. राज्य सरकारें
3. ग्रामीण विकास मंत्रालय
4. गैर सरकारी संगठन
5. पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय

उपसंहार

आओ बच्चों तुम्हें बताएं, महत्ता कचरा दान की।
उचित प्रबंधन खाद बनाता, करता मदद किसान की।
शहर गली में चर्चा है, स्वच्छ भारत अभियान की।
शौचालय के लाभ समझना, जरूरत है हर इंसान की।
प्यारे बच्चों तुम पर निर्भर है, सफलता इस अभियान की
शहर गली में चर्चा है, स्वच्छ भारत अभियान की।

परिषद् गीत

जय-जय कृषि परिषद् भारत की,
सुखदप्रतीक हरित भारत की ।

कृषिधन पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध मत्स्य फल यंत्र सुवर्धन।

वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण।

सस्य श्यामला छवि भारत की,
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक।

हर पथ पर है मित्र कृषक की,
शिक्षा शोध प्रसार सकल तक।

आशा स्वावलम्बित भारत की,
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।

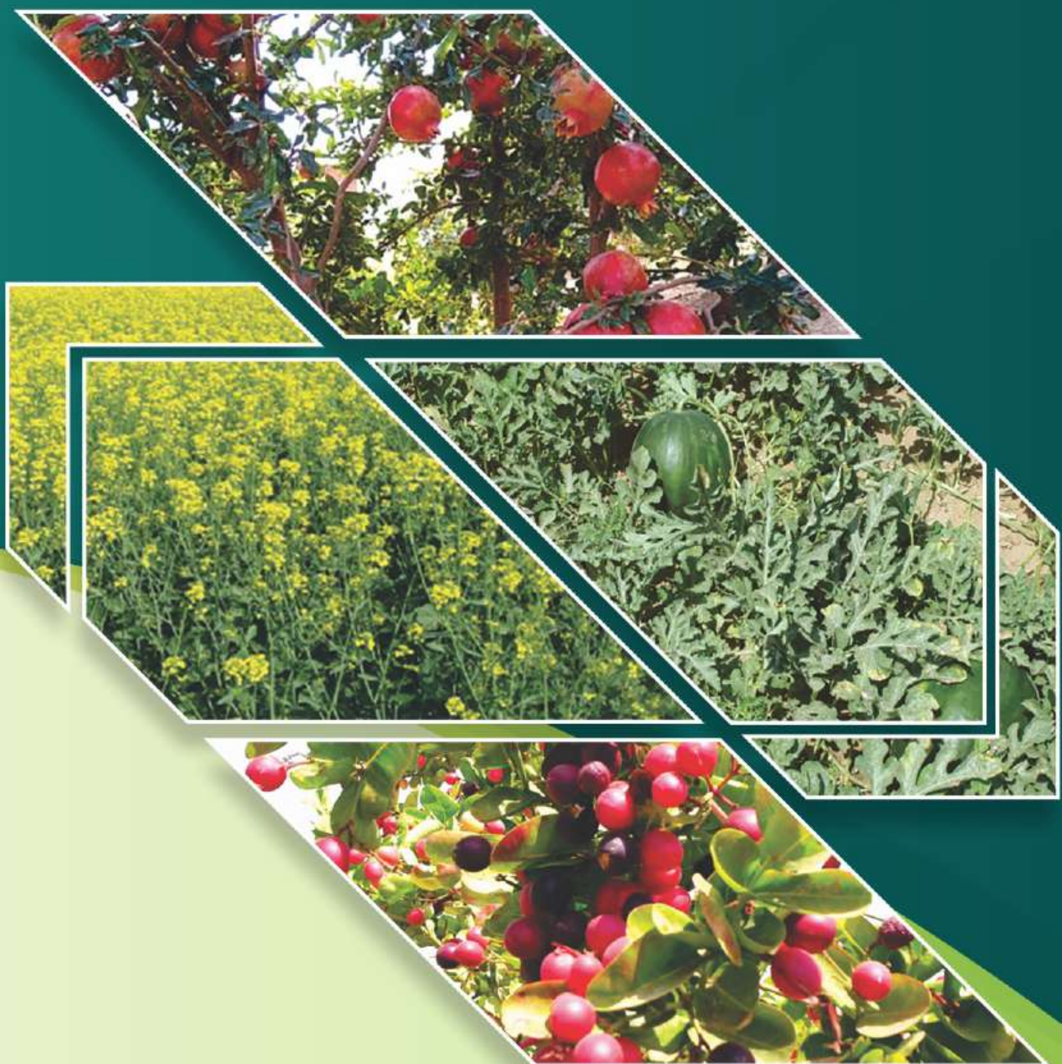

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)